उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

मानविकी विद्याशाखा

गद्य साहित्य - 1

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

विशेषज्ञ समिति

प्रो. एच.पी. शुक्ला निदेशक, मानविकी विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	प्रो. लक्ष्मण सिंह बिष्ट 'बटरोही' निदेशक, महादेवी वर्मा सृजन पीठ, रामगढ़, नैनीताल
प्रो. एस.डी .तिवारी विभागाध्यक्ष, हिन्दी गढवाल विश्वविद्यालय, गढ़वाल	डा. जितेन्द्र श्रीवास्तव हिंदी विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विवि.दिल्ली
प्रो. डी.एस.पोखरिया विभागाध्यक्ष, हिन्दी कुमाऊं विश्वविद्यालय नैनीताल,	प्रो. नीरजा टंडन हिन्दी विभाग कुमाऊं विश्वविद्यालय नैनीताल,

पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं संपादन

डा.शशांक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	डा.राजेन्द्र कैड़ा अकादमिक परामर्शदाता, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

कापीराइट@उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: 2015 सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशकः उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139
मुद्रक : प्रीमियर प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139
ISBN 978-93-84632-63-2

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डा. नन्द किशोर ढ़ौढियाल, पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटद्वार	1,2,3
डा. प्रीति आर्या, एस.एस.जे. परिसर, हिंदी विभाग कुमाऊँ विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा	4,5,6
सुनील पाण्डेय, उप-सम्पादक - परमिता त्रैमासिक शोध पत्रिका, वाराणसी	7,8
अवधेश दीक्षित, संपादक - परमिता त्रैमासिक शोध पत्रिका, वाराणसी	9,10,19,20,21
डॉ. विनय कुमार शुक्ल, मोतीलाल नेहरू कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय	11,12,13,14
डॉ. शीला रजवार, नैनीताल, उत्तराखण्ड	15,16,17,18

खण्ड 1 – कथा साहित्य का विकास	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 1 – हिन्दी गद्य का उद्भव व विकास	1-22
इकाई 2 – हिन्दी कहानी का उद्भव व विकास	23-39
इकाई 3 – हिन्दी उपन्यास का उद्भव व विकास	40-56
खण्ड 2 – कथा साहित्य का तात्विक विवेचन	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 4 – कहानी का स्वरूप, भेद व तत्व	57-75
इकाई 5 – उपन्यास का स्वरूप, भेद व तत्व	76-91
इकाई 6 – उपन्यास व कहानी में अन्तर	92-100
खण्ड 3 – हिन्दी कहानी (स्वतंत्रता पूर्व कहानी)	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 7 – 'उसने कहा था' : पाठ एवं विवेचन	101-111
इकाई 8 – 'उसने कहा था' : विश्लेषण और मूल्यांकन	112-125
इकाई 9 – 'बड़े भाईसाहब' : पाठ एवं विवेचन	126-137
इकाई 10 – 'बड़े भाईसाहब' : पाठ एवं मूल्यांकन	138-148
इकाई 11 – 'अपना-अपना भाग्य' : पाठ एवं विवेचन	149-166
इकाई 12 – 'अपना-अपना भाग्य' : पाठ एवं मूल्यांकन	167-180
खण्ड 4 – हिन्दी कहानी (स्वतंत्रता पश्चात् कहानी)	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 13 – 'मलबे का मालिक' : पाठ एवं विवेचन	181-198
इकाई 14 – 'मलबे का मालिक' : विश्लेषण और मूल्यांकन	199-212
इकाई 15 – स्त्री सुबोधिनी : पाठ एवं विवेचन	213-234
इकाई 16 – स्त्री सुबोधिनी : पाठ एवं मूल्यांकन	235-247

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

इकाई 17 – सुहागिनी : पाठ एवं विवेचन	248-268
इकाई 18 – सुहागिनी : विश्लेषण और मूल्यांकन	269-281
खण्ड 5 – हिन्दी उपन्यास	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 19 – जैनेन्द्र कुमार : परिचय एवं कृतित्व	282-293
इकाई 20 – त्यागपत्र : पाठ एवं व्याख्या	294-306
इकाई 21 – त्यागपत्र : संरचना व शिल्प	307-321

पाठ्यक्रम परिचय

स्नातक उपाधि कार्यक्रम के अंतर्गत आप गद्य साहित्य –I (BAHL-101), शीर्षक प्रथम प्रश्न पत्र का अध्ययन कर रह हैं। यह पाठ्यक्रम गद्य साहित्य पर आधारित है। इस पाठ्यक्रम का मुख्य उद्देश्य है आपको साहित्य के प्रमुख रूपों से सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक रूप से परिचय कराना। इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत हमने गद्य साहित्य के विकास, उसके तात्विक स्वरूप, गद्य साहित्य के प्रमुख भेद – उपन्यास एवं कहानी की विशेषताओं को विश्लेषित करने का प्रयत्न किया है। आपने अभी तक उपन्यास एवं कहानी जरूर पढ़ी होगी, किन्तु उसके सैद्धान्तिक पक्षों से आप अपरिचित हैं। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य आपको साहित्य के गूढ़तम प्रश्नों की ओर ले जाने का सृजनात्मक प्रयास है।

यह पाठ्यक्रम मुख्यत: कथा साहित्य से संबंधित है । इस पुस्तक में आप कथा साहित्य की महत्वपूर्ण विधा उपन्यास एवं कहानी के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक स्वरूप से परिचित होंगे।

5 खण्डों में विभक्त इस पाठ्यक्रम का विवरण इस प्रकार है –

खण्ड 1 : कथा साहित्य का विकास

खण्ड 2 : कथा साहित्य का तात्विक विवेचन

खण्ड 3 : हिंदी कहानी (स्वतंत्रता पूर्व)

खण्ड 4 : हिंदी कहानी (स्वतंत्रता पश्चात्)

खण्ड 5 : हिंदी उपन्यास

खण्ड 1 कथा साहित्य के विकास से संबंधित है। इस खण्ड में हिंदी गद्य के उद्भव एवं विकास के प्रश्न पर विस्तार से विचार किया गया है। हिंदी गद्य के स्फुट प्रयत्न तो बहुत पहले से ही होते रहे हैं किन्तु साहित्य में उसे प्रतिष्ठा आधुनिक काल के पश्चात् ही मिली। गद्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा उपन्यास एवं कहानी है। अत: इस खण्ड में उपन्यास एवं कहानी की विकास यात्रा को भी प्रस्तुत किया गया है।

खण्ड 2 कथा साहित्य के तात्विक विवेचन पर आधारित है। हर विधा के कुछ प्रमुख तत्व होते हैं, जो उसे अन्य साहित्यिक विधा से अलग करते हैं। उपन्यास एवं कहानी एक ही जाति की विधाएँ हैं। दोनों के तत्व भी समान हैं किन्तु दोनों में अंतर भी है। इस खण्ड में उपन्यास एवं कहानी के मूल तत्वों को सैद्धन्तिक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

पाठ्यक्रम का **तीसरा खण्ड** स्वतंत्रता पूर्व हिंदी कहानी पर आधारित है। स्वतंत्रता पूर्व की हिंदी कहानी मुख्यत: आदर्शवादी ढाँचे पर, किस्सागो शैली में विकसित हुई है। सामाजिकता पर बल, चरित्र निर्माण का प्रयास एवं सीधी-सादी भाषा के माध्यम से इस काल की कहानियाँ

विकसित हुई हैं। इस खण्ड में चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', प्रेमचन्द एवं जैनेन्द्र की कहानियों के मूल पाठ के साथ-ही-साथ उनका मूल्यांकन करने का भी प्रयत्न किया गया है। पाठ्यक्रम का **चतुर्थ खण्ड** स्वतंत्रता पश्चात् की हिंदी कहानी से संबंधित है। इस खण्ड में मोहन राकेश, मन्नू भण्डारी एवं शैलेष मटियानी के पाठ एवं मूल्यांकन का प्रयत्न किया गया है। मोहन राकेश की कहानी जहाँ साम्प्रदायिक हिंसा एवं उन्माद पर आधारित है वहीं मन्नू भंडारी की कहानी स्त्री समस्या एवं शोषण पर आधारित है। शैलेष मटियानी ने अपनी कहानी में उत्तराखण्ड की संस्कृति एवं स्त्री समस्या को एक साथ उठाया है।

पाठ्यक्रम का **पाँचवां खण्ड** हिंदी उपन्यास एवं जैनेन्द्र कुमार पर केंद्रित है। इस खण्ड में जैनेन्द्र कुमार के प्रतिनिधि उपन्यास त्यागपत्र को केन्द्र में रखकर उपन्यास साहित्य में जैनेन्द्र कुमार के योगदान को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

पाठ्यक्रम के पाँच खण्ड में कुल 21 इकाइयाँ हैं, जो विभिन्न पक्ष से संबंधित है। सम्पूर्ण इकाई उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय के स्थिर रूप-विधान के आधार पर निर्मित है। प्रत्येक इकाई के साथ अभ्यास प्रश्न, शब्दावली एवं संदर्भ ग्रंथ सूची भी दे दिये गये हैं जिससे आप स्वयं अपनी प्रगति का जाँच कर सकेंगे।

इकाई-1 हिन्दी गद्य का उद्भव व विकास

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 गद्य साहित्य
1.4 हिन्दी गद्य की पृष्ठ भूमि
1.4.1 ब्रज भाषा में गद्य
1.4.2 खड़ी बोली में गद्य
1.5 हिन्दी गद्य का उद्भव व विकास
1.5.1 हिन्दी गद्य के उद्भव व विकास के कारण
1.5.2 प्रारम्भिक गद्य लेखन
1.5.3 अंग्रेजों की भाषा नीति
1.6 भारतेन्दु युग
1.7 द्विवेदी युग
1.8 प्रेमचन्द और उनके पश्चात्
1.9 सारांश
1.10 शब्दावली
1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

स्नातक प्रथम वर्ष के हिन्दी विषय प्रथम प्रश्न-पत्र खण्ड-1 के अन्तर्गत यह प्रथम इकाई है। इसमें हिन्दी गद्य के उद्भव विस्तार एवं विकास के विषय में चर्चा की गयी है। हिन्दी साहित्य इतिहास के आधुनिक युग से पूर्व का साहित्य मुख्यतः कविता में है। इससे पूर्व गद्य की कुछ रचनाएँ अवश्य प्राप्त हुई हैं, लेकिन हिन्दी साहित्य परम्परा में उनका विशेष महत्व नहीं है गद्य का वास्तविक लेखन आधुनिक युग से हुआ, ऐसा क्यों हुआ तथा गद्य के विकास की स्थिति क्या रही, हम इस इकाई में इसी विषय पर विचार करेंगे।

1.2 उद्देश्य

आप स्नातक प्रथम वष्र के प्रथम प्रश्न पत्र के खण्ड-1 की इकाई- 1 हिन्दी गद्य का उद्भव व विकास पढ़ने जा रहे हैं। इस इकाई में हिन्दी गद्य के उद्भव व विकास पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आपः

- गद्य एवं पद्य में अन्तर कर सकेंगे।
- हिन्दी गद्य के उद्भव व विकास के विषय में जान सकेंगे।
- ब्रज भाषा तथा खडी़ बोली के गद्य के सम्बन्ध में जानकारियाँ प्राप्त कर सकेंगे।
- अंग्रेजी शासन काल में भाषा सम्बन्धी विभिन्न दृष्टिकोणों को समझ सकेंगे।
- खडी़ बोली की प्रारम्भिक स्थितियों का उल्लेख कर सकेंगे।
- भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग के गद्य साहित्य के उद्भव और विकास का उल्लेख कर सकेंगे।
- प्रेमचन्द एवं उनके पश्चात् के गद्य साहित्य के उद्भव व विकास पर संक्षेप में प्रकाश डाल सकेंगे।
- विभिन्न गद्यकारों के योगदान का उल्लेख कर सकेंगे।

1.3 गद्य साहित्य

आपने अब तक अनेक उपन्यास कहानी और निबन्ध पढ़े होंगे, किन्तु क्या कभी आपने विचार किया है कि साहित्य की इन विधाओं का विकास कैसे हुआ? इस इकाई के अन्तर्गत हम इस विषय पर चर्चा करेंगे कि गद्य का उद्भव और विकास कैसे हुआ ? आपने कबीरदास, तुलसीदास, सूरदास, केशवदास आदि की रचनाएँ पढ़ी होंगी, इससे आपको अनुभव हुआ होगा कि कबीर, तुलसीदास, सूरदास और केशवदास की रचनाएँ उपन्यास और कहानी से भिन्न प्रकार की रचनाएँ हैं। साहित्य की भाषा में कबीर, तुलसीदास, आदि की रचनाओं को छन्दोबद्ध रचना या कविता कहा जाता है, जबकि उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि को गद्य । इस अन्तर को और अधिक स्पष्ट रूप में जानने के लिए आप कबीरदास की इन पंक्तियों को पढिए ।

वकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल,
जो बकरी को खात है, तिनको कौन हवाल।।

अब नीचे दी गयी इन पंक्तियों की तुलना कबीरदास की उपरोक्त रचना से कीजिये। निम्नलिखित पंक्तियाँ डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के निबन्ध कबीर और गाँधी से उद्धृत की गयी है।

''यदि कबीर अपनी ही कविता के समान सीधी सादी भाषा में उल्लिखित आदर्श हैं तो गाँधी उसकी और भी सुबोध क्रियात्मक व्याख्या, यदि प्रत्येक व्यक्ति इस विशद व्याख्या की प्रतिलिपि बन सके तो जगत का कल्याण हो जाय।"

उपरोक्त दोनों उदाहरणों की तुलना करने पर आप स्पष्ट रूप से जान जायेंगे कि भाषा के इन दो प्रयोगों में क्या भिन्नता है? छन्दोबद्ध कविता में गेयता तथा लय होती है, जबकि गद्य में भाषा व्याकरण के अनुरूप होती है। आरम्भ में समस्त संसार के साहित्य में काव्य रचना का प्रमुख स्थान था। भारत में रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य इसी काव्य कला के अनुपम उदाहरण हैं। काव्य के अतिरिक्त नाटकों में काव्य भाषा का प्रयोग अधिक हुआ। प्रश्न यह कि आधुनिक युग से पहले गद्य की अपेक्षा कविता में ही रचना क्यों होती थी? उत्तर है कि कविता को गेयता, छन्दबद्धता और लय के कारण याद रखना सरल था। प्राचीन काल में मुद्रण कला का अभाव था, इसलिए पीढ़ी-दर-पीढ़ी साहित्य को मौखिक परम्परा से आगे बढ़ाने में कविता भाषा सहायक थी। प्राचीन काल में गद्य में भी साहित्य रचना होती थी लेकिन इन रचनाओं की संख्या सीमित थी। उस युग में भावों की अभिव्यक्ति के लिए जहाँ काव्य रचना की जाती थी वहाँ सैद्धान्तिक निरूपण के लिए गद्य का प्रयोग होता था। इसका सबसे अच्छा उदाहरण संस्कृत साहित्य का लक्षण ग्रन्थ '' काव्य प्रकाश'' है जिसमें भावों को प्रकट करने के लिए कविता का प्रयोग हुआ है तो सिद्धान्त निरूपण के लिए संस्कृत गद्य का।

अब आपके मन में रह रहकर यह प्रश्न उत्पन्न हो रहा होगा कि आधुनिक युग में कविता की प्रमुखता होने पर भी गद्य में लेखन क्यों आरम्भ हुआ। इसके क्या कारण थे? आदि काल में परस्पर विचार- विनिमय के लिए एक भिन्न प्रकार की भाषा का प्रयोग होता था। यह सामान्य बोल-चाल की भाषा थी, जो कि कविता भाषा से भिन्न थी। भाषा के इसी रूप को गद्य कहा गया था। भाषा का यह रूप जो उसकी व्याकरणिक संरचना के सबसे अधिक निकट हो, गद्य कहलाता है, जबकि पद्य में व्याकरणिक नियमों की नहीं छन्द, लय और भावों की प्रधानता होती है। गद्य लेखन पूर्व था लेकिन मुद्रण प्रणाली के अस्तित्व में आने के पश्चात् ही प्रचलन में आया। आज सभी पत्र पत्रिकाओं और पुस्तकों के लेखन में इस गद्य भाषा का प्रयोग हो रहा है।

1.4 हिन्दी गद्य की पृष्ठभूमि

हिन्दी गद्य साहित्य का उद्भव और विकास कैसे हुआ? इस पर चर्चा करने के साथ-साथ ही हम अब यहाँ पर यह भी विचार करेंगे कि हिन्दी गद्य किस भाँति विकसित होकर वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व हिन्दी भाषा में गद्य रचनाएँ अधिक नहीं थी। उस समय ब्रजभाषा साहित्य की भाषा थी। जिसमें भाव-विचार की अभिव्यक्ति के लिए कविता भाषा का ही प्रयोग होता था लेकिन बोलचाल की भाषा गद्य थी। ब्रजभाषा के बोल-चाल के इस रूप का प्रयोग गद्य रचनाओं में होता था। हिन्दी गद्य विकास की दृष्टि से इन

रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए इन प्रारम्भिक रचनाओं के इस रूप से परिचय होना भी अनिवार्य है।

1.4.1 ब्रजभाषा गद्यः

जैसा कि आप जानते हैं कि विद्वानों की भाषा सामान्य जन की भाषा से भिन्न होती है। जिस समय ब्रजभाषा में कविता का सृजन हो रहा था, उसी समय जन सामान्य पारस्परिक बोल-चाल में ब्रजभाषा के गद्य रूप का प्रयोग करता था। लेकिन जब किसी संत महात्मा या कवि को अपने पंथ, सम्प्रदाय या मत के शुभ सन्देश सामान्य जनता तक पहुँचाने होते थे, वे अपनी कविता भाषा को छोड़कर ब्रजभाषा की बोल चाल की भाषा का ही प्रयोग करते थे। उनकी यही बोल चाल की भाषा धीरे-धीरे साहित्य की गद्य भाषा भी बनी। इसके साथ ही अनेक काव्य ग्रन्थों को सामान्य जनता तक पहुँचाने के लिए विद्वानों ने टीकाएं भी लिखीं, ये टीकाएं भी गद्य भाषा में होती थीं। इस युग की गद्य- रचना का एक उदाहरण दृष्टव्य है।

"सो वह पुरूष सम्पूर्ण तीर्थ स्थान करि चुकौ, अरू सम्पूर्ण पृथ्वी ब्राहमननि को दे चुको, अरू सहस्र जज्ञ कटि चुकौ, अरू देवता सब पूजि चुकौ, पराधीन उपरान्ति बन्धन नहीं, सुआधीन उपरान्त मुकति नाहीं, चाहि उपरान्त पाप नाहीं, अचाहि उपरान्त पुति नाहीं", (हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास- बाबू गुलाब राय -पृष्ठ 110)

उपरोक्त रचना अंश ‘गोरख-सार’ का गद्यांश है, जिसे संवत् 1400 की रचना माना जाता है। इसके अतिरिक्त महाप्रभु बल्लभाचार्य के पुत्र गोसाई विठ्ठलनाथ जी ने ब्रज भाषा गद्य में ‘श्रृगार मण्डन’ लिखा, इनके बाद इनके पौत्र गोकुल नाथ ने ब्रजभाषा में चौरासी बैष्णव की वार्ता’ तथा दो सौ बावन बैष्णवन की वार्ता’’ लिखी, इनमें बैष्णव भक्तों की महिमा व्यक्त करने वाली कथाऐं लिखी हैं। इन सबकी गद्य भाषा व्यस्थित एवं बोल चाल रूप में हैं। इस भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत है।

‘‘सो श्री नंदगाम में रहा हतो, सो खंडन, ब्राहमण शास्त्र पढयों हतो, सो जितने पृथ्वी पर मत हैं सबको खण्डन करतो, ऐसो वाको नेम हतो। याही से सब लोगन ने वाको नाम खण्डन पाखो हतो,’’ (हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)

इसी भाँति 1660 विक्रम संम्वत् के आस-पास भक्त नाभादास की ब्रजभाषा गद्य में लिखी ‘अष्टयाम’ नामक रचना प्रकाश में आयी, इसकी भाषा सामान्य बोलचाल की है। उस युग में ब्रजभाषा में गद्य की रचना कम ही होती थी। लेकिन इसका मुख्य कारण था। ब्रजभाषा में गद्य की क्षमता का विकास न हो पाना, क्योंकि ब्रजभाषा एक सीमित क्षेत्र में बोली जाती थी। इसलिए वह ब्रज मण्डल के बाहर सम्पर्क भाषा के रूप में विकसित नहीं हो पायी, जिससे इसमें गद्य का विकास उस तरह नहीं हो पाया जिस तरह से होना चाहिए था। इसी कारण खड़ी बोली ही गद्य भाषा को विकसित करने में अधिक सार्थक हुई।

1.4.2 खड़ी बोली में गद्य

ब्रजभाषा गद्य भाषा की परम्परा आगे न बढ़ाने के कारण खड़ी बोली में गद्य का विकास होने लगा, इसका सबसे बड़ा कारण था खड़ी बोली का जन साधारण की भाषा होना, ब्रजभाषा के पश्चात् इस भाषा में साहित्य का सृजन होने लगा, चूँकि खड़ी-बोली का क्षेत्रफल बड़ा था। इसलिए यह धीरे-धीरे पद्य और गद्य भाषा बनने लगी। फिर तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों ने भी खड़ी बोली के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

14वीं शताब्दी में खड़ी बोली दिल्ली के आस पास की भाषा थी। इसलिए मुगलकाल में यह शासन और जनता की सम्पर्क भाषा बनी। चूँकि मुगलों की मातृ भाषा फारसी थी, इसलिए जब यह खड़ी बोली के सम्पर्क में आयी तो इसकी शब्दावली खड़ी बोली में प्रवेश करने लगी और इससे फारसी मिश्रित खड़ी बोली का जन्म हुआ, शिक्षित लोग इस भाषा को फारसी लिपि में लिखने लगे, तब इस नई शैली को हिन्दवी, रेख्ता और आगे चलकर उर्दू नाम दिया गया। कवियों ने इस भाषा में शायरी आरम्भ कर दी, चौदवीं शताब्दी में अमीर खुसरो ने खड़ी बोली में रची गयी एक पहेली दृष्टव्य है-

एक थाल मोती से भरा, सबके ऊपर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाली फिरे, मोती उससे एक न गिरे।।

अमीर खुसरों के पश्चात् खड़ी-बोली का विकास दक्षिण राज्यों के रचनाकारों ने किया। दक्खिनी हिन्दी के रूप में वहाँ 14 वीं शताब्दी से 18 वीं शताब्दी तक अनेक ग्रन्थों की रचनाऐं हुई, जिनमें गद्य रचनाओं का भी मुख्य स्थान है। ख्वाजा बन्दा नवाज़ गैसू दराज (1322-1433) शाह मीराँ जी (-1496) बुरहानुद्दीन जानम (1544-1583) और मुल्ला वजही जैसे साहित्यकारों ने काव्य रचनाओं के साथ गद्य ग्रन्थ भी लिखे। मुल्ला वजही ने 1635 ई0 में अपने प्रसिद्ध गद्य-ग्रन्थ ''सब रस'' की रचना की जिसका आरम्भ इस प्रकार से होता है-

''नकल-एक शहर था। शहर का नाउं सीस्तान, इस सीस्तान के बादशाह का नाउं अक्ल, दीन और दुनिया का सारा काम उस तै चलता, उसके हुक्मवाज जरी कई नई हिलता........... वह चार लोकों में इज्जत पाए''। (दक्खिनी हिन्दीः विकास और इतिहास- डॉ0 परमानन्द पांचाल)।।

इसी दक्खिनी हिन्दी का एक रूप खड़ी बोली भी थी । यो तो यह खड़ी बोली प्रारम्भ में कबीर, खुसरो, कवि गंग और रहीमदास की कविता की भाषा बन चुकी थी, लेकिन गद्य भाषा के रूप में इसका प्रयोग अंग्रेज पादरी और अफसरों ने किया क्योंकि वे इस गद्य भाषा के माध्यम से जनता तक पहुँचता चाहते थे। सन् 1570 में मुगल बादशाह के दरबारी कवि गंग की प्रसिद्ध

रचना ''चंद छन्द बरनन की महिमा'' में हिन्दी खडी़ बोली के जिस गद्य रूप के दर्शन होते हैं वह शिष्ट और परिष्कृत खडी़ बोली का गद्य है।

''इतना सुनके पातसाह जी श्री अकबर साह जी आध सेन सोना नरहा चारक को दिया। इनके डेढ़ सेर सोना हो गया, रास वचना पूरा भया, आम खास बारखास हुआ।'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल - पृष्ठ 281)

प्रस्तुत उदाहरण से ऐसा लगता है यह आज की शुद्ध परिमार्जित गद्य रचना है इसके पश्चात् खड़ी बोली ने साहित्य में अपना स्थान बना लिया और इससे तेजी से गद्य का विकास हुआा।

अभ्यास प्रश्न

आपने अब तक खडी़ बोली गद्य के प्रारम्भिक स्वरूप का परिचय प्राप्त किया। आपका ज्ञान जानने के लिए अब नीचे कुछ बोध प्रश्न दिये गये हैं। इनका उत्तर दीजिये। पाठ के अन्त में इन प्रश्नों के उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिये, इससे आपको ज्ञात होगा कि आपने ठीक उत्तर दिये हैं या नहीं।

(1) प्राचीन काल में साहित्य की रचना कविता में होती थीं, नीचे दिये कारणों में तीन सही और एक गलत है, गलत कारण के सामने (×) का निशान लगायें।

1. कविता में गेयता होती है, इससे इसको याद रखना सरल है।
2. प्राचीन काल में मुद्रण की आधुनिक प्रणाली का विकास नहीं हुआ था।
3. कविता अभिव्यक्ति का सबसे अक्षम रूप है।
4. प्राचीन काल में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाश नहीं होता था।

(2) भक्त नाभादास की ''अष्टयाम'' की रचना निम्नलिखित विक्रम सम्वत् में हुई। सही विकल्प के सामक्ष (√) चिह्न लगाए।

1. विक्रम सम्वत् 14400 में ( )
2. विक्रम सम्वत् 1500 में ( )
3. विक्रम सम्वत् 1660 में ( )
4. किक्रम सम्वत् 1700 में ( )

(3) नीचे कुछ पुस्तकों के नाम दिये गये हैं। उनके रचनाकारों का नाम लिखिए।

1. श्रृंगार मण्डन ( )

2. चौरासी बैष्णव की वार्ता ( )
3. सब रस ( )
4. चंद छन्द बरनन की महिमा ( )

1.5 हिन्दी ग़द्य का उद्भव व विकास

खड़ी बोली गद्य का जो रूप वर्तमान में हमारे समक्ष है वह सहजता से विकसित नहीं हुआ, अपितु इसके इस रूप निर्माण में अनेक परिस्थितियों, संस्थाओं और व्यक्तियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही, जिनकी चर्चा हम यहाँ करने जा रहे हैं।

1.5.1 हिन्दी गद्य के उद्भव व विकास के कारण

भारत में अंग्रजी साम्राज्य की स्थापना से यहाँ परिवर्तनों की जो श्रृंखला प्रारम्भ हुई, इसका भारतीय जनजीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा; इनमें से कई परिवर्तनों का सीधा-सीधा सम्बन्ध हिन्दी गद्य विकास से भी है। इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिये जा रहा है। जैसा आप जानते हैं भारत एक धर्म निरपेक्ष देश है। यहाँ हिन्दु, मुस्लमान, ईसाई सभी परस्पर मिलकर इस देश के विकास में अपना योगदान देते हैं। दक्षिण भारत के केरल और पूर्वी भारत के छोटे-छोटे राज्यों में ईसाई धर्म को मानने वालों की संख्या काफी है। आज से कई सौ वर्ष पूर्व ईसाई धर्म प्रचारक इस देश में आये। जब भारत पर अंग्रेजों का साम्राज्य हुआ तो इन ईसाई धर्म प्रचारकों ने अपनी गतिविधियाँ तेज कर दी, इनकी इन्ही गतिविधियों ने हिन्दी गद्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। चूँकि उस युग में जन सामान्य की बोल चाल की भाषा हिंदी गद्य थी। इसलिए इन धर्म प्रचारकों ने जनता में अपने धर्म का प्रचार करने के लिए छोटी-छोटी प्रचार पुस्तकों का निर्माण हिन्दी गद्य में किया। इसी क्रम में 'बाइबिल' का हिन्दी गद्यानुवाद प्रकाशित हुआ। जिससे हिंदी गद्य का काफी विकास हुआ।

नवीन आविष्कार- अंग्रेजों ने अपनी स्थति को और सुदृढ़ करने के लिए मुद्रण, यातायात और दूरसंचार के नये साधनों का प्रयोग किया। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने सन् 1844 से सन् 1856 तक इस देश में रेल और तार के साधन जोड़ दिये थे। यातायात के तेज संसाधनों से पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। अनेक पुस्तक प्रकाशित हुई जिससे हिन्दी गद्य लेखन का भी तीव्रता से विकास हुआ।

शिक्षा का प्रसार- सन् 1835 में लार्ड मैकाले ने भारत में शिक्षा प्रसार के लिए अंग्रेजी शिक्षा पद्धति को जन्म दिया। इससे पूर्व इस देश की शिक्षा फारसी और संस्कृत के माध्यम से दी जाती थी। लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति से जहाँ-जहाँ भी शिक्षा दी जाती थी, उन स्कूल कॉलेजों में हिन्दी, उर्दू पढ़ाने की विशेष व्यवस्था होती थी। सन् 1800 ई0 में स्थापित फोर्ट विलियम

कॉलेज में सन् 1824 में हिन्दी पढ़ाने का विशेष प्रबन्ध हुआ। इससे पूर्व सन् 1823 में आगरा कॉलेज भी स्थापना हुई जिसमें हिन्दी शिक्षा का विशेष प्रबन्ध हुआ। इसने कॉलेजों में हिन्दी शिक्षा समुचित रूप से संचालित हो इसके लिए हिन्दी के अच्छे पाठ्यक्रम बनाये। इस शिक्षा विस्तार से भी हिन्दी गद्य का अच्छा विकास हुआ।

समाज सुधार आन्दोलन- 19 वीं शताब्दी समाज सुधार की शताब्दी थी। इस सदी में भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों को समाप्त करने के लिए अनके आन्दोलन हुए। चूँकि समाज सुधार के आन्दोलनों को जिन नेताओं ने संचालित किया उन्हें जनता तक अपनी बात पहुँचाने के लिए भाषा की आवश्यकता पड़ी। 'ब्रहम समाज' के संस्थापक राजा राममोहन राय ओर आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने अपने-अपने मतों को समाज तक पहुँचाने के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया वह हिन्दी भाषा थी। इसी से हिन्दी गद्य को एक नया रूप मिला।

पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन- मुद्रण की सुविधा से पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होने लगा जिनके माध्यम से अनके गद्य लेखक लिखने लगे। 30 मई सन् 1826 ई0 में कलकत्ता से पंडित जुगल किशोर शुक्ल ने 'हिन्दी' के प्रथम पत्र 'उदन्त-मार्तण्ड' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। यह हिन्दी का साप्ताहिक पत्र था। हिन्दी के पाठकों की संख्या कम हाने के कारण यह 4 दिसम्बर सन् 1827 को बन्द हो गया। इस पत्र के माध्यम से भी हिन्दी गद्य का विकास हुआ। 9 मई सन् 1829 को कलकत्ता से हिन्दी के दूसरे पत्र 'बंगदूत' का प्रकाशन हुआ। इसी तरह कोलकाता से प्रजामित्र' सन् 1845 में 'बनारस' से 'बनारस अखबार, सन् 1846 में 'मार्तण्ड' जैसे समाचार पत्रों का प्रकाशन हुआ। इन सबकी गद्य भाषा हिन्दी थी। इस तरह 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में हिन्दी पत्र पत्रिकाओं की बाढ़ सी आ गयी। इन्ही पत्र पत्रिकाओं ने हिन्दी गद्य को और अधिक विकसित और परिमार्जित किया।

1.5.2 प्रारम्भिक गद्य लेखन

सन् 1803 ई0 में फोर्ट विलियम कालेज कलकत्ता के हिन्दी उर्दू प्राध्यापक जॉन गिलक्राइस्ट ने हिन्दी और उर्दू में पुस्तकें लिखवाने के लिए कई मुंशियों की नियुक्ति की। इन मुंशियों में 'नियाज' मुंशी इंशा अल्ला खाँ जैसे हिन्दी-उर्दू के विद्वान थे जिन्होंने हिन्दी गद्य को एकरूपता प्रदान की।

मुंशी सदासुखलाल नियाज- जन्म सं. 1803 मृत्यु सं. 1881 - दिल्ली निवासी मुंशी सदासुखलाल, फारसी के अच्छे कवि और लेखक थे। इन्होंने 'बिष्णु पुराण' के उपदेशात्मक प्रसंग को लेकर एक पुस्तक लिखीं इसके पश्चात् मुंशी जी ने श्रीमद्भागवत कथा के आधार पर 'सुख सागर' की रचना की जिसकी गद्य व्यवस्थित और निखरी हुई है। इनकी इस गद्य भाषा का एक उदाहरण निम्नवत् है-

''मैत्रेय जी ने कहा'' हे विदुर प्रचेता लोग साधु व बैष्णव की बड़ाई व परमेश्वर के मिलने के उपाय महादेव जी से सुनकर आनन्द पूर्वक बीच पढ़ने वाले स्रोतों को व करने ध्यान नारायण जी को लीन हुए। जब उनको इस हजार वर्ष हरि भजन करते बीत गये तब परमेश्वर ने प्रसन्न होकर दर्शन देके बड़े हर्ष से उन्हें वरदान दिया''(हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास- बाबू गुलाब राय - पृष्ठ 112)

मुंशी इंशा अल्ला खाँ- (जन्म सं0 1818- मृत्यु सं0 1857) मुर्शिदाबाद में जन्म लेने वाले मुंशी इंशा अल्ला खाँ उर्दू के बहुत अच्छे शायर थे। इन्होंने सम्वत् 1855 और सम्वत् 1860 के मध्य 'उदयभान चरित' या रानी केतकी की कहानी' लिखी। इनकी गद्य भाषा संस्कृत मिश्रित हिन्दी थी। इनकी गद्य भाषा का एक उदाहरण इस प्रकार है-

''कोई क्या कह सके, जितने घाट दोनों नदियों के थे। पक्के चाँदी के से होकर लोगों को हक्का-बक्का कर रहे थे। नवाड़े, बन्जरे, लचके, मोरपंखी, श्याम सुन्दर, राम सुन्दर और जितनी ढब की नावे थी। सुनहरी, रूपहरी, सजी-सजाई। कसी-कसाई सौ-सौ लचके खतियाँ फिरतियाँ थी''(हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास- बाबू गुलाब राय - पृष्ठ 114)

श्री लल्लू लाल जीः- (जन्म सं0 1820- मृत्यु सं0- 1882) आगरा निवासी लल्लू जी 'लाल' गुजराती ब्राहमण थे। फोर्ट विलियम कॉलेज में नियुक्ति के बाद इन्होंने सम्वत् 1860 में भागवत पुराण के दशम् स्कंध के आधार पर प्रेम सागर नामक ग्रन्थ का हिन्दी गद्य में सृजन किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने ' वैताल पच्चीसी'' 'सिहासन बत्तीसी' ,'माधव विलास' तथा 'सभा विलास' नामक ग्रन्थ भी लिखे। इनकी गद्य भाषा का एक उदाहरण निम्नवत् है।

''महाराज इसी नीति से अनेक-अनेक प्रकार की बात कहते-कहते और सुनते-सुनते जब सब रात व्यतीत भई और चार घड़ी पिछली रही तब नन्दराय जी से उधौ जी ने कहा कि महाराज अब दधि मथनी की विरियाँ हुई, जो आकी आज्ञा पाऊँ तो युमना स्नान कर आऊँ'' (प्रेम सागर)

पंडित सदलामिश्रः- (जन्म सम्वत् 1825-मृत्यु सं. 1904) बिहार निवासी पंडित सदलमिश्र ने अपनी पुस्तक ''नासिकेतोपाख्यान'' फोर्ट विलियम कॉलेज में लिखी। इनकी भाषा लल्लू जी लाल; की तरह ही ब्रज भाषा के शब्दों से ओत प्रोत है। जिसको एक उदाहरण प्रस्तुत है-

''इस प्रकार नासिकेत मुनि यम की पुरी सहित नरक वर्णन कर फिर जौन-जौन कर्म किये से जो भोग होता ठै सो ऋषियों को सुनाने लगे कि गौ, ब्राहमण माता -पिता , मित्र, बालक, स्त्री, स्वामी, वृद्ध, गुरू, इनका जो बध करते हैं वे झूठी साक्षी भरते, झूठ ही कर्म में दिन रात लगे रहते हैं।" (नासिकेतोपाख्यान)

1.5.3 अंग्रेजों की भाषा नीति

अंगेजों के भारत आगमन से पूर्व यहाँ की राज भाषा फारसी थी। लार्ड मैकाले के प्रयत्नों से सन् 1835 में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार हुआ। सन् 1836 तक अदालतों की भाषा फारसी थी लेकिन अंग्रजों ने अपनी भाषाई नीति के अन्तर्गत सन् 1836 में सयुक्त प्रान्त के सदर बोर्ड अदालतों की भाषा 'हिन्दी' कर दी, लेकिन इसके पश्चात् अंग्रेजों की ओर से हिन्दी के विकास के लिए कुछ और नहीं किया गया। ऐसे समय में राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' और राजा लक्ष्मणसिंह के द्वारा हिन्दी के विकास के लिए जो कार्य किये गये वे उल्लेखनीय है-

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द- (जन्म सं. 1823- मृत्यु सं. 1895) राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्दी शिक्षा विभाग में निरीक्षक के पद पर थे। ये हिन्दी के प्रबल पक्षधर थे इसलिए ये इसे पाठ्यक्रम की भाषा बनाना चाहते थे। चूँकि उस समय साहित्य के पाठ्यक्रम के लिए कोई पुस्तकें नहीं थी इसलिए इन्होंने स्वयं कोर्स की पुस्तकें लिखी और इन्हें हिन्दी पाठ्यक्रमों में स्थान दिलाया। इन्ही के प्रयत्नों से शिक्षा जगत ने हिन्दी को कोर्स की भाषा बनाया। इस बाद उन्होंने बनारस से 'बनारस अखबार निकाला। इसीके द्वारा राजा शिवप्रसाद ''सितारे हिन्द'' ने हिन्दी का प्रचार प्रसार किया। ये विशुद्ध हिन्दी में लेख लिखते थे। राजा जी ने स्वयं हिन्दी कोर्स लिए पुस्तके ही नहीं लिखी अपितु पंडित श्री लाल और पंडित बंशीधर को भी इस कार्य के लिए प्रेरित किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'वीरसिंह का वृतान्त' आलसियों का कोड़ा जैसी रचनाओं का सृजन भी किया। इनकी गद्य भाषा कितनी प्रभावशाली और सरल थी, इसका उदारहण ''राजा भोज का सपना'' का यह गद्यांश है।

''वह कौन सा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी राजा भोज का नाम न सुना हो। उनकी महिमा और कीर्ति तो सारे जगत में व्याप्त रही है। बड़े-बड़े महिपाल उसका नाम सुनते ही काँप उठते और बड़े-बड़े भूपति उसके पाँव पर अपना सिर नवाते।''

राजा जी उर्दू के पक्षपाती भी थे। सन् 1864 में इन्होंने ''इतिहास तिमिर नाशक'' ग्रन्थ लिखा।

राजा लक्ष्मण सिंह (जन्म सम्वत् 1887- मृत्यु सम्वत् 1956)-आगरा निवासी राजा लक्ष्मणसिंह हिन्दी और उर्दू को दो भिन्न-भिन्न भाषाएँ स्वीकारते थे। फिर भी ये हिन्दी उर्दू शब्दावली प्रधान गद्य भाषा का प्रयोग करते थे। राजा लक्ष्मणसिंह ने कालिदास के 'मेघदूतम' अभिज्ञान शांकुन्तलम् और रघुवंश का हिन्दी अनुवाद किया। इन्होंने हिन्दी के गद्य विकास के लिए सन् 1841 में 'प्रजा हितैषी' पत्र भी सम्पादित और प्रकाशित किया। इनकी गद्य भाषा कितनी उत्कृष्ट कोटि की थी। प्रकाशित उदाहरण अभिज्ञान शाकुन्तलम् का यह अनुदित ग़द्य है-

अनसुया (हौले प्रियबंदा से) सखी मैं भी इसी सोच विचार में हूँ। अब इससे कुछ पूछूँगी। (प्रकट) महात्मा तुम्हारे मधुर वचनों के विश्वास में आकर मेरा जी यह पूछने को चाहता है क तुम किस

राजवंश के भूषण हो और किस देश की पुजा को विरह में व्याकुल छोड़ कर यहाँ पधारे हो? क्या कारण है? (हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ-300)

राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' और राजा लक्ष्मण सिंह के अलावा कई अनेक प्रतिभाशाली लेखकों ने हिन्दी गद्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। जिन गद्य लेखकों ने अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद किये तथा कई पाठ्य पुस्तकें लिखी उनमें , श्री मथुरा प्रसाद मिश्र, श्री ब्रजवासी दास, श्री रामप्रसाद त्रिपाठी श्री शिवशंकर, श्री बिहारी लाल चौबे, श्री काशीनाथ खत्री, श्री रामप्रसाद दूबे आदि प्रमुख हैं। इसी अवधि में स्वामी दयान्द सरस्वती ने ''सत्यार्थ प्रकाश'' जैसे ग्रन्थ की हिन्दी गद्य में रचना करके हिन्दू धर्म की कुरीतियों को समाप्त किया। हिन्दी गद्य के विकास में जिन और लेखकों का नाम बड़े आदर से लिया जाता है उनमें से बाबू नवीन चन्द्र राय तथा श्री श्रद्धाराम फुल्नौरी हैं।

बाबू नवीन चन्द्र राय ने सन् 1863 और सन् 1880 के मध्य हिन्दी में विभिन्न बिषयों की पुस्तकें लिखी और लिखवाई, साथ ही ब्रहम समाज के सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार करने के लिए सन् 1867 में ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका का प्रकाशन किया। इसी तरह श्री श्रृद्धानन्द फुल्लौरी ने 'सत्यामृत प्रवाह', 'आत्म चिकित्सा', तत्वदीपक, 'धर्मरक्षा', उपदेश संग्रह' पुस्तकें लिखककर हिन्दी गद्य के विकास एक नयी दिशा प्रदान की।

अभ्यास प्रश्न

---

(4) हिन्दी गद्य विकास के कारण थे-

1. ईसाई धर्म प्रचारकों का योगदान ( )
2. मुद्रण प्रणाली का प्रारम्भ ( )
3. समाज सुधार आन्दोलन ( )
4. उपरोक्त सभी ( )

(5) 'सत्यार्थ प्रकाशन' की रचना की-

1. स्वामी विवेकानन्द ने ( )
2. राजा राय मोहन राय ने ( )
3. स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ( )
4. पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी ने ( )

(6) पंडित जुगल किशोर शुक्ल ने कोलकाता से एक पत्र निकाला।

1. बंगदूत

2. मार्तण्ड
3. उदन्त मार्तण्ड
4. प्रजामित्र

(7) कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् का हिन्दी में अनुवाद किया।
1. जान गिल क्राइस्ट ने ( )
2. राजा शिप्रसाद सितारे हिन्द ने ( )
3. राजा लक्ष्मण सिंह ने ( )
4. इंशा अल्ला खाँ ने ( )

(8) नीचे लिखे प्रश्नों का उत्तर हाँ या नहीं में दीजिये।
1. लल्लू लालजी फोर्ट विलियम कालेज से सम्बद्ध थे। हाँ/ नहीं
2. मुंशी सदासुख लाल ने ‘ प्रेमसागर’ की रचना की हाँ/ नहीं
3. पंडित सदलामिश्र ने ‘नासिकेतोपाख्यान की रचना की। हाँ/ नहीं
4. पंडित लक्ष्मण सिंस ने राजा भोज का सपना लिखा हाँ/ नहीं

लघु उत्तरीय

1. अंग्रेजों की भाषा नीति पर प्रकाश डालिये (मात्र तीन पंक्तियाँ)
2. हिन्दी गद्य के विकास में पत्र पत्रिकाओं की भूमिका पर प्रकाश डालिये (मात्र तीन पंक्तियों में)

1.6 भारतेन्दु युग (सन् 1868-1900)

19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक हिन्दी गद्य का व्यापक प्रसार हुआ और इससे साहित्य रचना के पर्याप्त अवसर प्राप्त हुए। इसी अवधि में महान साहित्यकार भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने हिन्दी साहित्य संसार में प्रवेश किया। जिनके प्रयत्नों से हिन्दी गद्य को नयी दिशा प्राप्त हुई। भारतेन्दु हरिशचन्द्र का जन्म 2 सितम्बर सन् 1850 ई. को बनारस के एक धनी परिवार में हुआ। इनके साहित्य प्रेमी पिता श्री गोपाल चन्द्र ने नहुष वध नाटक तथा कुछ कविताऐं लिखी। पिता के इन्ही संस्कारों की छाप भारतेन्दु हरिशचन्द्र पर पड़ी इसलिए इन्होंने मात्र ग्यारह वर्ष की अवस्था में काव्य रचना प्रारम्भ कर दी। विभिन्न भाषाओं के जानकार भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने युवावस्था में कई नाटक और काव्यों के लेखन के अतिरिक्ति ‘कविवचन सुधा; हरिशचन्द्र मैगजीन’ तथा हरिशचन्द्र चन्द्रिका’ नामक पत्रिकाओं का भी सम्पादन किया। इन्ही पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी के अनेक गद्य लेखक प्रकाश में आये। भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने उस युग तक प्रयुक्त खड़ी बोली के गद्य को परिमार्जित किया। साथ ही भारतेन्दु जी ने गद्य के विभिन्न क्षेत्रों नाटक,

निबन्ध, समालोचना आदि विधाओं में नयी परम्परा का सूत्रपात किया। 35 वर्ष की अल्पायु में हिन्दी साहित्य के लिए किये गये इनके कार्यों को हिन्दी गद्य विकास की दिशा में सर्वाकृष्ट कार्य स्वीकारा जाता है। ये अपनी भाषा के विकास के प्रबल पक्षधर थे। इनका यह मानना था।

'' निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा शान के, मिटत न हिय को शूल''।

भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने ''वैदिक हिंसा, हिंसा न भवति'', प्रेम योगिनी, विषस्य विषऔषधम्, श्री चन्द्रावली नाटिका, भारत दुर्दशा, नील देवी और अंधेर नगरी जैसे मौलिक नाटक लिखे। इनके अनुदित नाटक हैं- ''विद्यासुन्दर, पाखण्ड विडम्बन, मुद्राराक्षस, सत्य हरिशचन्द्र, कर्पूर मंजरी, दुर्लभ बुंध आदि। स्वयं लेखन के अतिरिक्त भारतेन्दु ने अपने समय के अनेक लेखकों को गद्य लेखन के लिए प्रेरित किया । इससे लेखकों की एक ऐसी मंडली बनी जिसने भारतेन्दु की इस परम्परा को आगे बढ़ाया। भारतेन्दु की इसी परम्परा को ओग बढ़ाने वाले लेखकों में थे- पंडित प्रतापनारायण मिश्र, पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित बद्री नारायण चौधरी प्रेमधन, श्री जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', श्री बालमुकुन्द गुप्त, श्रीनिवासदास, श्री राधाकृष्ण दास आदि। इन सभी लेखकों ने गद्य की निबन्ध, नाटक, उपन्यास, एकांकी आदि विधाओं पर लेखनी चलायी।

पं0 प्रताप नारायण मिश्र ने कालि कौतुक व रूकमणि परिणय, हठी हमीर और गौ संकट जैसे नाटकों का सृजन किया। इसके अतिरिक्त पेट, मुच्छ, दान, जुआ आदि विषयों पर निबन्ध लिखे। इसके अतिरिक्त ब्राहमण' पत्रिका का प्रकाशन कर हिन्दी गद्य विधा को आगे बढ़ाया। पंडित बालकृष्ण भट्ट इसी श्रखंला की दूसरी कड़ी थे, जिन्होंने सम्वत् 1934 में 'हिन्दी प्रदीप' मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया। इन्होंने विभिन्न विषयों पर निबन्ध प्रकाशित किये। पंडित भट्ट ने पदमावती, शिशुपाल वध, चन्द्रसेन', जैसे नाटक सौ अजान एक सुजान, नूतन ब्रहमचारी, जैसे उपन्यास और आँख, नाक, कान जैसे विषयों पर ललित निबन्ध लिखे। पंडित बद्रीनारायण चौधरी ने इसी युग में, 'आनन्द कांदविनी, मासिक और 'नीरद' जैसे साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया। भारत सौभाग्य' वीरांगना रहस्य जैसे नाटक लिखकर चौधरी जी ने हिन्दी गद्य विधा को एक नया रूप प्रदान किया। भारतेन्दु युग के जिन प्रतिष्ठित साहित्यकारों की रचनाओं की आज भी प्रशंसा की जाती है वे हैं, श्री बालमुकुद गुप्त , लाल श्रीनिवास दास, श्री राधाकृष्ण दास, श्री बालकुकुद गुप्त ने हिन्दी गद्य की निबन्ध विधा को अत्यधिक समृद्धि प्रदान की। इनकी शिवशम्भू के चिट्ठे प्रसिद्ध रचना है। लाल श्रीनिवास दास ने इसी अवधि में 'प्रह्लाद चरित्र, तप्ता संवरण, रणधीर प्रेम मोहनी, संयोगिता स्वयंवर जैसे नाटक और 'परीक्षा- गुरू जैसा उपन्यास लिखा। श्री राधाकृष्णदास इस युग के प्रसिद्ध नाटकार थे। जिन्होंने दुःखिनी बाला, 'महारानी पदमावती, महाराणा प्रताप' सतीप्रताप जैसे नाटक तो 'निस्सहाय हिन्दु' जैस उपन्यास की रचना की।

भारतेन्दु युग के इन रचनाकारों के साहित्य के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि इन्होंने हिन्दी गद्य के विकास के लिए नाटक, निबन्ध , उपन्यास, आदि सभी विधाओं में साहित्य की सर्जना की । राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण इन लेखकों ने मौलिक साहित्य के अतिरिक्त अनेक अनुवाद भी किये। भारतेन्दु युग में जहाँ हिन्दी गद्य साहित्य को एक नयी दिशा मिली। वहाँ भाषाई संस्कार भी मिला।

अभ्यास प्रश्न

(9) भारतेन्दु हरिशचन्द्र के पिता का नाम था-

1. पंडित प्रतापनारायण मिश्र
2. चौधरी ब्रदीनारायण
3. श्री गोपाल चन्द्र
4. श्री राधा कृष्ण दास

(10) भारतेन्दु युग में निम्नलिखित विधा का विकास हुआ।

1. निबन्ध गद्य विधा का।
2. नाटक गद्य विधा का।
3. उपन्यास गद्य विधा का।
4. उपरोक्त समस्त गद्य विधाओं का।

(11) भारतेन्दु हरिचन्द्र ने हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए प्रकाशित की।

1. ब्राह्मण पत्रिका
2. कविवचन सुधा पत्रिका
3. हिन्दीप्रदीप पत्रिका
4. आनन्द कादंवनी

(12) नीचे दी गयी रचनाओं के समक्ष उनके लेखकों के नाम लिखिए।

1. नीलदेवी -
2. हठी हमीर -
3. शिशुपाल वध -
4. संयोगिता स्वयंवर -

1.7 द्विवेदी युग (सन् 1900-1920)

पूर्व में हम यह चर्चा कर चुके हैं कि भारतेन्दु हरिचन्द्र जैसे प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति से प्रेरणा प्राप्त कर अनेक लेखकों ने हिन्दी गद्य को समृद्ध किया। इस मंडली ने हिन्दी साहित्य के अनेक अध्येता और हिन्दी गद्य विकास और प्रचार के लिए अनेक मौलिक और अनुदित ग्रन्थ तैयार किये। इतना सब कुछ होने पर भी इस युग के गद्य लेखकों की गद्य भाषा में कई त्रुटियाँ मिलती हैं। इन कमियों को दूर करने के लिए जिस प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार ने अपनी लेखनी उठाई उन्हें साहित्य संसार पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम से जानता है। इन्होंने अपनी साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' के माध्यम से हिन्दी भाषा का परिमार्जन किया।

हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिका 'सरस्वती' का प्रकाशन इंडियन प्रेस इलाहाबाद द्वारा सन् 1900 से प्रारम्भ किया गया। इस पत्रिका ने सन् 1903 से सन् 1920 तक आचार्य महावीर द्विवेदी के सम्पादकत्व में जितनी प्रतिष्ठा प्राप्त की उतनी अन्य सम्पादकों के सम्पादकत्व में नहीं। 'सरस्वती' पत्रिका ने उस समय राष्ट्रीय वाणी को दिशा देने के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश कर यह सिद्ध किया कि हिन्दी भाषा में भी कठिन से कठिन विषयों को प्रस्तुत करने की क्षमता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित इस पत्रिका ने हिन्दी को गद्य की सभी विधाओं से सम्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। तथा इसमें व्याप्त अनगढ़पन और अराजकता को समाप्त कर इसे एक सुन्दर और सुगढ़ भाषा में प्रस्तुत किया।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1861 तथा मृत्यु 1938 में हुई थी। ये एक कवि होने के साथ-साथ एक निबन्धकार और समालोचक भी थे। इनका एक और सबसे बड़ा कार्य यह था कि इन्होंने 'सरस्वती' में प्रकाशन के लिए आने वाली रचनाओं की भाषा को सुधार कर उसे शुद्ध और एक रूप किया। आचार्य द्विवेदी की इच्छा थी कि खड़ी बोली हिन्दी अपना मानक रूप ग्रहण करें क्योकि इसके बिना किसी महान साहित्य की रचना करना सम्भव नहीं।

द्विवेदी जी ने उस युग की राष्ट्रीय चेतना और नव जागरण की भावना को पूर्ण आत्मसात किया। उन्होंने साहित्य के मध्य युगीन आदर्शों का विरोध तथा रीतिकालीन भाव बोधों और कलारूपों को अस्वीकार किया। इन्होंने अपने युग के साहित्यकारों से साहित्य को समाज से जोड़ने के लिए निवेदन किया। इन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि किसी भी देश की उन्नति अगर देखनी हो तो उस देश के साहित्य को अवलोकन करना चाहिए। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से प्रेमचन्द, मैथलीशरण गुप्त, माधव मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, नाथूराम शर्मा, शंकर, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, श्री पद्मसिंह शर्मा और अयोध्या सिंह उपाध्याय ''हरिऔध' के साहित्य को समाज तक पहुँचाया।

द्विवेदी ने गद्य की विभिन्न विधाओं में साहित्य लिखा गया। इस युग में निबन्ध, नाटक , उपन्यास, कहानी, आलोचना जैसी गद्य विधाओं ने अपना स्वतन्त्र रूप, ग्रहण किया जिनके माध्यम से अनेक साहित्यकार और रचनाएँ प्रकाश में आयीं। इसी काल में कहानी, उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द, नाटक के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद, निबन्ध के क्षेत्र में बालमुकुन्द गुप्त, सरदार पूर्णसिंह, रामचन्द्र शुक्ल तथा आलोचना के क्षेत्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ऐतिहासिक कार्य किये। इसके साथ ही इस काल में जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण या यात्रा वृतान्त जैसी कई नयी गद्य विधाओं में भी लेखन कार्य प्रारम्भ हुआ।

नाटक- हिन्दी नाटकों का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिचन्द्र ने अनेक नाटक लिख कर किया। भारतेन्दु युग के प्रायः सभी लेखकों ने नाटक लिखे। इसी का प्रभाव द्विवेदी युग पर भी पड़ा और उस युग में भी कई नाटक लिखे गये। इस युग में अंग्रेजी, बंगला और संस्कृत के नाटक अनुदित होकर हिन्दी में आये। अनुदित नाटकों में बंगला नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, गिरिश बाबू, विद्या विनोद, अंग्रजी नाटकार, शेक्सपियर, संस्कृत के नाटककार, कालिदास, भवभूति आदि नाटककारों के नाटकों के हिन्दी अनुवाद प्रकाश में आये। मौलिक नाट्य लेखन में पंडित किशोरीलाल गोस्वामी- चौपट चेपट, और मयंक मंजरी, अयोध्या प्रसाद उपाध्याय ‘हरिऔध’- रूक्मणी परिणय और प्रधुम्न विजय बाबू शिवनन्दन सहाय सुदमा नाटक, जैसे नाटक लिखे गये, ये सभी सामान्य नाटक थे जिनपर फारसी थियेटर का प्रभाव पड़ा, लेकिन साहित्यक दृष्टि से ये उच्चकोटि के नाटक नहीं थे। नाटाकों के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद ने उच्च कोटि का कार्य किया जो कि उच्चकोटि की साहित्यकता से ओत प्रोत हैं।

उपन्यास- उपन्यास आधुनिक युग का महाकाव्य कहलाता है। हिन्दी में जैसे ही गद्य का विकास हुआ, उपन्यास विधा भी अस्तित्व में आयी। भारतेन्दु युग से पूर्व श्रृद्धाराम फुल्लौरी ने ‘भाग्यवती’ उपन्यास लिखकर हिन्दी में उपन्यास विधा का प्रारम्भ किया। इसके बाद भारतेन्दु युग में लाला श्री निवासदास ने ‘परीक्षा गुरू’ उपन्यास की रचना की। भारतेन्दु युग में श्री राधाकृष्ण दास का ‘निःसहाय हिन्दु’ पंडित बालकृष्ण भट्ट का ‘नूतन ब्रह्मचारी’ (सन् 1892) श्री लज्जाराम शर्मा का ‘स्वतन्त्र रमा और परतन्त्र लक्ष्मी’ (सन् 1899) और धूर्त रसिकलाल, (सन् 1907) जैसे उपन्यास काफी लोकप्रिय हुए। द्विवेदी युग के उपन्यास कारों में सबसे समादृत श्री देवकीनन्दन खत्री हैं। जिन्होंने ‘चन्द्रकान्ता’ और चन्द्रकान्ता सन्नति’ जैसे ऐयारी और तिलस्मी उपन्यासों के माध्यम से जिस गद्य भाषा का प्रयोग किया, वह उर्दू हिन्दी मिश्रित भाषा है। द्विवेदी युग में पंडित किशोरी लाल गोस्वामी ने करीब छोटे-छोटे 65 उपन्यास लिखे। साथ ही इन्होंने ‘उपन्यास’ नामक एक मासिक पत्र भी निकाला। इनके उपन्यासों में ‘चपला’ ‘तारा’ तरूण, तपस्विनी, रजिया वेग़म, लीलावती, लवंगलता आदि उपन्यास प्रसिद्ध हैं। इसी युग में ‘हरिऔध’ जी ने ‘ठेठ हिन्दी का ठाठ’, और अधखिला फूल, लज्जाराम मेहता ने हिन्दु धर्म, आदर्श दम्पत्त्िा, बिगड़े का सुधार,आदि उपन्यास लिखे।

कहानी- वैसे तो भारत में कहानी 'कथा' के रूप में आदिकाल से ही चली आ रही थी। किन्तु जिसे वर्तमान की कहानी कहा जाता है। उसका यह स्वरूप काफी नहीं है। वैसे तो समीक्षक मुंशी इंशा अल्ला खाँ की लिखी ''रानी केतकी की कहानी'' को हिन्दी की प्रथम कहानी के पद पर विभूषित करते हैं लेकिन इसमें वर्तमान की कहानी के स्वरूप का अभाव है। इसके पश्चात् राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने 'राजा भोज का सपना' की रचना की, लेकिन ये सभी कहानी लेखन के छोटे प्रयास थे। हिन्दी कहानी की रचना का प्रारम्भ बीसवीं शदी के प्रथम दशक में हुआ। जबकि हिन्दी के प्रसिद्ध कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद ने कहानी लिखना प्रारम्भ किया। सन् 1911 में प्रसाद जी की ग्राम कहानी प्रकाशित हुई तो सन् 1915 में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की प्रसिद्ध कहानी ''उसने कहा था'' का प्रकाशन हुआ। सन 1915-16 से पूर्व मुंशी प्रेमचन्द ने उर्दू में कई कहानियाँ लिखी। इस तरह द्विवेदी युग में जिन कहानीकारों ने कहानियाँ लिख उनमें श्री विश्म्भर नाथ शर्मा, कौशिक, श्री सुदर्शन, श्री राधिका रमण प्रसाद सिंह, श्री जी.पी0 श्रीवास्तव, आचार्य चतुरसेन, आदि कहानीकार मुख्य हैं।

निबन्ध और समालोचना- निबन्ध और समालोचना हिन्दी गद्य की अभिन्न गद्य विधाएँ हैं। जिनका विकास भारतेन्दु युग से होने लगा था। भारतेन्दु युग के निबन्धों में जहाँ राष्ट्र और समाज के प्रति चिन्ता व्यक्त की गयी, वहाँ इनमें तीखा व्यंग्य और विनोद भी दिखाई दिया। द्विवेदी युग के निबन्धकारों में श्री बालमुकुन्द गुप्त ने इसी शैली को अपनाकर अपने निबन्धों को चर्चित किया। इनकी प्रसिद्ध रचना ''शिवशम्भू का चिट्ठा'' इसी शैली के निबन्धों से ओत प्रोत कृति है। इनके अतिरिक्त, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, पंडित माधव मिश्र, सरदार पूर्णसिंह, बाबू श्याम सुन्दरदास, पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बाबू गुलाब राय, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्विवेदी युग के ही निबन्धकार हैं। जिनकी निबन्ध भाषा और परिमार्जित है।

द्विवेदी युग में ही समालोचना का आरम्भ हुआ। वैसे इसका सूत्रपात भारतेन्दु काल में हो चुका था। इसकी सूचना इमें 'आनन्द कादंबिनी' से मिलती है। जिसमें कि लाला श्रीनिवास दास के नाटक 'संयोगिता स्वयंवर' की विशद आलोचना प्रकाशित हुई थी। किन्तु समालोचना का वास्तविक प्रारम्भ द्विवेदी युग से हुआ। इसी युग में आलोचना के सैद्धान्तिक पक्ष से सम्बन्धित कई लेख प्रकाशित हुए। वैसे भारत में समीक्षा की काई परम्परा नहीं थी यहाँ के विद्वान समीक्षा के नाम पर किसी भी कृति के गुण दोषों पर ही प्रकाश डालते थे लकिन द्विवेदी युग में ही इसका आरम्भ हुआ। इस युग की प्रथम समीक्षा कृति महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'कालिदास की निरंकुशता' थी। जिसमें उन्होंने लाल सीताराम बी0ए0 के अनुवाद किये नाटकों के भाषा तथा भाव सम्बन्धी दोष बड़े विस्तार से प्रदर्शित किये। इस युग में आचार्य द्विवेदी के अतिरिक्त जिन अन्य लेखकों ने समीक्षा साहित्य को गतिप्रदान की उनमें मिश्र बन्धु, बाबू श्याम सुन्दर दास, पदम सिंह शर्मा, डॉ0 पीताम्बर दत्त बडथ्वाल, श्री कृष्ण विहारी मिश्र, बाबू गुलाब राय जैसे समीक्षक है। लेकिन समीक्षा के क्षेत्र में जो युगांतकारी कार्य आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया उसे द्विवेदी युगीन कोई दूसरा समीक्षक नहीं कर सका।

अभ्यास प्रश्न

(13) हिन्दी भाषा और साहित्य को नई दिशा देने वाली पत्रिका 'सरस्वती' के सम्पादक थे।
1. बाबू गुलाबराय
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
3. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
4. बाबू श्याम सुन्दरदास

(14) द्विवेदी जी के साहित्य में निम्नलिखित चार प्रवृत्तियों में से एक सही नहीं है।
1. पद्य और गद्य की भाषागत एकता
2. राष्ट्रीय भावना और नवजागरण को प्रोत्साहन
3. रीतिकालीन भावबोध का समर्थन
4. समाज के अनुकूल साहित्य रचने की प्रेरणा

(15) नीचे कुछ रचनाओं के नाम दिये गये हैं। इनके रचना कारों के नाम लिखिये।
1. ठेठ हिन्दी का ठाठ
2. ग्राम
3. तरूण तपस्विनी
4. प्रेमा

लघु उत्तरीय प्रश्न

3. भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग के निबन्धों की दो भिन्नताएँ बताइए।
4. द्विवेदी युग के संन्दर्भ में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की भूमिका का विवेचन चार पंक्तियों में कीजिये।

1.8 प्रेमचन्द और उनके पश्चात्

द्विवेदी के पश्चात् जिन साहित्यकारों ने गद्य साहित्य को नयी दिशा प्रदान की, मुंशी प्रेमचन्द भी उनमें से एक हैं। मुंशी प्रेमचन्द ने यद्यपि लेखन का कार्य द्विवेदी युग से ही आरम्भ कर लिया था लेकिन इनकी रचनाओं में एक नवीनता के दर्शन होते हैं। इसीलिए इनकी उपन्यास और कहानी विधाओं से एक नये युग का प्रारम्भ होता है। प्रेमचन्द ने इस युग में कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध और जीवनियाँ लिखी। इनकी इन सभी विधाओं में समाज और दशा की वास्तविक स्थिति के दर्शन होते हैं। प्रेमचन्द ने अपने जीवन में लगभग 300 कहानियों की रचना की। इनकी ये सभी कहानियाँ मानसरोवर के आठ भागों में संकालित हैं। इनमें से ईदगाह,

कफन, शंतरंज के खिलाड़ी, पंचपरमेश्वर, अलग्योझा, बड़े घर की बेटी, पूस की रात', नमक का दरोगा, ठाकुर का कुआँ, श्रेष्ठ कहानियाँ हैं।

उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द उपन्यास सम्राट कहलाते हैं। इस विधा में इन्होंने देश की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। इनके रंगभूमि, कर्मभूमि, सेवासदन, गबन जैसे उपन्यास देश की इन्ही समस्याओं को उजागर करते हैं। प्रेमचन्द के इस युग में उपन्यास साहित्य को समृद्ध करने में जिन साहित्यकारों का योगदान रहा है उनमें जयशंकर प्रसाद, आचार्य चतुरसेन, विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक, बेचेन पाण्डेय, इलाचन्द्र जोशी, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवती चरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जैनेन्द्र अज्ञेय, यशपाल, नागार्जुन, फणीश्वर नाथ रेणु, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, अमृतलाल नागर मुख्य हैं। इसी तरह प्रेमचन्द के समकालीन जिन कहानीकारों ने हिन्दी कहानी को एक नयी दिशा प्रदान की, उनमें उपरोक्त उपन्यासकारों के साथ-साथ अमृराय, मन्मथनाथ,गुप्त, रांगेय राघव, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मार्कण्डेय, उषा प्रियवंदा, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोवती का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

प्रेमचन्द युग के नाटकों में जयशंकर प्रसाद के नाटय आदर्शवादी नाटक हैं,। इसलिए जयशंकर प्रसाद को इस युग का युग प्रवर्तक नाटककार माना जाता है। इनके ऐतिहासिक नाटकों में राष्ट्रीय चेतना और भारतीय संस्कृति की झलक सर्वत्र दिखायी देती है। कामना, जनमेजय का नाग यज्ञ, राजश्री, विशाखा, अजातशत्रु, स्कंदगुप्त, चन्द्र गुप्त और ध्रुवस्वामिनी इनके बड़े और महत्व वाले नाटक हैं। जयशंकर प्रसाद के अतिरिक्त इस युग के अन्य नाटककारों में प्रमुख हैं श्री जगदीश चन्द्र माथुर- कोणार्क, पहला राजा, शारदीय, मोहन राकेश- आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, और आधे अधूरे, इनके अतिरिक्त हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, गोविन्द बल्लभ पन्त, लक्ष्मी नारायण मिश्र, सेठ गोविन्द दास, जगन्नाथ दास मिलिन्द, लक्ष्मी नारायण लाल, विष्णु प्रभाकर, ब्रजमोहन शाह, रमेश बक्षी, मुद्राराक्षस, इन्द्रजीत भाटिया भी उच्चकोटि के नाटकार हैं।

प्रेमचन्द युग में नाटकों के अतिरिक्त एकांकी भी लिखे गये। जिन्हें उपरोक्त नाटकारों के अतिरिक्त कुछ एकांकीकारों में डॉ0 रामकुमार वर्मा का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। पृथ्वीराज की आँखें, रेशमी राई, कौमुदी महोत्सव, राजरानी सीता इनके प्रसिद्ध एकांकी हैं। प्रेमचन्द के युग में नाटक, उपन्यास, काहनी, एकांकी, के अतिरिक्त निबन्ध, आलोचना, आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण आदि गद्य विधाओं की भी पर्याप्त प्रगति हुई। इस युग के निबन्धकारों में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, बाबू गुलाब राय, वासुदेव शरण अग्रवाल सदगुरूशरण अवस्थी, शांतिप्रिय द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ0 नगेन्द्र, विद्यानिवास मिश्र, कुवेरनाथ राय, विष्णुकान्त शास्त्री, आदि निबन्धकार मुख्य हैं। प्रेमचन्द जी के युग में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जिस समालोचना साहित्य का श्री गणेश किया उसी को आगे बढाने

में आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी, डॉ0 नगेन्द्र, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, डॉ0 देशराज, डॉ0 राम विलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, नामवरसिंह, डॉ0 आनन्द प्रकाश दीक्षित की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

प्रेमचन्द और उनके बाद के साहित्य पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस युग के साहित्य पर युगीन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा। इस काला की रचनाओं में जहाँ लेखकों ने सामाजिक समस्याओं पर अपनी गहरी दृष्टि डाली वहाँ मनोवैज्ञानिक समस्याओं को भी साहित्य में स्थान दिया। इस युग के गद्य साहित्य में देश की राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव भी पड़ा। यही नहीं अन्तराष्ट्रीय परिवर्तनों के प्रभाव से भी इस काल का साहित्य प्रभावित रहा। सन् 1947 में जब भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और रूस में समाजवाद का उद्भव व उदय हुआ तो इस काल के गद्य साहित्य में प्रगतिवाद ने प्रवेश किया। इस काल के साहित्य पर पश्चिम की वैज्ञानिक प्रगति का भी प्रभाव पड़ा । इसी के फलस्वरूप गद्य की नयी-नयी विधाओं ने जन्म लिया। यात्रावृत्त, जीवनी, डायरी, आत्मकथा, रिपार्ताज जैसी नवीन गद्य विधाएँ इसी के परिणाम हैं।

अभ्यास प्रश्न

(16) निम्नलिखित वाक्यों की पूर्ति कीजिये।

1. गोदान प्रेमचन्द का प्रसिद्ध .... है।
2. 'आषाढ़ का एक दिन' के लेखक हैं......................।
3. 'पृथ्वीराज की आँखें'......................... का प्रसिद्ध एकांकी है।

(17) प्रेमचन्द और उनके बाद के किन्ही चार उपन्यासकारों के नाम लिखिए।

(18) हिन्दी निबन्ध के किन्ही तीन निबन्धकारों के नाम लिखिए।

1.9 सारांश

हिन्दी गद्य विकास की इस इकाई में आपने इन तथ्यों का अध्ययन किया।

- गद्य और पद्य का अन्तर
- हिन्दी गद्य की पृष्ठ भूमि
- हिन्दी गद्य का विकास
- अंग्रेजी की भाषा नीति
- भारतेन्दु युगीन गद्य

1.10 शब्दावली

सोद्देश्य-	उद्देश्य के साथ
प्राणयण-	तन-मन से
शून्यता -	खालीपन
परिणाम-	फलतः
उपदेशात्मकता-	उपेदश देने की वृत्ति
सृजान-	निर्माण
व्यक्त-	प्रकट
श्रृंखला-	कड़ी, जंजीर, पंक्ति वद्धता
साम्राज्य-	शासन
ओत प्रोत-	परिपूर्ण

1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) 1. कविता में गेयता होती थी (सत्य)
2. (सत्य)
3. (असत्य)
4. (सत्य)

(2) (3) विक्रमी सम्वत् 1660

(3)

1.	श्रृंगार मण्डल	-	गोसाई विट्ठलनाथ
2.	चौरासी बैष्णव की वार्ता	-	गोकुलनाथ
3.	सब रस	-	मुल्ला वजही
4.	चंद छन्द बरनन की महिमा	-	गंग कवि

(4) 4. उपरोक्त सभी

(5) 3. स्वामी दयानन्द ने।

(6) 3. उदन्त मार्तण्ड

(7) 3. राजा लक्ष्मण सिंह

(8) 1. हाँ 2. नहीं 3. हाँ 4. नहीं

(9) 3.

(10) 4.

(11) 2.

(12)

1.	नील देवी-	भारतेन्दु हरिशचन्द्र
2.	हठी हमीर-	पंडित बालकृष्ण भट्ट
3.	शिशुपाल वध-	पंडित श्री निवासदास

4. संयोगिता स्वयंवर- लाला श्री निवास दास

(13) 3. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

(14) 3. रीतिकालीन भाव बोध का समर्थन

(15) 1. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
2. जयशंकर प्रसाद
3. पंडित किशोरी लाल गोस्वामी
4. मुंशी प्रेमचन्द

(16) 1. गोदान प्रेमचन्द का प्रसिद्ध उपन्यास है।
2. आषाढ़ का एक दिन के लेखक हैं- मोहन राकेश।
3. पृथ्वीराज की आँखें डॉ0 राम कुमार वर्मा का प्रसिद्ध एकांकी है।

(17) 1. जयशंकर प्रसाद
2. आचार्य चतुरसेन।
3. गुरूदत्त
4. यशपाल

(18) 1, डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल

2, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

3, पंडित बालकृष्ण भट्ट

1.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास।
2. राय, बाबू गुलाब, हिन्दी साहित्य का सुगम इतिहास।
3. मिश्र, लल्लूलाल, प्रेम सागर।

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. हिन्दी गद्य के उदय की पृष्ठभूमि विवेचित कीजिए।
2. द्विवेदी युगीन गद्य की विशेषताएँ वर्णित कीजिए।

इकाई - 2 हिन्दी कहानी का उद्भव व विकास

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 हिन्दी कहानी का उद्भव
2.4 हिन्दी कहानी का विकास
2.4.1 प्रेमचन्द से पूर्व की कहानी
2.4.2 प्रेमचन्द युग की कहानी
2.4.3 प्रेमचन्दोत्तर युग की कहानी
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

स्नातक प्रथम वर्ष के हिन्दी विषय- प्रथम प्रश्न पत्र खण्ड-1 के अन्तर्गत यह द्वितीय इकाई है। इसमें हिन्दी कहानी के उद्भव व विकास पर प्रकाश डाला गया है। इस हिन्दी कहानी के पूर्व भी भारत वर्ष में कहानी का अस्तित्व था, लेकिन अंग्रेजों के भारत आगमन के पश्चात् हिन्दी कहानी जिस रूप में आयी इसका यहाँ पर विस्तृत विवेचन किया गया है। यह विधा वर्तमान में पूर्ण रूप से गद्य की विधा है। जो समय-समय पर अनेक विचारों वादों और साहित्य आन्दोलनों से प्रभावित होती रही। इसकी इसी विकास यात्रा पर हम इस इकाई में गहनता से विचार करेंगे।

2.2 उद्देश्य

आप स्नातक प्रथम पर्ष के प्रथम प्रश्न पत्र के खण्ड-1 की इकाई-2 'हिन्दी कहानी का उद्भव का विकास' पढ़ने जा रहे हैं, इस इकाई में हिन्दी कहानी के उद्भव व विकास पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

- हिन्दी गद्य की कहानी के विषय में जान सकेंगे।
- हिन्दी कहानी के उद्भव की कथा को समझ सकेंगे।
- हिन्दी कहानी के क्रमिक विकास को जान सकेंगे।
- प्रेमचन्द से पूर्व की कहानी और कहानीकारों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रेमचन्द के युग की कहानी और कहानीकारों के विषय में पूर्व जानकारियाँ प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रेमचन्द युग पश्चात की कहानी और कहानी की युग धारा को समझ सकेंगे।
- हिन्दी कहानी के विभिन्न कहानीकारों के विषय में जान सकेंगे।
- हिन्दी भाषा साहित्य की विभिन्न कहानियों के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

2.3 हिन्दी काहानी का उद्भव

कहानी शब्द हमारे लिए अपरचित शब्द नहीं है, क्योंकि बचपन में हम जिसे कथा कहते थे, कहानी उसी कथा का साहित्यिक रूप है। इस कहानी को हमने कभी दादी-नानी के मुख से लोक कथा के रूप में सुना तो कभी पण्डित जी के मुख से धार्मिक कथा के रूप में, ये सभी राजा रानी की कहानियाँ, पशु पक्षियों की कहानियाँ, देवताओं और राक्षसों की कहानियाँ, चमत्कारों और जादूटोनों की कहानियाँ, भूत प्रेतों की कहानियाँ, मूर्ख और बुद्धिमानों की कहानियाँ वर्तमान की कहानियाँ कर पुरातन स्वरूप थीं, जिन्हें लोग बड़े चाव से सुनते और सुनाते थे। इनके अतिरिक्त, पुराण, रामायण, महाभारत, पन्चतंत्र, बेताल पच्चीसी, जातक कथाएँ आदि कई प्राचीन ग्रन्थ इन कहानियों का आदि स्रोत रहे हैं। इन कहानियों को पढ़ने-सुनने से जहाँ जन सामान्य से लेकर विद्वानों का मनोरंजन होता था, वहाँ इनके माध्यम से अनके शिक्षाएँ तथा उद्धेश्य प्राप्त होते थे। इन कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि इन्हें एक ही साथ कई घंटों और दिनों तक सुना जा सकता है। जिन्हें बार-बार सुनने पर नीरसता की अपेक्षा और अधिक सरसता प्राप्त होती है। ये सभी कहानियाँ हमें परम्परा से प्राप्त हुई, इनमें अतिसंख्य कहानियाँ कल्पना पर आधारित होती हैं, लेकिन कहीं-कहीं इन कहानियों में ऐतिहासिक तथ्यों को भी उजागर किया जाता है। ये ही कहानियाँ वर्तमान कहानी का प्राचीन स्वरूप है।

प्राचीन कहानियाँ घटना प्रधान होती थी, जिस घटना के माध्यम से लेखक या वक्ता अपने उद्धेश्य की पूर्ति करते थे। इसके लिए वे कहानियों की घटनाओं को मनोइच्छित रूप देते थे। कहानी की रचना के लिए वे काल्पनिक, दैवीय, और चमत्कारी घटनाओं का आविष्कार करते थे। लेकिन वर्तमान की कहानी पुरातन कहानी से एकदम भिन्न है। क्योंकि आज का कहानीकार कहानी की घटना को मानव के यथार्थ जीवन से जोड़ता है, कहानी लिखते एमय

कहानीकार यह ध्यान रखता है कि जिस कहानी की वह रचना कर रहा है वह अस्वाभाविक न लगे। जिस चरित्र को वह प्रस्तुत कर रहा है, वह समाज के अन्दर क्रियाशील मानव की भाँति ही प्रतीत हो। वह उसके द्वारा ऐसे कार्य नहीं करा सकता जो मुनष्य के लिए असम्भव हो। पुरातन कहानियों के चरित्र ऐसे होते हैं जो असम्भव कार्य को कर देते है। लेकिन वर्तमान की कहानियाँ के पात्र अपने समय और परिस्थितियों के अनुकूल क्रियाशील होते हैं। आज समाज में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं जिसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ रहा है, इसीलिए इसी साहित्य के गद्य रूप कहानी में भी काफी बदलाव आ रहे हैं। वर्तमान की हिन्दी कहानी का उद्भव 18 वीं सदी से लेकर 19 वीं शदी के मध्य में हुआ। कुछ विद्वान हिन्दी कहानी के प्रारम्भ के अन्तर्सूत्र भारत की प्राचीन कथा परम्परा से जोड़ते है तो कुछ कहानी विधा को पाश्चात्य साहित्य की देन मानते हैं। कुछ साहित्यधर्मी हिन्दी कहानी का उद्भव स्रोत्र गुणाढ्य की वृहद कथा, कथा सरित सागर, पंचतंत्र कथाएँ, हिंतोपदेश जातक कथाओं से जोड़ते हैं तो कुछ विद्वान स्वामी गोकुल नाथ की चौरासी वैष्णवन की वार्ता को हिन्दी का प्रथम कहानी संग्रह मानते हैं, लेकिन ये कहानियाँ नही जीवनियाँ मात्र हैं।

2.4 हिन्दी कहानी का विकास

जैसा कि विद्वान स्वीकारते हैं कि खड़ी बोली हिन्दी में कहानी का आरम्भ उस समय हुआ जब अंग्रेजों के प्रभाव से गद्य लिखा गया। अंग्रेजों ने हिन्दी गद्य के विकास के लिय जिन लेखकों को तैयार किया उनकी आरम्भिक रचनाएँ एक तरह की कहानियाँ हैं। इन गद्य लेखकों में इंशा अल्ला खाँ एक ऐसे गद्यकार थे जिन्होंने ''रानी केतकी कहानी'' जैस कहानी का सृजन किया लेकिन वर्तमान के समालोचक इसे आधुनिक हिन्दी कहानी के स्वरूप और कथ्य से भिन्न मानते हैं। वर्तमान में कहानी के लिए जिन तत्वों को निर्धारित किया गया है, रानी केतकी की कहानी में वे सभी तत्व नहीं मिलते। वर्तमान की कहानी लेखन की प्रेरणा पूर्व में अंग्रेजी और बंगला में रची गयी और हिन्दी में अनुदित कहानियों से मिली, क्योंकि 19 वीं शताब्दी में अंग्रेजी, रूसी, फ्रेंच आदि भाषाओं में कहानी का अच्छा विकास हो चुका था।

'नासिकेतो पाख्यान' तथा 'रानी केतकी' की कहानी को हिन्दी की प्रथम कहानी न मानने के पीछे उसमें कहानी तत्वों का अभाव है। इसके पश्चात् भारतेन्दु की 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' तथा राधाचरण गोस्वामी की 'यमलोक की यात्रा' प्रकाश में आयी लेकिन विद्वानों ने इनमें भी कहानी कला के तत्वों के अभाव के दर्शन किये। वैसे हिन्दी कहानी का प्रारम्भ सन् 1900 में प्रकाशित होने वाली उस 'सरस्वती' पत्रिका से हुआ जिससे पंडित किशोरी लाल गोस्वामी को 'इन्दुमती' (1900ई0) को प्रकाशन हुआ था। हिन्दी कहानी के इस विकास पर गहरी दृष्टि डालने के लिए हमें हिन्दी कहानी के महान कहानी कार प्रेमचन्द को केन्द्र में ररखकर चर्चा करनी होगी।

अभ्यास प्रश्न

(1) हिन्दी की प्राचीन कहानियाँ हैं- एक पर सही का चिहन लगायें-

1. राजा-रानी की कहानियाँ ( )
2. देवताओं और राक्षसों की कहानियाँ ( )
3. पशुपक्षियों की कहानियाँ ( )
4. उपरोक्त सभी की कहानियाँ ( )

(2) प्राचीन कहानियाँ-

1. यथार्थवादी कहानियाँ हैं,
2. वैज्ञानिक कहानियाँ हैं,
3. काल्पनिक कहानियाँ हैं,
4. कहानी तत्वों के आधार पर लिखी कहानियाँ हैं,

(3) हिन्दी की प्रथम कहानी है-

1. नासिकेतोपाख्यान
2. रानी केतकी की कहानी
3. इन्दुमती
4. अद्भुत अपूर्व स्वप्न

(4) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें -

1. 'चौरासी बैष्णवन की वार्ता,.................... की रचना हैं
2. वर्तमान कहानी लेखन की प्रेरणा पूर्व में .... कहानियाँ से मिली।

हिन्दी कहानी के विकास में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका उपन्यास सम्राट मुशी प्रेमचन्द ने निभायी। इस युग पुरूष ने अपनी कहानियों को विविध शैलियों के माध्यम से साहित्य संसार को सौंपा, इसलिए कहानी साहित्य संसार शिरोमणियों ने हिन्दी कहानी परम्परा में प्रेमचन्द का स्थान केन्द्रीय महत्व का स्वीकारा। मुशी प्रेमचन्द ने अपने जीवन काल में तीन सौ कहानियाँ लिखी, इन्होंने हिन्दी कहानी को वह श्रेष्ठता प्रदान की जिससे प्रेरणा प्राप्त कर हिन्दी के अन्य कहानिकारों ने हिन्दी कहानी कोष की श्रीवृद्धि की, इसलिए हिन्दी कहानी के विकास के केन्द्र में मुंशी प्रेमचन्द को रखकर हम तीन चरणों में बाँटते हैं -

1. प्रेमचन्द से पूर्व की कहानी - सन् 1901 से 1914 ई0
2. प्रेमचन्द युग की कहानी (सन् 1914 से सन् 1936 ई0)

3. प्रेमचन्दोत्तर युग की कहानी (सन् 1936 से वर्तमान तक) प्रवृत्तियों की दृष्टि से इन चरणों को कई धाराओं में विभाजित किया जाता है जिनका विवेचन हम यहाँ निम्न प्रकार से करते हैं।

2.4.1 प्रेमचन्द युग से पूर्व की कहानी (सन् 1901 से सन् 1914 ई0)

जैसा कि विद्वान प्रेमचन्द पूर्व युग कहानी का समय सन् 1901 सन् 1914 तक मानते हैं। हिन्दी की प्रथम कहानी कौन है ? इस विषय में काफी विवाद हैं। हिन्दी गद्य की प्रारम्भिक आवधि में मुंशी इंशा अल्ला खाँ ने 'उदय भान चरित्र' या रानी केतकी की कहानी की रचना की थी। समय की दृष्टि से यह सबसे पुरानी कहलाती हैं परन्तु आधुनिक कहानी कला की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण रचना नही है।

आचार्य हजारी प्रसार द्विवेदी का विचार है कि- "यह मुस्लिम (फारसी) प्रभाव की अन्तिम कहानी है यद्यपि इसकी भाषा और शैली में आधुनिक कहानी कला का आभास मिल जाता है।" राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की कहानी 'राजाभोज का सपना' भी ऐसी ही कहानी है, इसमें भी थोड़ा बहुत आधुनिकता का स्पर्श मिलता है। इन कहानियों के अतिरिक्त किशोरी लाल गोस्वामी की इन्दुमती, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की ' ग्यारह वर्ष का समय' बग महिला की 'दुलाई वाली' आदि कहानियाँ इसी कोटि की कहानियाँ हैं। इन कहानियों को हम प्रयोगशील कहानियाँ कह सकते हैं। जिनमें कहानी लेखकों ने विदेशी और बंगला कहानियों के प्रभाव में आकर हिन्दी भाषा में भी कहानी लिखने का भी प्रयास किया। कहानी कला को केन्द्र में रखकर वर्तमान के समालोचक अब माधव राव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' को हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं जिसका प्रकाशन सन् 1903 में हुआ था।

प्रेमचन्द युग से पूर्व की कहानियों की विशेषताऐं-

1. प्रेमचन्द पूर्व युग की आरम्भिक कहानियाँ पुरान स्वरूप की थी। जिनका कथानक अलौकिक चमत्कारो से युक्त होता था।
2. प्रेमचन्द पूर्व युग की आरम्भिक कहानियाँ प्रायः आदर्श-वादी होती थी जिनमें भावुकता के साथ किसी भारतीय आदर्श की कथा कही जाती थी।
3. प्रेमचन्द युग की कहानियाँ धीरे-धीरे यथाथ्र की और उन्मुख हुई, लेकिन इस यथार्थ का रूप ऐसा नहीं था जैसा कि प्रेमचन्द की कहानियों में मिलता है।
4. भाषा की दृष्टि से इस युग की कहानियों की भाषा उतनी प्रौढ़ और परिमार्जित भाषा नहीं है जितनी प्रेमचन्द की कहानियों में है।
5. इस युग के कहानीकार प्रयोगधर्मी कहानी कार अधिक थे, इसलिए उस युग की कहानी प्रयोगधर्मी कहानियाँ अधिक है।

2.4.2 प्रेमचन्द युग की कहानी (सन् 1915 से 1936 तक)

हिन्दी कहानी का प्रेमचन्द युग का आरम्भ सन् 1915 ई0 से माना जाता है। मुशी प्रेमचन्द जिस अवधि में कहानियाँ लिख रहे थे उसी अवधि में कई कहानीकारों ने इस विधा को आगे बढ़ाने के लिए अपनी लेखनियाँ उठायी। जिनमें जयशंकर प्रसाद, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, सुदर्शन आदि मुख्य कहानीकार हैं। इसी युग में जिन अन्य कहानीकारों ने हिन्दी कहानी विधा को नई दिशा प्रदान की उनमें श्री विश्वम्भर नाथ शर्मा, 'कौशिक', आचार्य चतुर सेन शास्त्री, राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह, श्री शिव पूजन सहाय, श्री वृन्दावन लाल वर्मा, श्री गोपाल राम गहमरी, श्री रायकृष्ण दास, पदुम लाल पुन्नालाल वख्शी, रमाप्रसाद धिल्डियाल पहाड़ी पंडित ज्वाला प्रसाद शर्मा, श्री गंगाप्रसाद श्रीवास्तव आदि का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। अनके पत्र-पत्रिकाओं में इन कहानीकारों की कहानियाँ प्रकाशित हुईं, जिससे हिन्दी कहानी के लेखक ही नहीं पाठकों की संख्या में भी वृद्धि हुई, इस युग के जिन मुख्य कहानीकारों की साहित्य सेवा का आंकलन करने के लिए साहित्य के इतिहासकारों ने इन्हें विशेष रूप से सम्मान दिया वे इस प्रकार हैं-

पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी - हिन्दी के श्रेष्ठ कहानीकारों में प्रेमचन्द युगीन कहानीकार पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी को का नाम भी बड़े समादर से लिया जाता है। यदि आधुनिक कहानी कला की दृष्टि से किसी कहानी को हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानी कहा जाय तो वह है – **उसने कहा था:** यह कहानी यथार्थवादी कहानी है जो एक आदर्श को प्रस्तुत करती है। गुलेरी जी ने इसके अतिरिक्त सुखमय जीवन और बुद्धु का कांटा दो कहानियाँ और लिखी।

जयशंकर प्रसाद- प्रेमचन्द युम में ही जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी में कई कहानियाँ लिखी लेकिन इनकी कहानियाँ प्रेमचन्द की कहानी शैली से बिल्कुल भिन्न कहानियाँ हैं। एक राष्ट्रवादी साहित्यकार होने के कारण इनकी कहानियों में राष्ट्रीय भावना और सांस्कृतिक चेतना का प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रसाद जी ने आधिकांश ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी हैं, जिनकी भाषा संस्कृत निष्ठ, भाव प्रधान, अलंकारिक और काव्यात्मक है। यही नहीं इनकी कहानियों में नाट्य शैली के भी दर्शन होते हैं, इनकी कहानियों में आकाश दीप, पुरस्कार, ममता, इन्द्रजाल, छाया, आँधी, दासी जैसी कहानियाँ आदर्शवादी कहानियाँ हैं तो मधुवा, और गुंडा जैसी कहानियाँ यथार्थवादी कहानी।

मुंशी प्रेमचन्द- मुंशी प्रेमचन्द हिन्दी कहानी संसार के लिए वरदान बनकर आये, इनकी हिन्दी की पहली कहानी पंच परमेश्वर सन् 1915 में प्रकाशित हुई। 'पंच परमेश्वर' प्रेमचन्द जी की एक आदर्शवादी कहानी है जिसमें मनुष्य के अन्दर छिपे दैवत्व के गुणों को उजागार किया गया है। लेकिन इनकी बाद की कहानी यथार्थवादी कहानियाँ हैं जिनमें ग्रामीण और शहरी पददलितों के जीवन में घटने वाली घटनाओं को कहानियों के माध्यम से सार्वजनिक किया गया है। इस सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं -

प्रेमचन्द, शताब्दियों से पददलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज थे, पर्दे में कैद, पद-पद लांछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जवरदस्त वकील थे। गरीबों और बेबसों के महत्व के प्रचारक थे। (हिन्दी साहित्यः उद्भव और विकास पृष्ठ- 266)

प्रेमचन्द ने अपने युग की सामाजिक बुरी दशा को अपने उपन्यास तथा कहानियों का विषय बनाया। अपने इस कथा साहित्य के माध्यम से प्रेमचन्द जी ने स्पष्ट किया था कि हमारे सामाजिक कष्टाकें के दो ही कारण हैं- एक धार्मिक अंधविश्वास और सामाजिक रूढ़ीवादिता और दूसरा आर्थिक शोषण और राजनीतिक पराधीनता, इनका सारा कथा साहित्य इसी पर केन्द्रीत है। इनकी आरम्भिक कहानियाँ आर्दशवादी कहानियाँ हैं लेकिन धीरे-धीरे इन्होंने यथार्थ से नाता जोड़ा । प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों के पात्र गरीब, बेबस और दबे-कुचले लोगों को बनाया। इन सबके अन्दर गुप्त मानवतावाद को एक नया प्रकाश दिया, प्रेमचन्द ने जहाँ अपनी कहानियों के माध्यम से समाज में व्याप्त रूढ़ीवाद और कुरीतियाँ के दमन के उपाय सुझाए वहाँ राजनैतिक पराधीनता और आर्थिक शोषण के प्रति विद्रोही आवाज उठायी। प्रेमचन्द की कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ इनके इसी भावों को प्रदर्शित करती है।

इनमें मुख्य हैं- ‘कफन’, पूस की रात, शतरंज के खिलाड़ी, दूध का दाम, ठाकुर का कुआँ, नशा, बड़े भाई साहब, सवा सेर गेहूँ, अलाग्योझा, नमक का दरोगा, पंचपरमेश्वर, ईदगाह, बूढ़ी काकी, ईदगाह आदि। इनमें से कुछ यथार्थवादी कहानियाँ हैं तो कुछ आदर्शवादी कहानियाँ।

भाषा की दृष्टि से मुंशी प्रेमचन्द की भाषा तत्कालीन समाज की बोल चाल की भाषा हैं। जिसे हम लोक भाषा का अनुपम उदाहरण कह सकते हैं। हिन्दी उर्दू शब्दों की यह मिश्रित भाषा वर्तमान में भी उतनी ग्राह्य और भाव बोधक है जितनी इनके लिखने समय में थी।

विश्वम्भर नाथ शर्मा- प्रेमचन्द के समान ही विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक की कहानियाँ में आदर्श और यथार्थ का समन्वय दिखाई देता है। इनकी कहानियाँ भी घटना प्रधान और वर्णात्मक है। ताई, ‘रक्षावधन’, ‘माता का ह्रदय’, कृतज्ञता आदि कहानियों में जहाँ मानवीय भावों की सक्ष्म व्यंजना हुई है। वहाँ आदर्श के नये रूप के दर्शन होते हैं। श्री काशिक ने अपने जीवनकाल में तीन सौ कहानियाँ लिखी हैं, ‘मणिमाला’, ‘चित्रशाला’, कल्लौल, कला-मन्दिर, इनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह है।

श्री सुदर्शन- प्रेमचन्द युगीन कहानिकारों में श्री सुदर्शन का नाम भी बड़े आदर से लिया जाता है। इन्होंने भी प्रेमचन्द की भाँति अनेक घटना प्रधान कहानियाँ लिखी, इनकी इन कहानियों के पात्र सामान्य कोटि के मजदूर, किसान आदि पात्र हैं जिनका सम्बन्ध ग्रामों और नगरों के सामान्य मध्यमवर्ती मोहल्लों से है। इनकी अनेक कहानियाँ मानवीय संवदनाओं की मार्मिक आर्मव्यक्ति देती है। इनकी कई लोक प्रिय कहानियाँ हैं- जिनमें ‘हार की जीत’, सलबम,

आशीर्वाद, न्याय मंत्री, एथेन्स का सत्यार्थी , कवि का प्रार्याश्चित, आदि लोकप्रिय कहानियाँ हैं। इनके सभी कहानियाँ पनघट, सुदर्शन सुधा, तीर्थ यात्रा आदि कहानी-संग्रहों में संग्रहित है।

बाबू गलाब राय के शब्दों में - प्रेमचन्द, कौशिक और सुदर्शन, हिन्दी- कहानी साहित्य के प्रेमचन्द स्कूल के वृहद्त्रयी कहलाते हैं- (हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास-बाबू गुलाब राय- पृष्ठ- 157)

प्रेमचन्द के कथा शिल्प और कथ्य को लेकर कहानी लिखने वालों में- वृन्दावनलाल शर्मा- (शरणागत कटा-फटा झंडा, कलाकार का दण्ड जैनावदी वेगम, शेरशाह का न्याय, आदि) आचार्य चतुरसेन की दुखिया में कासे कहू सजनी, सफेद कौआ, सिंहगढ़ विजय, आदि। गोविन्द बल्लभ पंत सियाराम शरण गुप्त (बैल की बिक्री) भगवती प्रसाद वाजपेयी, मिठाई वाला, निंदियालागी, खाल, वोतल, मैना, ट्रेन पर, हार जीत आदि) रामवृक्ष बेनीपुरी, उषादेवी मित्रा आदि अनेक कहानीकारों की रचनाएं बहुत प्रसिद्ध हुई

प्रेमचन्द युगीन कहानियों की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

- ये परिमार्जित भाखा वाली कहानियाँ हैं।
- ये आदर्श और यथार्थ वादी कहानियाँ हैं।
- ये मानवीय सम्बन्धों का उद्घाटन करने वाली कहानियाँ हैं।
- ये ग्राम्यजीवन पर प्रकाश डालने वाली कहानियाँ हैं।
- ये राष्ट्रवादी और देश प्रेम से ओतप्रोत कहानियाँ हैं।
- ये राजनैतिक पराधीनता और आर्थिक शोषण में विरूद्ध आवाज उठाने वाली कहानियाँ हैं।
- ये समाज में व्याप्त रूढ़ीवादी, कुरीतियों और अशिक्षा को दर्शाने वाली कहानियाँ हैं।

2.4.3 प्रेमचन्दोत्तर युग की कहानी -

प्रेमचन्द के पश्चात् हिन्दी कहानी का विकास और तीव्रता से हुआ। प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद के पश्चात् नये युग में हिन्दी कहानी की दो प्रमुख शाखाएँ उभरकर आयी। इनमें एक शाखा का सम्बन्ध प्रेमचन्द के यथार्थवादी परम्परा से था, ओर दूसरी शाखा का सम्बन्ध ‘जयशंकर प्रसाद की भाववादी मनोवैज्ञानिक परम्परा से। इसलिए इन्हें इतिहासकारों ने प्रगतिवादी और मनोवैज्ञानिक कहानियों का नाम दिया,

प्रगतिवादी कहानी- हिन्दी की प्रगतिवादी कहानी को यथार्थवादी और समाजिक कहानी भी कहा जाता है। सन् 1936 में जब प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई इसके पश्चात् अनेक

कहानी लेखक इससे जुड़े जिन्होंने अनेक यथार्थवादी कहानियाँ लिखी। साहित्य समीक्षकों ने इन्हीं कहानियों को प्रगतिशील कहानियों का नाम दिया, इन कहानिकारों में यशपाल, उपेन्द्रनाथ अश्क, रामप्रसाद थिल्डियाल पहाडी़, पाण्डेय वेचन शर्मा उग्र, विष्णु प्रभाकर, अमृतलाल नागर, आदि कहानीकार मुख्य हैं। इन सभी कहानीकारों ने प्रेमचन्द की तरह ही धार्मिक अंधविश्वासों, सामाजिक कुरीतियों, आर्थिक शोषण तथा राजनैतिक पराधीनता ने निर्धन वर्ग को अपनी कहानियों का विषय बनाया। इन कहानीकारों ने निर्धन वर्ग को अपनी कहानियों के केन्द्र में रखा, इनकी कहानियाँ कहानी तत्वों की कसौटी पर खरी उतरती है। इन कहानियों के शीर्षक, कथानक, कथोपकथन, चरित्र चित्रण, पात्र, उद्धेश्य, देशकाल-वातावरण तथा भाषा शैली जैसे कहानी तत्व इन्हें कहानियों में जब कभी पात्रों का चरित्र चित्रण करते हैं तो इनकी दृष्टि व्यक्ति के अन्तर्मन के बजाय उसके सामाजिक व्यवहार पर अधिक स्थिर होती है। इन कहानियों के मुख्य कहानीकारों की रचनाएँ इस प्रकार हैं -

यशपाल- इस अवधि में मार्क्सवादी यशपाल हिन्दी कहानी के क्षेत्र में उतरे। इन्होंने सामाजिक जीवन के यथार्थ को लेकर उसकी मार्क्सवादी व्याख्या की। यशपाल की रचनाओं पर फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव दृष्टिगत होता है। इनकी कहानियों में मध्यम वर्गीय जीवन की विसंगतियों का मार्मिक चित्रण मिलता है। साथ ही निम्नवर्गीय शोषितों की व्यथा, अभाव और जीवन संघर्ष के भी दर्शन होते हैं। इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। महाराजा का इलाज, परदा, उत्तराधिकारी, आदमी का बच्चा, परलोक, कर्मफल, पतिव्रता, प्रतिष्ठा का बोझ ज्ञानदान, धर्मरक्षा, काला आदमी, चार आना, फूलों का कुरता आदि। पिजड़े की उड़ान, फूलों का कुर्ता, धर्मयुद्ध, सच बोलने की भूल, आदि आपके कहानी संग्रह हैं।

उपेन्द्र नाथ अश्क- उपेन्द्रनाथ 'अश्क' मानवतावादी दृष्टिकोण और मनोविश्लेषण चरित्र- युक्त कहानी लिखने वाले कहानीकार हैं। समाज की विषमताओं, मध्यमवर्गीय जीवन की विसंगतियों, निम्न वर्गीय अभावग्रस्त जीवन- संकटों का मार्मिक अंकन वाली इनकी कहानियाँ कथा- शिल्प की दृष्टि से सफल कहानियाँ हैं। इनकी प्रसिद्ध कहानियों में डाची, आकाश चारी, नासूर, अंकुर, खाली डिब्बा, एक उदासीन शाम आदि कहानियाँ प्रसिद्ध कहनियाँ हैं। इन्होंने अपने जीवनकाल में दो सौ से अधिक कहानियाँ लिखी। बैगन का पैाधा , झेलम के सात पुल छीटे आदि कहानी - संग्रह इनके इन्हीं कहानियों के प्रसिद्ध संग्रह है।

रमाप्रसाद घिल्डियाल पहाड़ी - रामप्रसाद घिल्डियाल पहाड़ी ने मनोवैज्ञानिक कहानियों के साथ-साथ प्रगतिवादी कहानियाँ लिखी, इनकी कहानियों में कहीं-कहीं उन्मुक्त प्रेम की छटा के भी दर्शन होते हैं। 'राजरानी' हिरन की आँखें, तमाशा, मोर्चा आदि इनकी लोकप्रिय कहानियाँ हैं।

पाण्डेय वेचन शर्मा 'उग्र'- पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने इस काल में प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद से भिन्न एक अलग रास्ता बनाया, उस समय की राजनीति और समाज की विकृतियों को

अपनी रचनाओं का विषय बनाने वाले उग्र जी ने अंग्रजी संघर्ष के विरूद्ध चल रहे क्रान्तिकारी संघर्ष को लेकर कई कहानियाँ लिखी। 'उसकी माँ', 'देशभक्त' जैसी कहानी इनकी इसी कोटि की कहानियाँ हैं। 'दोजख की आग', इन्द्रधनुष आदि आपके कहानी-संग्रह हैं।

बिष्णु प्रभाकर- बिष्णु प्रभाकर एक सुधारवादी लेखक हैं। इन्होंने वर्तमान समय की समाजिक व्यवस्था तथा व्यक्ति एवं परिवार के सम्बन्धों को लेकर कहानियों की रचना की। इस कहानीकार ने वर्तमान सामाजिक एवं शासन व्यवस्था में व्यक्ति- जीवन के संकट को बड़े मार्मिक ढ़ग से प्रस्तुत किया है, इनकी ''धरती अब भी घूम रही है'' लोकप्रिय कहानी है, रहमान का बेटा, ठेका, जज का फैसला' गृहस्थी मेरा बेटा, अभाव आदि कहानियाँ बिष्णु प्रभाकर की उत्तम कोटि की कहानियाँ हैं।

अमृतलाल नागर- अमृतलाल नागर ने आज के जीवन के आर्थिक संकट, विपन्नता, पारिवारिक सम्बन्धों का तनाव आदि विषयों को अपनी कहानियों की सामग्री बनाया। दो आस्थाएँ, गरीब की हाय, निर्धन कयामत का दिन, गोरख धन्धा आदि कहानियाँ इनकी महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं।

मनोवैज्ञानिक कहानियाँ- मुंशी प्रेमचन्द पश्चात् हिन्दी कहानी संसार में कुछ ऐसे कहानिकार भी आये जिन्होंने मानवमन को केन्द्र में रखा। इन कहानीकारों ने सामाजिक समस्याओं की अपेक्षा आदमी की वैयक्तिक पीड़ाओं और मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को अधिक महत्व दिया। इन्होंने मानव के अवचेतन मन की क्रियाओं और उनकी मानसिक ग्रन्थियों को अपनी कहानियों का विषय बनाया मानव के अन्तर्द्वन्द्व को केन्द्र में रखने के कारण इन कहानीकारों की कहानियों में मनोवैज्ञानिक सत्य और चरित्र की वैयक्तिक विशिष्टता विशेष रूप से व्यक्त हुई है। इन कहानिकारों में, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, भगवती चरण वर्मा, चन्द्र गुप्त विद्यालंकार, आदि कहानीकार मुख्य हैं।

जैनेन्द्र कुमार- प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद के यथार्थ और आदर्श की दिशा से बिल्कुल हटकर मानव मन के चितेरे के रूप में जिन अन्य कहानीकारों ने हिन्दी कहानी संसार में प्रवेश किया उनमें जैनेन्द्रकुमार का प्रमुख स्थान है। इनका ध्यान समाज के विस्तार की अपेक्षा व्यक्ति की मानसिक गुत्थियों, सामाजिक परिवेश, के दबाब और प्रतिबद्धता के कारण होने वाली वैयक्तिक समस्याओं की ओर अधिक गया। परिवार एवं समाज में नारी-पुरूषों के सम्बन्धों तथा उनसे उत्पन्न उलझनों का विश्लेषण करने वाले इनकी कहानी जहाँ लोक प्रिय और सर्वग्राह्य हुई हैं वहाँ इन कहानियों ने समाज के चिन्तकों को जीवन के अनके पहलुओं पर चिन्तन करने के लिए भी बाध्य किया हैं इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं- पत्नी, खेल, चोर, पाजेब, जाह्नवी, समाप्ति, एक रात, नीलम देश की राजकन्या , जय संधि, मास्टर जी आदि, जैनेन्द्र कुमार के आठ कहानी संग्रहों में इनकी सभी कहानियाँ संग्रहित हैं।

अज्ञेय- 'अज्ञेय' एक ऐसे कहानीकार हैं जिन्होंने मानव के मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों और गूढ़ रहस्यों को परखने का यत्न किया। इसलिए इनकी कहानियों में एक विशेष प्रकार की 'चिन्तन शीलता तथा तटस्थ बैदिकता के दर्शन होते हैं। विषय की दृष्टि से जैसी विविधता अज्ञेय जी की कहानियों मिलती है वह विविधता इस युग के अन्य कहानिकारों की कहानियों में कम मिलती हैं। इनकी प्रसिद्ध कहानियों में रोज, गैग्रीन, कोठरी की बात छोड़ा हुआ रास्ता, पगोड़ा वृक्ष, पुरूष का भाग्य' आदि कहानियाँ हैं। इन कहानियों के अतिरिक्त अज्ञेय जी ने स्वतन्त्रता आन्दोलन सम्बन्धी घटनाओं तथा पौराणिक और ऐतिहासिक संन्दर्भो पर भी कहानियाँ लिखी हैं। विपथगा, शरणार्थी, परम्परा, अमर वल्लरी कोठारी की बात आदि आपके कहानी संग्रह है।

इलाचन्द्र जोशी- इलाचन्द्र जोशी फ्राइड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त को साथ लेकर चलने वाले लेखक हैं। इनकी कहानियों में मध्यमवर्गीय समाज के व्यक्तियों का विश्लेषण मिलता है। इनकी प्रमुख कहानियाँ हैं - चरणों की दासी, रोगी, परित्यक्ता, जारज, अनाश्रित, होली, धन का अभिशाप, प्रतिव्रता या पिशाची, एकाकी, मैं, मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ आदि।

स्वातंत्योत्तर हिन्दी कहानी- स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी कहानी के क्षेत्र में बड़े परिवर्तन आये। स्वतंत्रता पश्चात् लिखी गयी हिन्दी कहानी में आधुनिक जीवन की विविध समस्याओं का यथार्थ चित्रण हुआ। इन समस्याओं में निम्नवर्गीय व्यक्ति के द्वारा अपने विकास के लिए किये जाने वाले यत्नों से पैदा हुए अवरोध और संकटों से लेकर उच्चवर्गीय व्यक्तियों के जीवन में उपस्थित विसंगति, कुण्ठा आदि की बातें शामिल है। नगरीय जीवन में व्यक्ति का अकेलापन, नौकरीपेशा नारी के अनके पक्षीय सम्बन्ध और उससे उत्पन्न होने वाली कठिनाइयाँ, शिक्षितों की बेरोजगारी की समस्या, राजनैतिक गिरावट, परिवारों के टूटने आदि कई विषयों पर कहानियाँ लिखी गयी है। शिल्प की दृष्टि से इन कहानियों में कई प्रयोग किये गये हैं। इस समय के कहानीकारों में, मोहन राकेश राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, मार्कण्डेय, अमर कान्त मन्नू भण्डारी, फणीश्वर नाथ रेणु, कमल जोशी, उषा प्रियंवदा शिवप्रसाद सिंह, रघुवीर सहाय, रामकुमार भ्रमर, विजय चौहान, धर्मवीर भारती, भीष्म साहनी, लक्ष्मी नारायण लाल, हिमांशु जोशी, हरिशंकर परसाई, महीपसिंह, श्रीकान्त वर्मा, कृष्ण वलेदव वैद, ज्ञानरंजन, सुरेश सिन्हा, गिरिराज किशोर, भीमसेन त्यागी, धर्मेन्द्र गुप्त, इब्राहिम शरीफ, विश्वेश्वर, महेन्द्र भल्ला, रवीन्द्र कालिया, काशीनाथ सिंह, प्रबोध कुमार, प्रयाग शुक्ल गोविन्द्र मिश्र विजय मोहन सिंह आदि है। (हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास-बाबू गुलाब राय- पृष्ठ- 165)

नयी कहानी- नयी कहानी सन् 1950 और सन् 1953 के पश्चात् अस्तित्व में आयी। वास्तव में 'नयी कहानी' लेखक साहित्य के क्षेत्र में एक आन्दोलन था। इस आन्दोलन से हिन्दी जगत में काफी तर्क वितर्क सामने आये, जिसके फलस्वरूप 'नयी कहानी' अपने स्वरूप, कथ्य ओर उद्धेश्य की दृष्टि से पूर्ववर्ती कहानियों से विशिष्ट है। 'स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय जन जीवन में अनेक परिवर्तन आये जिसका यथार्थ प्रतिबिम्ब 'नई कहानी' में देखने को मिलता हैं।

कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', 'मुर्दों की दुनिया', तीन दिन पहले की बात, चार घर, मोहन राकेश की - 'मलबे का मालिक', राजेन्द्र यादय की 'जहाँ लक्ष्मी कैद हैं,' अमरकान्त की 'डिप्टी कलक्टर' आदि कहानियों में समकालीन यर्थाथ बखूबी व्यक्त हुआ है।

पुराने विश्वासों और मूल्यों को त्यागना तथा नवीन मूल्यों की खोज करना आधुनिकता है। आधुनिकता का यह लक्षण हमारे दैनिक जीवन की क्रियाओं से लकर चिन्तन मनन को भी प्रभावित कर रहा है। यह आधुनिकता मात्र नगरों और कस्बों तक ही सीमित नहीं है अपितु इसने धीरे-धीरे ग्रामों को भी अपने आँचल में समेट लिया है। आज का कहानी कार भी जिससे वंचित नहीं है। इसलिए उसकी कहानी भी आधुनिकता की पक्षधर हो गयी है। शिल्प की दृष्टि से 'नयी कहानी' की अपनी विशिष्टता है। कहानी की भाषा, पात्र, घटना आदि में दिन प्रति दिन नये परिनवर्तन आ रहे हैं। इस कहानी में नये प्रकार के बिम्ब विधान, नयी भाषा शैली, नये उपमान और नये मुहावरे आदि में विशेषता परिलक्षित होती है। भाषा में अलंकारिता का अभाव तथा बोल चाल की परिपूर्णता होती है। वर्तमान में कहानी दो वातावरणों को केन्द्र में रखकर लिखी जा रही है। प्रथम ग्रामीण वातावरण और द्वितीय नगरीय परिवेश। ग्रामीण वातावरण को केन्द्र में रखकर लिखी गयी कहानी आंचलिक कहानी कहलाती है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' की 'तीसरी कसम' 'ठुमरी, 'लाल पान की बेगम, ' रसप्रिया' शैलेश मटियानी की 'प्रेतमुक्ति' माता' 'भस्मासुर', दो मुखों का एक सूर्य, शिवप्रसाद सिंह की 'नीच जात' धरा, मुरदा सराय, अँधेरा हँस्ता है, मार्कण्डेय की 'हंसा जाई अकेला' 'भूदान', शेखर जोशी की 'तर्पण', राजेन्द्र अवस्थी की 'अमरबेल', लक्ष्मीनारायण लाल की 'माघ मेले का ठाकुर', रामदरश मिश्र की 'एक आँख एक जिन्दगी' आदि कहानियाँ आंचलिक कहानियाँ हैं।

नगरीय परिवेश को केन्द्र में रखकर लिखी गयी कहानियों में नगरो की कृत्रिम जीवन प्रणाली, परिवार और समाज के अन्दर व्यक्तियों के नयी पद्धति के अन्तः सम्बन्ध, स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में तनाव, व्यक्ति का अकेलापन, जीवन मूल्यों का विघटन इत्यादि का वर्णन विस्तार से हुआ है। निर्मल वर्मा के 'पराये शहर में' 'अन्तर' 'परिन्दे', 'लवर्स', 'लन्दन की रात', मोहन राकेश की 'वासना की छाया', 'काला रोजगार', मिस्टर भाटिया 'मलवे का मालिक', राजेन्द्र यादव की 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', एक कमजोर लड़की का कहानी', 'टूटना', कृष्ण बलेदव वैद की ' अजनबी', 'बीच का दरवाजा,' 'भगवान के नाम सिफारिश की चिठ्टी', 'मन्नू भण्डारी की 'वापसी', 'मछलियाँ', 'गीत का चुम्बन', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', 'खून का रिश्ता', रघुवीर सहाय की प्रेमिका', 'मेरे और नंगी औरत के बीच', 'सेब', रमेश बक्षी की 'आया गीता गा रही थी', 'अलग-अलग कोण', 'राजकुमार की लौ पर रही हथेली', 'सेलर', श्रीकान्त वर्मा की 'शव यात्रा', 'दूसरे के पैर', महीपसिंह की 'काला बाय, गोरा बाय', आदि कहानियाँ नगरीय परिवेश की कहानियाँ हैं।

छोटे-छोटे कस्बों के व्यक्तियों की मनोवृत्ति और उपेक्षित जन जीवन का चित्रण करने वाली कहानियोंमें कमलेश्वर की 'मुरदों की दुनिया', 'तीन दिन पहले की बात', 'चार घर', धर्मवीर भारती की 'सार्वत्री न0 दो', 'धुआँ', 'कुलटा', गुलकी बन्नों, 'अगला अवतार', 'कृष्णा सोवती की', यारों के यार,' अमरकान्त की 'जिन्दगी और जोंक' 'डिप्टी कलेक्टरी' 'दोपहर का भोजन' विष्णु प्रभाकर की 'धरती अब धम रही है', मनहर चौहान की 'घर धुसरा', रामकुमार भ्रमर की 'गिरस्तिन', हिमांशु जोशी की 'एक बूँद पानी' अभाव, हृदयेश की 'सभाएँ' 'डेकोरेशन पीस'' कहानियाँ काफी लोकप्रिय हुई।

ग्रामीण अंचल, नगरीय परिवेश और कस्बों के जन जीवन पर लिखी कहानियों के अतिरिक्त वर्तमान समाज की विकृतियों, व्यक्तियों के ढोंग, आरोपित प्रतिष्ठा, भ्रष्टाचार आदि पर व्यंग्य तथा उपहार करती हुई अनेक, कहानियाँ लिखी गयी, इन कहानियों में हरिशंकर परसाई की निठल्ले की डायरी, 'सड़क बन हरी है', 'पोस्टर एकता', शरद जोशी की 'रोटी और घण्टी का सम्बन्ध', 'बेकरी बोध' प्रमुख है।

वर्तमान में इन कहानियों की संख्या में वृद्धि करने वाले अन्य कहानीकारों में, गंगा प्रसाद विमल, दूघनाथ सिंह, राजकमल चौधरी, गिरिराज किशोर, सुरेश सिंन्हा ज्ञानरंजन, धर्मेन्द्र गुप्त, इब्राहिम शरीफ, विश्वेश्वर, भीमसेन त्यागी, अमर कान्त, रतीलाल शाहनी, कुष्ण बलदेव वैद, विपिन अग्रवाल आदि है।

कहानी की इस जीवन यात्रा में साठ के बाद की कहानी में अनके आन्दोलन चलाये गये, जिनमें 'सामन्तर कहानी', 'सचेतन कहानी', 'अकहानी आदि साहित्य आन्दोलन मुख्य हैं। इन आन्दोलनों पर फ्रान्स-जर्मनी में प्रचलित आन्दोलनों का प्रभाव था। इन आन्दोलनों से कमलेश्वर , गंगाप्रसाद विमल, महीपसिंह, रवीन्द्र कालिया, ज्ञानरंजन आदि कथाकार प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से जुडे रहे। हिन्दी कहानी के विकास में मात्र इन आन्दोलनों की महत्वपूर्ण भूमिका नहीं रही अपितु 'कहानी', नई कहानियाँ ' कल्पना', सारिका' संचेतना, कहानियाँ आदि कहानी पत्रिकाओं ने भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

अभ्यास प्रश्न

(5) हिन्दी कहानी के विकास के केन्द्र में मुंशी प्रेमचन्द को रखकर बाँटा गया है।

1. चार चरणों में ( )
2. तीन चरणों में ( )
3. पाँच चरणों में ( )
4. दो चरणो में ( )

(6) राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की कहानी हैं-

1. इन्दुमती ( )
2. ग्यारह वर्ष का समय ( )
3. राजा भोज का सपना ( )
4. दुलाई वाली ( )

(7) सही क्रम में लिखिए

1. कहानीकार	कहानी
2. न्द्रधर शर्मा गुलेरी	पुरस्कार
3. मुंशी प्रेमचन्द	रक्षा बन्धन
4. जयशंकर प्रसाद	पंच परमेश्वर
5. विश्वम्भर नाथ शर्मा	उसने कहा था

(8) प्रेमचन्द युगीत कहानियों की तीन विशेषताऐं लिखिए।

(9) कहानीकार यशपाल की कहानियाँ पर प्रभाव है।

1. मार्क्सवाद का
2. गाँधी वाद का
3. मानवतावाद का
4. व्यक्तिवाद का

(10) श्री रमाप्रसाद घिल्डियाल पहाड़ी की तीन कहानियों के नाम लिखिए।

अभ्यास प्रश्न

1- प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी कहानी की तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ लिखिए।
2- नई कहानी के चार कहानीकारों के नाम लिखिए।

2.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप जान चुके हैं कि -

- कथा साहित्य की दो प्रमुख विधाएँ उपन्यास और कहानी हैं।

- कहानी का आदि स्वरूप क्या है?
- कहानी का उद्भव कैसे हुआ ?
- कहानी का क्रमिक विकास कैसे हुआ?
- कहानी साहित्य के विकास में प्रेमचन्द का क्या योगदान रहा है?
- कहानी कारों का संक्षिप्त परिचय और उनकी कहानियाँ।

2.6 शब्दावली

पुरातन	-	प्राचीन, पुरानी
अविष्कार	-	खोज, निर्माण
अन्तर्सूत्र	-	अन्दर के सम्बन्ध
सम्राट	-	राजा
अलौकिक	-	जो सांसारिक न हो
परिमार्जित	-	शुद्ध
संस्कृततिष्ठ	-	तत्सम शब्दावली से परिपूर्ण
पराधीनता	-	गुलामी
ग्राह्य	-	ग्रहण करने योग्य
अंकन	-	आँकना, गणना, वर्णन,
वैयक्तिक	-	व्यक्ति सम्बन्धी
ह्रासोन्मुख	-	पतन की ओर जाने वाले

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 – उत्तर

(1) 4. उपरोक्त सभी की कहानियाँ

(2) 3. काल्पनिक कहानियाँ हैं।

(3) 2. रानी केतकी की कहानी

(4) रिक्त स्थानों की पूर्ति

1. चौरासी बैष्णवन की वार्ताः स्वामी गोकुल नाथ की रचना है।
2. वर्तमान कहानी लेखन की प्रेरण पूर्व में अंग्रजी और बंगला में रची गयी और हिन्दी में अनुदित कहानियों से मिली।

(5) हिन्दी कहानी के विकास के केन्द्र में मुंशी प्रेमचन्द को रखकर बाँटा गया है।

2- तीन चरणों में

(6) (3) राजा भोज का सपना

(7) कहानीकार	**कहानी**
चन्द्रधर शर्मा गुलेरी	उसने कहा था।
मुंशी प्रेमचन्द	पंच परमेश्वर
जयशंकर प्रसाद	पुरस्कार
विश्वम्भर नाथ शर्मा	रक्षा बन्धन

(8) प्रेमचन्द युगीन कहानियों की तीन विशेषताऐं।

1. परिमार्जित भाषा वाली कहानियाँ हैं।
2. ये आदर्श और यथार्थवादी कहानियाँ हैं।
3. ये मानवीय सम्बन्धों को उद्घाटित करने वाली कहानियाँ हैं।

(9) कहानीकार यशपाल की कहानियों पर प्रभाव हैं

1. मार्क्सवाद का

(10) श्री रमा प्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' की तीन कहानियाँ हैं।

1. राजरानी
2. हिरन की आँखें
3. तमाशा

अभ्यास प्रश्न 2

(1) प्रेमचन्दोत्तर कहानी की तीन विशेषताऐं

1. मनोवैज्ञानिक कहानियाँ
2. मध्यम वर्गीय हासोन्मुख समाज के व्यक्तियों का विश्लेषण करने वाली कहानियाँ।

3. प्रगतिशील कहानियाँ

(2) नई कहानी के चार कहानीकारों के नाम-

1. कमलेश्वर
2. मोहन राकेश
3. राजेन्द्र यादव
4. अमरकान्त

2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1- द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद, साहित्य सहचर।

2- द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद,हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन।

3- राय, बाबू गुलाब, हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास।

2.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रेमचंद युगीन काहानियों की विशेषताएँ वर्णित कीजिए।

2. आधुनिक कहानियों में व्यक्त समाजिक परिवेश का उद्घाटन कीजिए।

इकाई- 3 हिन्दी उपन्यास का उद्भव व विकास

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 हिन्दी उपन्यास का उद्भव
3.4 हिन्दी उपन्यास का विकास
3.4.1 प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास
3.4.2 प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास
3.4.3 प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

उपन्यास के उद्भव और विकास के विषय में जानने से पूर्व यह जानना आवश्यक हैं कि उपन्यास क्या है ? इसके कौन-कौन से तत्व हैं ? और उपन्यास कितने प्रकार के होते हैं ? साथ ही आपको यह जानना भी आवश्यक होगा कि हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास कैसे हुआ ? तथा इसके विकास में किन-किन उपन्यासकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही ?

आपने 'हिन्दी गद्य का विकास' पढ़ते हुए देखा होगा कि हिन्दी गद्य का विकास किस तरह हुआ और किस तरह इस गद्य से हिन्दी की नई नई विधाओं का जन्म हुआ। हिन्दी कहानी के समान ही हिन्दी उपन्यास का इतिहास भी प्राचीन नहीं है। इस विधा का आरम्भ बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में हुआ। वैसे तो भारतेन्दु युग को ही हिन्दी उपन्यास को जन्म देने का श्रेय जाता है लेकिन इस युग से पूर्व 1877 में श्रृद्धाराम फुल्लौरी ने भाग्यवती उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास विधा का आरम्भ कर दिया था। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लाला श्री विवास दास के ''परीक्षा गुरू'' (1882) उपन्यास को हिन्दी के मौलिक उपन्यास की मान्यता प्रदान की। उन्होंने यह स्वीकार किया कि यही हिन्दी का प्रथम उपन्यास है। इसके पश्चात् हिन्दी भाषा में अनेक तिलिस्मी जासूसी और ऐयारी उपन्यासों को सृजन हुआ, लेकिन मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यासों से इस विधा को नया आयाम मिला। इस इकाई में हम

तिलिस्मी, ऐयारी और जासूसी उपन्यासों से हटकर उन उपन्यासों के विषय में पढ़ेगे जो विशुद्ध रूप से हिन्दी उपन्यास स्वीकार किये जाते हैं।

उपन्यास शब्द उप+न्यास दो शब्दों के मेल से बिना है। जिसके 'उप' उपसर्ग का अर्थ होता है सामने निकट या समीप, और 'न्यास' का अर्थ है , धरोहर और रखना, इस आधार पर उपन्यास का अर्थ है एक लेखक अपने जीवन एवं समाज के आस पास जो कुछ भी देखता हो उसे अपने भाव विचार से कल्पना द्वारा सजा सँवार कर जिस विधा के माध्यम से हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है वही 'उपन्यास' है। दूसरे शब्दों में जो साहित्यिक विधा जिसे पढ़कर यह आभास हो कि इसमें वर्णित घटना हमारे निकट की नहीं अपितु हमारी है 'उपन्यास' कहलाती है।

उपन्यास आधुनिक जीवन के सत्य को निकटता से समझने और उसे काल्पनिक रूप प्रदान करने वाली विधा है। यद्यपि उपन्यास की कथा काल्पनिक होती है किन्तु वह जीवन के यथार्थ का स्पर्श करती है। इसके पात्र समाज से जुड़े व्यक्ति होते हैं। इसकी घटनाएँ हमारे मध्य की होती है जिनमें एक तर्किक संगति होती है।

उपन्यास का जन्म पश्चिमी साहित्य से हुआ। पश्चिम के साहित्यकारों ने इस नयी विधा को जन्म दिया। समय-समय पर इसमें अनके परिवर्तन होते रहे। इसे सोद्देश्य लिखा जाता रहा और यह साहित्य की कहानी विधा का व्यापक रूप बन गया। पश्चिम से ही इसने भारतीय साहित्य में प्रवेश किया और आज यह हिन्दी साहित्य की प्रमुख विधाओं में से एक है। उपन्यास साहित्य के आचार्यों ने उपन्यास के निम्नलिखित तत्व निर्धारित किये हैं।

1. शीर्षक
2. कथावस्तु- कथानक
3. कथोपकथन-संवाद योजना
4. पात्र और चरित्र चित्रण
5. देशकाल और वातावरण
6. भाषा और शैली
7. उद्देश्य

इन्हीं तत्वों के आधार पर उपन्यास की समीक्षा की जाती है। इन्हीं तत्वों को केन्द्र में रखकर उपन्यास विधा के आचार्यों ने उपन्यास के अनेक भेद किये हैं जिन्हें आपकी जानकारी के लिए संक्षेप में यहाँ दिया जा रहा है।

1. कथावस्तु के आधार पर उपन्यास

(अ) बिषयवस्तु की दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यास, परिवारिक उपन्यास, सामाजिक उपन्यास और पौराणिक उपन्यास।

(ब) वर्णन शैली की दृष्टि से- घटना प्रधान उपन्यास एवं भाव प्रधान उपन्यास।

2. चरित्र चित्रण पर आधारित उपन्यास
3. देशकाल और वातावरण पर आधारित उपन्यास
4. भाषा शैली पर आधारित उपन्यास
5. उद्देश्य पर आधारित उपन्यास।

उपन्यास विधा पर की गयी इस शास्त्रीय चर्चा के पश्चात् अब हम आपको हिन्दी उपन्यास के उद्भव से परिचित कराऐंगे।

3.2 उद्देश्य

इस पाठ्यक्रम में अब तक आप पहली इकाई में हिन्दी गद्य का उद्भव एवं विकास, तथा दूसरी इकाई में हिन्दी कहानी का उद्भव एवं विकास का अध्ययन कर चुके हैं। आशा है इन पाठों से आप हिन्दी गद्य का उद्भव एवं विकास तथा हिन्दी कहानी का उद्भव एवं विकास को समझ गये होंगे। इन इकाईयों को पढ़ने के पश्चात् आप गद्य और कहानी विधाओं की विशेषताओं से भी परिचित हो गये होंगे। यह इकाई हिन्दी उपन्यास से सम्बन्धित है। इस इकाई में हम आपको हिन्दी उपन्यास के स्परूप और इसके उद्भव व विकास के विषय में समझायेंगे।

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप -

- उपन्यास के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- हिन्दी उपन्यास के उद्भव को जान पायेंगे।
- हिन्दी उपन्यास के विकास के विभिन्न चरणों के विषय में बता सकेंगे।
- हिन्दी उपन्यास के विकास में किन-किन लेखकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इसके क्रमिक इतिहास को प्रस्तुत कर सकेंगे।

3.3 हिन्दी उपन्यास का उद्भव

अब तक आपने उपन्यास के स्वरूप के विषय में जानकारी प्राप्त की । इन जानकारियों से आपके मन में यह प्रश्न अवश्य उत्पन्न हो रहे होंगे कि क्या हिन्दी उपन्यास में समयानुकूल अनेक परिवर्तन हुए होंगे? आपके मन में इस प्रश्न का उभरना स्वाभाविक है। लेकिन इसका उत्तर जानने से पूर्व हमें हिन्दी उपन्यास के उद्भव के विषय में जानना भी आवश्यक हो जाता है। जैसा आपको ज्ञात होगा कि हिन्दी कहानियों के अध्ययन करते समय आपको हम पूर्व भी यह

जानकारी दे चुके है कि भारत में कथा साहित्य की परम्परा प्राचीन काल से ही रही है। रामायण, महाभारत, उपनिषद् आदि ग्रन्थ अनेक कथा कहानियों से भरे पड़े हैं लेकिन हिन्दी साहित्य में जिस कहानी को हम आज पढ़ते या सुनते हैं उसके बीज पश्चिमी साहित्य से भारतीय साहित्य में आये। इसीलिए वर्तमान के हिन्दी उपन्यास भी कहानी विधा की भाँति ही पश्चिमी साहित्य की देन है। तभी तो हिन्दी उपन्यास का इतिहास भी कहानी साहित्य के इतिहास की भाँति बहुत प्राचीन नहीं है। जैसा हिन्दी साहित्य के इतिहासकार स्वीकार करते हैं कि हिन्दी साहित्य की इस विधा का जन्म भारतेन्दु युग में हुआ। पहले तो बंगला उपन्यासों के अनुवाद द्वारा हिन्दी उपन्यास साहित्य की नींव रखी गयी और इसके पश्चात् भारतेन्दु युग में अनेक उपन्यासकारों ने अपनी लेखनी से हिन्दी उपन्यास की शून्यता को समाप्त किया।

3.4 हिन्दी उपन्यास का विकास

जैसा कि हम पूर्व भी आपको बतला चुके हैं कि भारतेन्दु युग में जिस प्रकार अन्य गद्य विधाओं का जन्म हुआ उसी प्रकार हिन्दी उपन्यास भी अस्तित्व में आया। उस समय के शीर्ष साहित्यकार भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने अनेक साहित्यकारों को इस विधा पर लेखनी चलाने के लिए प्रोत्साहित किया। इसी के परिणाम स्वरूप लाल श्री निवासदास ने 'परीक्षा गुरू' नामक वह उपन्यास लिखा जिसे हिन्दी का पहला उपन्यास स्वीकार किया जाता है। इनके पश्चात् अनेक लेखकों ने इस विधा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। मुंशी प्रेमचन्द इसी उपन्यास विधा को आगे बढाने में प्राणप्रण से जुट गये इसीलिए हिन्दी उपन्यास के इतिहासकारों ने मुंशी प्रेमचन्द को केन्द्र में रखकर हिन्दी उपन्यास के विकास क्रम पर अपनी लेखकी चलायी।

इन्होंने हिन्दी के उपन्यास साहित्य का इतिहास लिखते समय इसे तीन चरणों में विभक्त किया।

1. प्रेमचन्द पूर्व युग के हिन्दी उपन्यास।
2. प्रेमचन्द युग के हिन्दी उपन्यास।
3. प्रेमचन्दोत्तर युग के हिन्दी उपन्यास।

3.4.1 प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास

हिन्दी का प्रथम उपन्यास किसे स्वीकार करे? विद्वानों में इस बात पर पर्याप्त मतभेद है। लेकिन यह सत्य है कि प्रेमचन्द पूर्व युग में उपन्यास लेखन की परम्परा प्रारम्भ हो गयी थी। कुछ विद्वान रानी केतकी की कहानी को हिन्दी का प्रथम उपन्यास स्वीकारते हैं। लेकिन इसके लेखक इंशा अल्ला खाँ ने इसके शीर्षक पर 'कहानी' शब्द जोड़कर इसके उपन्यास होने की सम्भावना को समाप्त कर दिया। सन् 1872 में जब श्री श्रृद्धाराम फिल्लौरी ने 'भाग्यवती' नामक कृति की सर्जना की तो कुछ विद्वानों ने इसे हिन्दी का प्रथम उपन्यास स्वीकारा लेकिन इसमें औपन्यासिक तत्वों के अभाव ने इसे भी उपन्यासों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने

अपने इतिहास में **परीक्षा गुरू** को हिन्दी का प्रथम उपन्यास स्वीकार किया लेकिन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भारतेन्दु के 'पूर्ण प्रकाश' और 'चन्द्रप्रभा' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानकर आचार्य शुक्ल के द्वारा 'परीक्षा गुरू' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानने पर प्रश्न चिह्न लगा दिया। आचार्य द्विवेदी भले उक्त दोनों उपन्यासों को हिन्दी के प्रथम उपन्यास स्वीकार करें लेकिन विद्वान इन दोनों उपन्यासों पर मराठी और बंगला की छाया मानते हैं।

यद्यपि प्रेमचन्द पूर्व युग के विद्वान बहुत समय तक लाला श्रीनिवासदास के उपन्यास 'परीक्षा गुरू' को हिन्दी के प्रथम उपन्यास के रूप में आदर देते रहे। लेकिन बाबू गुलाब राय जैसे विद्वान इस पर हितोपदेश की छाया देखते हैं। जिसमें हितोपदेश की सी उपदेशात्मकता और बीच-बीच में श्लोंको की उपस्थिति इसे एक मौलिक उपन्यास की मान्यता से वंचित करती है। इस उपन्यास के अतिरिक्त इस युग में बाबू राधाकृष्णदास का निःसहाय हिन्दु' और पंडित बालकृष्ण भट्ट के 'नूतन ब्रह्मचारी तथा सौ अजान एक सुजान' जैसे उपन्यास चर्चित रहे। इसी श्रृंखला में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि पंडित अयोध्यासिंह 'हरिऔध' उपाध्याय का वेनिस का बाँका तथा ठेठ हिन्दी का ठाट' पंडित गोपालदास बरैया का 'सुशीला', लज्जाराम मेहता का धूर्त रसिकलाल, गोपाल राम गहमरी का 'सास पतोहू' तथा किशोरीलाल गोस्वामी का 'लबंग लता' काफी चर्चित उपन्यास रहे। ये उपन्यासकार अपने युग के चर्चित उपन्यासकार रहे हैं। इन उपन्यासकारों का संक्षिप्त परिचय और उनके द्वारा लिखे गये उपन्यासों का उल्लेख हम यहाँ पर इस प्रकार करेंगे।

1. **देवकी नन्दन खत्री** (सन् 1861-1913) हिन्दी के प्रेमचन्द से पूर्व के उपन्यासकारों में देवकी नन्दन खत्री का नाम काफी चर्चित है। इनके सभी उपन्यासों में घटना-बाहुल्य तिलिस्म और ऐयारी की बातों पर जोर दिया गया है। इनके उपन्यास मौलिक उपन्यास हैं। हिन्दी भाषा में लिखे गये इनके उपन्यासों को पढ़ने के लिए उर्दू जानने वालों ने हिन्दी सीखी। इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं- चन्द्रकान्ता, चन्द्रकान्ता सन्तति, भूतनाथ (पहले छः भाग) काजल की कोठरी, कुसुम-कुमारी, नरेन्द्र मोहिनी 'गुप्त गोदना' वीरेन्द्रवीर आदि। इन उपन्यासों के कारण हिन्दी भाषा का विस्तार हुआ। और हिन्दी उपन्यास विधा लोकप्रिय हुई।
2. **गोपाल दास गहमरी-** श्री गोपालदास गहमरी ने हिन्दी में अनेक जासूसी उपन्यासों का अनुवाद किया। उन्होने अपने जीवन काल में एक जासूसी पत्रिका भी निकाली जिसका नाम था 'जासूस', इस पत्रिका में अनेक जासूसी उपन्यास और कहानियाँ प्रकाशित होती थी।
3. **किशोरी लाल गोस्वामी-** (सन् 1865-1932) श्री किशोरी लाल गोस्वामी साधारण जनता की अभिरूचि के उपन्यास लिखते थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में 'लवंगलता', कुसुम कुमारी, अंगूठी का नगीना, लखनऊ की कब्र, चपला, तारा, प्राणदायिनी आदि साठ से अधिक उपन्यास लिखे। इनके उपन्यासों में साहित्यिकता अधिक है लकिन

सामान्य पाठक की रूचि को उदार बनाने की विशेषता को न उभार सकने के कारण ये इनके उपन्यास मात्र बौद्धिक वर्ग की रूचि का परिष्कार करते हैं।

4. **बाबू ब्रजनन्दन सहाय-** बाबू ब्रजनन्दन सहाय ने अपने जीवन काल में 'सौन्दर्योपासक' आदर्श मित्र' जैसे चार उपन्यास लिखे। इनके उपन्यासों में घटना वैचित्रय और चरित्र-चित्रण की अपेक्षा भावावेश की मात्रा अधिक है।

इन उपन्यासकारों के अतिरिक्त उस युग में अनेक उपन्यासकारों ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास विधा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी, इनमें श्री गंगा प्रसाद गुप्त का 'पृथ्वीराज चौहान' और श्री श्याम सुन्दर वैद्य का 'पंजाब पतन' जैसे उपन्यास काफी चर्चित रहे। प्रेमचन्द पूर्व युग के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में आदर्शवाद के साथ भावुकता तथा भारतीय आदर्श को उभारते का प्रयत्न किया है।

3. 4.2 प्रेमचन्द युग के हिन्दी उपन्यास

हिन्दी उपन्यास के क्षत्र में 'प्रेमचन्द' के आगमन से एक नयी क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। इस युग के उपन्यासकारों ने जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करने का कार्य किया। इस युग का प्रारम्भ प्रेमचन्द के 'सेवा सदन' नामक इस उपन्यास से हुआ जिसे सन् 1918 में लिखा गया था। वैसे तो पूर्व में मुंशी प्रेमचन्द ने आदर्शवादी उपन्यास लिखे लेकिन बाद में ये यथार्थवादी उपन्यास लिखने लगे। इन्होंने अपने उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं को स्थान दिया। इस युग के प्रतिनिधि उपन्यासकार होने के कारण मुंशी प्रेमचन्द से प्रेरणा पाकर कई उपन्यासकार हिन्दी उपन्यास विधा को आगे बढ़ाने लगे। इनमें कुछ यथार्थवादी उपन्यासकार थे तो कुछ आदर्शवादी। इस युग के प्रतिनिधि उपन्यास कर निम्नलिखित थे -

1. **उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द** (सन्1881-1936) हिन्दी में चरित्र प्रधान उपन्यास लिखने में मुंशी प्रेमचन्द की चर्चा सबसे पहले होती है । हिन्दी उपन्यास का क्रमबद्ध और वास्तविक विकास प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य से ही होता है। इससे पूर्व के उपन्यास या तो मराठी-बंगला और अंग्रजी के अनुदित उपन्यास थे या तिलिस्मी, एय्यारी और जासूसी उपन्यास। लेकिन प्रेमचन्द के उपन्यासों में इन सबसे हटकर जो सामाजिक परिदृश्य उत्पन्न हुए उनसे हिन्दी उपन्यास विधा को एक नई दिशा मिली। मुंशी प्रेमचन्द ने अपने जीवन काल में तीन प्रकार के उपन्यास लिखे। इनकी पहली श्रेणी में आने वाले उपन्यास 'प्रतिज्ञा' और 'वरदान' है जिन्हें इन्होंने प्रारम्भिक काल में लिखा। दूसरी श्रेणी के उपन्यास 'सेवा सदन', निर्मला और गबन, है। इस श्रेणी के उन्यासों में मुंशी प्रेमचन्द द्वारा सामाजिक समस्याओं को उभारा गया है। तीसरी श्रेणी के उपन्यास- प्रेमाश्रय, रंगभूमि , कायाकल्प कर्मभूमि और गोदान है। इस श्रेणी के उपन्यासों में उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द ने जीवन के एक अंश नहीं वरन् सम्पूर्ण

जीवन को एक साथ देखा है। इनके ये सभी प्रकार के उपन्यास किसी एक वर्ग- विशेष तक सीमित नहीं वरन समाज के सभी वर्गों तक फैले हैं। प्रेमचन्द के इन उपन्यासों में कहीं तो दहेज प्रथा तथा वृद्धावस्था के विवाह से उत्पन्न शंका और अविश्वास के दुष्परिणाम उभरते हैं तो वहीं आभूषण की लालसा और उसके दुष्परिणामों सामने आते दिखायी देते हैं। 'सेवा सदन' और 'निर्मला इसके उदाहरण हैं। इसी तरह रंगभूमि, कायाकल्प और कर्मभूमि में भारत की तत्कालीन राजनीति की स्पष्ट छाप दिखायी देती हैं। इन उपन्यासों में अंग्रेजी सत्ता के विरूद्ध चल रहे महात्मा गाँधी के सत्याग्रह आन्दोलन और समाज सुधार की झलक स्थान-स्थान पर उभरती है। इन उपन्यासों की भाँति 'प्रेमाश्रय' जैसे उपन्यास तत्कालीन जमीदारी प्रथा और कृषक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है। 'गोदान', प्रेमचन्द जी का सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास हैं, जिसे विद्वानों ने ग्राम्य जीवन के महाकाव्य की संज्ञा दी है। 'गोदान' को अगर हम प्रेमचन्द युगीन भारत की प्रतिनिधि कृति कह दें, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

2. **जयशंकर प्रसाद**-(सन् 1881- 1933) प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में जयशंकर प्रसाद का भी अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने मात्र उपन्यास ही नहीं कहानियाँ भी लिखी, लेकिन इनकी सभी कहानियाँ आदर्शवादी कहानियाँ हैं; जबकि उपन्यास यथार्थ के अत्यन्त संनिकट है। प्रसाद जी ने अपने जीवन काल में तीन उपन्यास लिखे। इन उपन्यासों में तितली और कंकाल पूरे और 'इरावती' अधूरा उपन्यास है। प्रसाद जी एक सुधारवादी उपन्यासकार थे इसलिए वे लोगों का ध्यान समाज में फैली बुराइयों की ओर आकृष्ट कर उनसे बचे रहने के लिए सजग करते थे। इनका 'कंकाल' नामक उपन्यास गोस्वामी के उपदेशों के माध्यम से हिन्दु संगठन और धार्मिक तथा सामाजिक आदेर्शों को स्थापित करने का प्रयत्न करता है। इसी संदर्भ में इनका तितली उपन्यास ग्रामीण जीवन की झाँकी और ग्रामीण समस्याओं को प्रस्तुत करता है। इरावती इनका ऐतिहासिक उपन्यास जो इनके आसामायिक निधन से अधूरा ही रह गया।
3. **पंण्डित विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक'** (सन् 1891-1945) पंडित विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक' उपन्यासकार और कहानीकार दोनों ही थे। 'मिखारिणी', माँ, और संघर्ष, इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं, तो मणिमाला और 'चित्रशाला' इनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह। 'माँ' आपका सफलतम उपन्यास है।
4. **सुदर्शन** (सन् 1869-1967)- श्री 'सुदर्शन' का पूरा नाम पंडित बदरीनाथ भट्ट था। ये पहले उर्दू में लिखते थे और बाद में हिन्दी कथा साहित्य में अवतीर्ण हुए। इनके 'अमर अभिलाषा' और 'भागवन्ती' अन्यन्त लोकप्रिय उपन्यास है। इनके उपन्यास और कहानियों में व्यक्तिगत और परिवारिक जीवन-समस्याओं का चित्रण मिलता है। ये भी प्रेमचन्द की भाँति आदर्शोन्मुख यथार्थवादी थे।
5. वृन्दावन लाल वर्मा (सन् 1891-1969)-श्री वृन्दावन लाल वर्मा ऐतिहासिक उपन्यास कार है। इन्होंने अपने जीवन काल में, 'गढ़-कुण्डार' विरादा की पद्मिनी, मृग नयनी,

माधवजी सिन्धिया, महारानी दुर्गावती, रामगढ़ की रानी, मुसाहिबजू, ललित विक्रम और अहिल्याबाई जैसे ऐतिहासिक उपन्यास लिखे तो कुण्डली चक्र, सोना और संग्राम, कभी न कभी, टूटे काँटे, अमर बेल, कचनार जैसे उपन्यास भी हैं जिनमें प्रेम के साथ साथ अनके सामाजिक समस्याओं पर भी खुलकर लिखा गया है। 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' इनका प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है जिसे लोकप्रियता में किसी अन्य उपन्यास से कम नहीं आँका जा सकता।

6. **मुंशी प्रताप नारायाण श्रीवास्तवः-** शहरी जीवन पर अपनी लेखनी चलाने वाले मुंशी प्रताप नारायण भी प्रेमचन्द युगीन उपन्याकारों के मध्य सदैव समादृत रहे हैं। इन्होंने अपने जीवन काल में, विदा, विकास, और विलय, नाम तीन उपन्यास लिखे। मुंशी प्रताप नारायण श्रीवास्तव ने इन तीनों उपन्यासों में एक विशेष सीमा में रहकर स्त्री स्वतन्त्रता का पक्ष लिया।
7. **चण्डी प्रसाद हृदयेश-** श्री हृदयेश एक सफल कहानी कार और उपन्यास रहे हैं। इनके मंगल- प्रभात 'और 'मनोरमा' नामक दो उपन्यास हैं। कवित्व शैली में रची गई इनकी कृतियों में 'नन्दन निकुंज' और ''वनमाला''नामक दो कहानी संग्रह भी हैं। आपकी कथा शैली की तुलना अधिकांश विद्वान संस्कृत के गद्यकार बाण भट्ट की कथा शैली से करते हैं।
8. **पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'**(सन् 1900-1967) पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकारों के मध्य में अपनी एक विशिष्ट शैली के लिए काफी चर्चित रहे। 'चन्द हसीनों के खतूत' दिल्ली का दलाल, बुधुआ की बेटी, शराबी, जीजीजी, घण्टा, फागुन के दिन चार आदि आपके महत्वपूर्ण किन्तु चटपटे उपन्यास हैं। आपने महात्मा ईसा नामक एक नाटक और 'अपनी खबर' नामक आत्म कथा लिखी जो काफी चर्चित रही।
9. **जैनेन्द्र कुमार** (सन् 1905-1988)- जैनेन्द्र कुमार द्वारा उपन्यास के क्षेत्र में नयी शैली का सूत्रपात किया गया। इनके उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक चित्रण की एक विशेष शैली दिखायी पड़ती है। तापोभूमि, परख, सुनीता, सुखदा, त्यागपत्र, कल्याणी, मुक्तिबोध, विवरण, व्यतीत, 'जयवर्धन', अनाम स्वामी, आदि आपके अनेक उपन्यास हैं। उपन्यासों के अतिरिक्त आपके वातायन, एक रात, दो चिड़ियाँ और नीलम देश की राजकन्या जैसे कहानी संग्रह भी प्रकाशित हुए। आने हिन्दी साहित्य को लगभग एक दर्जन उपन्यासों, दस से अधिक कथा-संकलनों, चिन्तनपरक निबन्धों तथा दार्शानिक लेखों से समृद्ध किया। स्त्री पुरूष सम्बन्धों, प्रेम विवाह और काम-प्रसंगों के सम्बन्ध में आपके विचारों को लेकर काफी विवाद भी हुआ। जैनेन्द्र जी को 'भारत का गोर्की' माना जाता हैं। आपकी कई रचनाओं को पुरस्कृत भी किया गया।
10. **शिवपूजन सहाय** (सन् 1893-1963)- श्री शिवूजन सहाय प्रायः सामाजिक विषयों पर लेख लिखते थे। इन्होंने 'देहाती दुनियाँ', नामक एक आंचलिक उपन्यास लिखा।

11. **राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह** (सन् 1891-1966) राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने अपने जीवन काल में 'राम-रहीम' नामक वह प्रसिद्ध उपन्यास लिखा जिसकी कथा शैली ने सहृदय पाठकों को इसकी और आकृष्ट किया। इसके अतिरिक्त आपने चुम्बन और चाँटा, पुरूष और नारी, तथा संस्कार जैसे उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास विधा को और समृद्ध किया।

प्रेमचन्द के युग मे हिन्दी उपन्यास विविध मुखी होकर निरन्तर विकास उन्नत शिखरों को स्पर्श करने लगा। इस युग में उपरोक्त उपन्यासकारों के अतिरिक्त महाप्राण निराला, राहुल सांकृत्यायन, चतुरसेन शास्त्री, यशपाल, भगवती चरण वर्मा, भागवती प्रसाद वाजपेयी आदि लेखक-कवियों ने उपन्यास लेखन प्रारम्भ किया, लेकिन प्रेमचन्दोत्तर युग में ही इन्हें विशेष प्रसिद्धि मिली।

3. 4.3 प्रेमचन्दोत्तर युग के हिन्दी उपन्यास

जैसा आप जानते होंगे कि मुशी प्रेमचन्द को हिन्दी उपन्यास का प्रवर्तक कहा जाता है। इन्ही प्रेमचन्द के प्रभामण्डल से आकर्षित होकर कालान्तर में अनेक उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं से हिन्दी उपन्यास संसार का भण्डार भरा। इन सभी उपन्यासकारों ने युगीन परिधि से हटकर हिन्दी उपन्यास को नई-नई दिशाओं की ओर अग्रसर किया। पूर्व में इन उपन्यासकारों पर गाँधीवाद का प्रभाव पड़ा। लेकिन बाद में कार्ल मार्क्स, फ्रायड आदि के प्रभाव स्वरूप इन्होंने प्रगतिवादी और मनोविश्लेषणवादी विचार धारा के अनुकूल उपन्यास लिखे। प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रसिद्ध उपन्यासकार निम्नलिखित हैं -

1. **भगवती चरण वर्मा** (सन् 1903-1981) भगवती चरण वर्मा प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रतिनिधि उपन्यासकार है। सन् 1927 में इनके 'पतन' और सन् 1934 में 'चित्रलेखा' नामक उपन्यास प्रकाशित हुए। इनका 'चित्रलेखा' उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है जिस पर दो बार फिल्में बनी। यह पाप-पुण्य की परिभाषा देने वाला उपन्यास बन गया। साहित्य जगत में जिसकी सर्वत्र धूम मच गयी । इन उपन्यासों के अतिरिक्त वर्मा जी ने 'तीन वर्ष' 'आखिरी दाँव', टेढ़े-मेढ़े रास्ते, सामर्थ्य और सीमा, वह फिर नहीं आयी, सबहिं नचावत राम गोसाई, भूले बिसरे चित्र, रेखा, युवराज चुण्डा, प्रश्न और मरीचिका, सीधी-सच्ची बातें, चाणक्य आदि उपन्यासों में वर्मा जी ने सामाजिक सम्बन्धों और अन्तर्मन की परतों को खोलने में पूर्णत: सफलता पाई।
2. **आचार्य चतुरसेन शास्त्री** (सन् 1891-1961) आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने हृदय की प्यास, हृदय की परख, गोली, सोमनाथ, वैशाली की नगरवधू, धर्मपुत्र, खग्रास , वयं रक्षाम:, आत्मदाह, मन्दिर की नर्तकी, आदि उपन्यास लिखकर प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यास साहित्य को समृद्ध करने में जो भूमिका निभायी है इसकी जितनी प्रशंसा की

जाय वह कम ही है। आचार्य जी ने अपने कथा साहित्य की अधिकतर सामग्री पुराण और इतिहास से उठायी है। तत्सम् शब्दावली से युक्त इनकी भाषा इस युग के अन्य उपन्यासकारों से भिन्न है।

3. **भगवती प्रसाद वाजपेयी** (सन् 1899-1973)- श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी ने अपने जीवन काल में ''प्रेमपथ, प्यासा, कर्मपथ, चलते-चलते, निमन्त्रण, दो बहिने, परित्यक्ता, यथार्थ से आगे, गुप्तधन, विश्वास का बल, टूटा टी सेट, आदि उपन्यास लिखकर औपन्यासिक जगत में नई क्रॉंन्ति उत्पन्न की । आपने अपने उपन्यासों में व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों और उसके अन्तर्जगत की व्याख्या और विश्लेषण को औपन्यासिक ताने-बाने में बुना है।
4. **यशपाल** (सन् 1903-1975)- श्री यशपाल का नाम प्रगतिवादी और यथार्थवादी कथाकारों में सबसे पहले आता है। 'दादा कामरेड,' देशद्रोही, मनुष्य के रूप, बारह घण्टे, दिव्या, अमिता जैसे उपन्यास आपने सामाजिक परिप्रेक्ष्य और इतिहास को लेकर लिखे हैं। आपका 'झूठी सच' उपन्यास भागों में लिखा उपन्यास है।
5. **अज्ञेय** (सन् 1911-1987)- मनोवैज्ञानिक कथाकारों में 'अज्ञेय' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। अज्ञेय के शेखर एक जीवनी (दो भाग) 'अपने-अपने अजनबी', नदी के द्वीप आदि प्रसिद्ध उपन्यास हैं।
6. **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** (सन् 1907-1979) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आलोचक और निबन्धकार होने के साथ साथ एक सफल उपन्यासकार भी थे। इन्होंने अपने जीवन काल में 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारूचन्द्रलेख', 'पुनर्नवा', और 'अनामदास का पोथा', जैसे आत्मकथ्य परक और विशिष्ट कथा शैली के उपन्यास लिखे।
7. **सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'** (सन् 1998-1961) उपन्यास रचना में स्वछंदता दिखाने वाले सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने कविता के अतिरिक्त 'अप्सरा' अलका, 'प्रभावती', 'निरूपमा', 'चाटो की पकड़', और बिल्लेसुर का बकरिहा', जैसे उपन्यास लिखे। इनके उपन्यासों में जहाँ अशिक्षित दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित होती है वहाँ सामाजिक रूढ़ियों एवं शोषकों के प्रति भी आक्रोश दिखायी देता है।
8. **इलाचन्द्र जोशी** (सन् 1902-1987) मनोविश्लेषणत्मक उपन्यास लेखक श्री इलाचन्द्र जोशी ने अपने जीवन काल में 'घृणामयी', 'मुक्ति पथ,' जिप्सी, सन्यासी, ऋतुचक्र, सुबह के भूले, जहाज का पंछी, प्रेत और छाया तथा पर्दे की रानी जैसे प्रसिद्ध उपन्यास लिखे। 'जहाज का पंछी', जैसे उपन्यास इनका सबसे लोकप्रिय उपन्यास है।
9. **राहुल सांकृत्यायन** (सन् 1893-1963) यात्रा साहित्य के संपोषक और इतिहास पर सूक्ष्मदृष्टि रखने वाले राहुल सांकृत्यायन ने हिन्दी उपन्यास साहित्य की समृद्धि के लिए 'सिंह सेनापति', 'जयौधेय', मुधर स्वप्न', 'विस्मृत यात्री', 'दिवोदास', जीने के लिए आदि उपन्यास लिखे, इनके ये उपन्यास मार्क्सवाद और बौद्ध सम्प्रदाय से प्रभावित हैं।

10. **रांगेय-राधव**(सन् 1922-1962) इनका वास्तविक नाम तिरूमल्लै नम्बाकम वीर राधव था। इन्होंने तीस से अधिक उपन्यास लिखे। धरौंदा, सीधा-साधा रास्ता, विषाद मठ, हुजूर, काका, कब तक पुकारूँ, मुर्दों का टीला, आखिरी आवाज, प्रतिदान अँधेरे जुगुनू, आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।
11. **फणीश्वरनाथ 'रेणु'**(सन् 1921-1977) आंचलिक उपन्यास लिखने में सिद्धहस्त फणीश्वरनाथ रेणु ने समाज में व्याप्त शोषण और दमन के विरूद्ध आवाज उठायी। इनका मैला आँचल उपन्यास काफी चर्चित हैं। इसके अतिरिक्त 'रेणु' जी ने 'परती परिकथा', दीर्घतपा, जुलूस और चौराहे जैसे उपन्यासों की रचना की।
12. **राधाकृष्ण** (1912-1971) राँची में जन्मे राधाकृष्ण ने प्रेमचन्द के समय कथा साहित्य लिखकर काफी ख्याति अर्जित की 'फुटपाथ', सनसनाते सपने, रूपान्तर, सपने विकाऊ हैं, इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।
13. **अमृतलाल नागर** (सन् 1916-1990) प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में अमृतलाल नागर का विशेष स्थान हैं। इन्होंने अपने जीवनकाल में 'शतरंज की मोहरे' ,सहाग के नुपुर, बूँद और समुद्र, अमृत और बिष, सेठ बाँकेलाल, नाच्यो बहुत गोपाल, मानस का हंस, और खंजन-नयन, जैसे चर्चित उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास संसार की समृद्धि में बहुत बड़ा योगदान दिया।
14. **बिष्णु प्रभाकर** (सन् 1912) गाँधीवादी विचारधारा के कथाकार श्री विष्णु प्रभाकर उपन्यासकार ही नहीं कहानीकार भी थे। इन्होंने अपने जीवन काल में 'स्वप्मयी', निशिकान्त', तट के बन्धन, और ढलती रात, जैसे प्रसिद्ध उपन्यास लिखे।
15. **नागार्जुन** (सन् 1911) मार्क्सवाद में आस्था रखने वाले नागार्जुन ने ग्रामीण जीवन के चित्रकार थे। इन्होंने रातिनाथ की चाची, बलचमा, नई पौध, बाबा बटेसरनाथ, दुःखमोचन, वरूण के बेटे, कुम्भीपाक जैसे चर्चित उपन्यास लिखे।
16. **उप्रेन्द्रनाथ 'अश्क'** (सन् 1910-1996) मध्यम वर्गीय व्यक्ति की घुटन, बेबसी, और यौनकुंठा जैसे बिषयों पर लेखनी चलाने वाले उपेन्द्रनाथ अश्क, नाटककार ही नहीं उपन्यासकार भी थे। सितारों के खेल, गिरती दीवारें, गर्मराख, बड़ी-बड़ी आँखें'' , पत्थर-अल-पत्थर, शहर में घूमता हुआ आईना, बाँधों न नाव इस ठाँव, आपकी प्रसिद्ध उपन्यास कृतियाँ हैं
17. **गुरूदत्त** (सन् 1919-1971) राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक गुरूदत्त ने अपने उपन्यासों में संस्कृति तथा वैदिक विचारधारा को श्रेष्ठ दिखाया। पुष्यमित्र, विश्वासघात, उल्टी बही गंगा, इनके प्रसिद्ध उपन्यास है।
18. **डॉ0 देवराज** (सन् 1921) मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी समाज का जीवन चित्रित करने वाले डॉ0 देवराज पथ की खोज, बाहर-भीतर, रोड़े और पत्थर, अजय की डायरी, दूसरा-सूत्र'' जैसे उपन्यास लिखकर हिन्दी की सतत् सेवा की।

19. **मोहन राकेश** (सन् 1925-1972) एक नाटकार के रूप में ख्याति प्राप्त करने वाले मोहन राकेश ने कई उपन्यास भी लिखे। 'अँधेरे बन्द कमरे'', 'नीली रोशनी की बाहें, न जाने वाला कल, इनके महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।
20. **भीष्म साहनी** (सन् 1915) साम्यवाद से प्रभावित श्री भीष्म साहनी की मूल धारणा मानवतावादी रही है। इन्होंने अपने जीवनकाल में वसंती, तमस, झरोखे, कडियाँ जैसे उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास जगत को और अधिक समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

उपरोक्त उपन्याकारों के अतिरिक्त अन्य जिन उपन्यासकारों ने उपन्यास विधा पर लेखनी चलाकर इसे समृद्ध करने का बीड़ा उठाया उनमें प्रमुख उपन्यासकार है- कमलेश्वर-सुबह दोपहर शाम, राजेन्द्र यादव- 'उखड़े हुए लोग', राजेन्द्र अवस्थी- 'जंगल के फूल', हिमांशु जोशी- अरणय, रामवृक्ष बेनपुरी- 'पतितों के देश में, शिवप्रसाद सिंह - गली आगे मुड़ती हैं, रघुवीरशरण मित्र- राख और दुल्हन, भैरव प्रसाद गुप्त- सती भैया का चौरा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना- सोया हुआ जल, धर्मवीर भारती- गुनाहों का देवता, मोहन लाल महतो - वियोगी, महामंत्री आदि।

इन उपन्यासकारों में कुछ उपन्यासकार ऐसे भी हैं जिन्होंने आँचलिक उपन्यासों के सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। ये अन्य उपन्यासकार हैं- उदयशंकर भट्ट- सागर, लहरें और मनुष्य, देवेन्द्र सत्यार्थी- रथ के पहिये, ब्रह्मपुत्र, बलभद्र ठाकुर- आदित्यनाथ, देवताओं के देश में, नेपाल की बेटी, हिमांशु श्रीवास्तव - नदी फिर बह चली, रामदरश मिश्र- पानी के प्राचीर, शैलेश मटियानी- हौलदार, राजेन्द्र अवस्थी- जंगल के फूल, सूरज किरण की छाँह, मनहर चौहान- हिरना सावरी, श्याम परमार- मोरझल, राही मासूम रजा- आधा गाँव आदि।

स्वातन्त्रयोत्तर भारतीय जीवन के बदलते परिवेश में कुछ नये उपन्यासकार उभरकर आये जिन्होंने समाजिक संघर्ष, व्यक्ति और परिवार के सम्बन्ध, भ्रष्टाचार, आर्थिक शोषण, नैतिक मूल्यों का परिवर्तन, परम्परा और रूढिवाद के प्रति विद्रोह, आधुनिकता का आकर्षण जैसे विविध विषयों को अपने उपन्यासों के माध्यम से उभारा। इन उपन्यासकारों में- यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र- पथहीन, दिया जला दिया बुझा, गुनाहों की देवी, यज्ञदत्त शर्मा- इनसान, निर्माणपथ, महल और मकान, बदलती राहें, मन्नू भंडारी- आपका बंटी, उषा प्रियंवदा, पचपन खम्भे लाल दीवारें, शेष यात्रा, रूकेगी नहीं राधिका, रमेश वक्षी- अठारह सूरज के पौधे, महेन्द्र मल्ला- पत्नी के नोट्स, बदी उज्जयाँ- एक चूहे की मौत आदि उपन्यास बड़े लोकप्रिय और प्रख्यात हैं।

हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यास लेखन में भले पुरूष उपन्यासकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही लेकिन बाद में धीरे-धीरे इस विधा को आगे बढ़ाने में महिलाएँ भी जुड़ने लगी। इन महिलाओं में उषा मित्रा के उपन्यास काफी चर्चित रहे। बाद में चन्द्रकिरण, कंचनलता सब्बरवाल, शिवानी जैसी प्रतिभा सम्पन्न लेखिकाओं ने उपन्यास विधा को अनेक विस्मरणीय रचनाएँ दी।

इसी श्रृखंला को बाद में मन्नू भण्डारी, चित्रा मुद्गल, मालती परूलकर, दीप्ति खण्डेलवाल, मालती जोशी, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, उषा प्रियंवदा कृष्णा अग्निहोती, ममता कालिया निरूपमा शास्त्री कृष्णा सोबती, रजनी पन्निकर, संतोष शैलजा, सूर्यवाला, सिम्मी हर्षिता , मैसेयी पुष्पा राजी सेठ कमल कुमार, स्नेह मोहनीश आदि महिलाओं ने आगे बढाया और बढ़ा रही है।

अभ्यास प्रश्न

(1) हिन्दी के वर्तमान उपन्यास का स्वरूप हमें प्राप्त हुआ है। सही का चिह्न लगाये-

1. भारतीय प्राचीन साहित्य से ( )
2. पाश्चात्य साहित्य से ( )
3. पूर्वी साहित्य से ( )
4. उत्तरी साहित्य से ( )

(2) हिन्दी उपन्यास के तत्व हैं- सही का चिह्न लगायें

1. कथानक
2. संवाद
3. उद्देश्य
4. उपरोक्त सभी

(3) हिन्दी उपन्यास समग्र स्वरूप हैं, सही पर चिह्न लगायें।

1. कविता का
2. नाटक का
3. कहानी का
4. एंकाकी का

(4) विद्वानों ने हिन्दी उपन्यास का इतिहास लिखते समय इसे निम्नलिखित काल खण्डों में बाँटा हैं, सही पर चिह्न लगायें

1. चार काल खण्डों में
2. छः काल खण्डों में
3. तीन काल खण्डों में
4. पाँच काल खण्डों में

(5) प्रेमचन्द पूर्व युग के किन्ही चार उपन्यास कारों के नाम लिखियें

(6) प्रेमचन्द पूर्व युग के उपन्यासों की दो विशेषताऐं बतलाइए।

(7) प्रेमचन्द पूर्व युग के चार उपन्यासकारों के नाम और प्रत्येक की एक-एक रचना का उल्लेख कीजिये।

उपन्यासकार	**उपन्यास**
1.	
2.	
3.	
4.	

(8) निम्नलिखित उपन्यासकारों के उपन्यासों की दो-दो विशेषताऐं लिखिये।

1. प्रेमचन्द्र
2. जयशंकर प्रसाद

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. प्रेमचन्द पूर्व युग के चार उपन्यासकारों के उपन्यासों का नाम लिखिये।
2. प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों में से किन्ही पाँच उपन्यासकारों का जीवनकाल और उनकी दो उपन्यास रचनाओं के नाम लिखिए।
3. किन्ही पाँच महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों का नामोल्लेख कीजिये।

3.6 सारांश

आपने इस इकाई को ध्यान से पढ़ा होगा। इससे आपको ज्ञात हुआ होगा कि उपन्यास विधा साहित्य की अत्यन्त लोकप्रिय विधा है। इस इकाई को पढने के पश्चात् आप -

- उपन्यास की परिभाषा बता सकेंगे।
- उपन्यास के तत्वों पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- इससे आप यह भी समझ सकेंगे कि उपन्यास में केवल कल्पित कथा को ही स्थान नहीं दिया जाता अपितु जीवन के तथ्यों को भी स्थान दिया जाता है।
- हिन्दी उपन्यास के विकास को काल खण्डों के आधार पर भी समझ सकेंगे।

- प्रमुख उपन्यासकार तथा उनकी रचनाओं के विषय में भी जानकारी प्राप्त कर चुके होंगे। उपन्यास रचना में केवल पुरूषों का ही योगदान नहीं अपितु महिलाओं का भी योगदान है।

3.7 शब्दावली

1.	अध्ययनोपरान्त	-	पढ़ने के बाद
2.	तिलिस्मी	-	अद्भुत या अलौलिक व्यापार
3.	जासूसी	-	गुप्तचरी
4.	आयाम	-	विस्तार
5.	समयानुकूल	-	समय के अनुकूल
6.	प्राणपण	-	तन मन धन से
7.	सृजना	-	रचना, निर्माण
8.	ऐतिहासिक	-	इतिहास से संदर्भित
9.	प्रेमचन्दोत्तर	-	प्रेमचन्द के पश्चात्
10.	औपन्यासिक	-	उपन्यास के
11.	आत्मकथ्यपरक	-	आत्म कथा शैली में
12.	प्रोत्साहित	-	किसी काम के लिए उत्साह बढ़ाना

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1)	2.	पाश्चात्य साहित्य से
(2)	4.	उपरोक्त सभी
(3)	3.	कहानी का
(4)	3.	तीन काल खण्डों में,
(5)	1.	जयशंकर प्रसाद
	2.	पंण्डित विश्वम्भर नाथ शर्मा
	3.	सुदर्शन
	4.	वृन्दालाल शर्मा
(6)	1.	अनुदित उपन्यास
	2.	तिलिस्मी और जासूसी उपन्यास

(7)

	उपन्यासकार	**उपन्यास**
1.	श्री निवासदास	'परीक्षा गुरू'
2.	पंडित बालकृष्ण भट्ट	'नूतन ब्रहमचारी'

3. देवकी नन्दन खत्री ‘चन्द्रकांता’
4. किशोरी लाल गोस्वामी ‘लबंग लता

(8) **प्रेमचन्द्र**

1. यथार्थवादी उपन्यास
2. ग्रामीण जीवन की झाँकी

जयशंकर प्रसाद

1. यथार्थवादी उपन्यास
2. समाज के निर्माण और सुधार प्रवृत्ति वाले उपन्यास

लघु उत्तरीय

(1) प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारों में चार उपन्यासकार थे

1. बाबू राधाकृष्ण दास- इनका उपन्यास है- ‘निःसहाय हिन्दु’
2. बालकृष्ण भट्ट - इनका उपन्यास है- ‘नूतन ब्रह्मचारी
3. पंडित गोपालदास बरैया- इनका उपन्यास है- ‘सुशीला’
4. लज्जाराम मेहता- इनका उपन्यास है- ‘धूर्त रसिक लाल’

(2) प्रेमचन्दोत्तर पाँच उपन्यासकार हैं-

1. भागवती चरण वर्मा

उपन्यास-1. चित्रलेखा

2. आखिरी दाँव

2. भागवती प्रसाद वाजपेयी

उपन्यास -1. प्रेमपथ

2. प्यासा

3. चतुरसेन शास्त्री

उपन्यास -1. वयं रक्षामः

2. आत्मदाह

4. यशपाल- जीवनकाल

उपन्यास -1. अमिता

2. दिव्या

5. अज्ञेय

उपन्यास -1. नदी के द्वीप

2. अपने-अपने अजनबी

(3) पाँच महिला उपन्यासकार हैं-

1. मन्नू भण्डारी
2. चित्रा मुद्गल
3. मालती जोशी
4. उषा प्रियंवदा
5. मैत्रेयी पुष्पा

3.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. राय, बाबू गुलाब, हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास।
2. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उपन्यास के तत्वों पर प्रकाश डालिए।
2. प्रेमचंद युगीन उपन्यासों की विशेषता बताइए।

इकाई 4. कहानी का स्वरूप, भेद व तत्व

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 कहानी का स्वरूप
4.3.1 कहानी, लघुकथा, लम्बी कहानी
4.3.2 अर्थ और परिभाषा
4.3.3 कहानी की विशेषता
4.4 कहानी के तत्व
4.4.1 कथानक
4.4.2 पात्र-चरित्र-चित्रण
4.4.3 कथोपकथन
4.4.4 वातावरण
4.4.5 भाषा शैली
4.4.6 उद्देश्य
4.5 कहानी के भेद
4.5.1 घटना प्रधान कहानी
4.5.2 चरित्र प्रधान कहानी
4.5.3 वातावरण प्रधान कहानी
4.5.4 भाव प्रधान कहानी
4.5.5 मनोविश्लेषणात्मक कहानी
4.5.6 शैलीगत भेद
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

पाठ्यक्रम में चुनी गई कहानियों को पढ़ने से पूर्व आपको कहानी के स्वरूप, लक्षण, भेद और तत्वों को समझना आवश्यक है। कहानी, साहित्य की बहुत पुरानी विधा है और कथा सुनाने की परम्परा भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से रही है। ऐसा माना जाता है कि पहले कथा लोक रंजन के लिए सुनाई जाती थी। कथाकार असाधारण घटनाओं, पशु-पक्षियों का मनुष्यों की तरह बोलना, परिलोक की कथा, राक्षसों का अत्याचार और जादूगरों के कारनामें कहानी का विषय बनाकर पाठक-श्रोताओं को चकित और मुग्ध करके कल्पनालोक की ओर ले जाते थे। लोक कथाओं के रूप में कहानी का यह रूप आज भी प्रचलित है।

प्राचीन काल से ही भारत में कथा की परम्परा उपनिषदों की रूपक कथाओं, गुणाढ्य की वृह्तकथा, कथासरित सागर, पंचतन्त्र की कथाओं, हितोपदेश जातक कथाओं, महाभारत के उपाख्यानों, दशकुमार चरित आदि ग्रन्थों में देखी जा सकती है; लेकिन आज ‘कहानी’ के रूप में जिस विधा की चर्चा हम करेगें वह परम्परागत कथाओं से एकदम अलग रूप में दिखाई देती है।

सर्वप्रथम हिन्दी-कथा-साहित्य (कहानी और उपन्यास) का जन्म द्विवेदी युग में सरस्वती (1900 ई0) पत्रिका के साथ हुआ था। क्योंकि इससे पूर्व भारतेन्दु युग में कहानियाँ भी कथात्मक शैली के निबन्धों के रूप में मिलती हैं। प्रारंभिक कहानीकारों में केवल तीन कहानीकारों का ही उल्लेख मिलता है। इनमें सैयद इंशा अल्ला खां ने ‘रानी केतकी की कहानी’, सदल मिश्र ने ‘नासिकेतोपाख्यान’ और राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने ‘राजा भोज का सपना’ कहानियों की रचना की। जिन्हें हिन्दी कहानियों का पूर्व-रूप कह सकते हैं परन्तु इनमें कहानी का सुव्यवस्थित रूप नहीं मिलता है। द्विवेदी युग में बंग महिला की ‘दुलाईवाली’ और रामचन्द्र शुक्ल की ’ग्यारह वर्ष का समय’ कहानियाँ प्रकाश में आई। इसके बाद हिन्दी-कहानी को व्यवस्थित और सफल बनाने में प्रेमचन्द का योगदान अविस्मरणीय रहा। खड़ी बोली हिन्दी में कहानी के वर्तमान स्वरूप का आरम्भ तब हुआ जब पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से बँग्ला में गद्य-लेखन प्रारम्भ हुआ; तत्पश्चात् हिन्दी ने इस विधा को अपनाया।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में जन्मी कहानी विधा ने एक लम्बे कालखण्ड में सफलतापूर्वक अपनी उपस्थिति समय-समय पर प्रभावी रूप में प्रदर्शित की है। स्वतन्त्रतापूर्व की हिन्दी कहानी प्रारंभ में जहाँ इतिवृतात्मक, उपदेशात्मक व मनोरंजन प्रधान थी, वहीं प्रेमचन्द के आगमन के साथ उसमें समाज के गंभीर व मार्मिक पक्षों का साक्षात्कार जनसाधारण के बीच करवाना प्रारंभ किया। स्वातंत्रयोत्तर काल में हिन्दी कहानी में आम व्यक्ति की कुंठा, निराशा, अवसाद व बेचैनी को चित्रित किया गया है। जिससे हिन्दी कहानी में ‘नयी कहानी आन्दोलन’ का उदय एक महत्वपूर्ण घटना माना गया। तत्पश्चात कहानी में ‘सचेतन कहानी’, ’जनवादी

कहानी', 'सक्रिय कहानी', 'समानान्तर कहानी', 'अकहानी' जैसे कई अन्दोलन विविध रूपों में उभर कर आये। इन आन्दोलनों के प्रभावी रूप से हिन्दी कहानी निरन्तर विकासोन्मुख होते चली गयी।

इसके पश्चात आप कहानी के स्वरूप और तत्वों के माध्यम से कहानी विधा के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।

4.2 उद्देश्य

यह पाठ्यक्रम का द्वितीय खण्ड है। इस खण्ड में आप कथा-साहित्य का अध्ययन करेगें। इस इकाई में हम आपको कहानी के स्वरूप, भेद और तत्वों से परिचित कराएँगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- कहानी की रचनागत विशिष्टता को बता सकेगें।
- कहानी के स्वरूप, अर्थ एवं परिभाषा को बता सकेगें।
- कहानी के भेद बता पाएगें।
- कहानी की विशेषता बता सकेगें।
- कहानी के तत्वों का विश्लेषण कर सकेगें।

4.3 कहानी का स्वरूप

गद्य के भीतर कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबन्ध, यात्रावृत्त, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, समीक्षा आदि विधाएं आती हैं। इनमें से कहानी, उपन्यास और नाटक को हम कथा-साहित्य कहते हैं। कथा-साहित्य में किसी न किसी घटना क्रम के सन्दर्भ में प्रेम, ईर्ष्या, रहस्य, रोमांच, जिज्ञासा और मनोरंजन संबधी भाव मिले-जुले होते हैं। कहानी का सम्बन्ध सृष्टि के प्रारम्भ से ही जोड़ा जाता है। मानव ने जिस दिन से भाषा द्वारा अपने भावों की अभिव्यक्ति आरम्भ की होगी सम्भवतः उसी दिन उसने कहानी कहना और सुनना आरम्भ कर दिया होगा।

प्रारम्भ में कहानी में व्यक्ति के अनुभव सीधे-सीधे कहे गये होंगे। यानि घटना या अनुभव को बॉटने की क्रिया ही कहानी बन गयी होगी। वास्तव में दो लोगों के बीच भूख-प्यास, सुख-दुःख, भय-आशंका, प्रेम-ईर्ष्या, जीवन और सुरक्षा की भावना समान और सामान्यतः पायी जाती है। निश्चित ही दूसरों के साथ हुई घटना को सुनने और अपने अनुभवों को सुनाने की इच्छा आज भी हर एक मनुष्य मे एक समान रूप से पायी जाती है। इसी सुनने की इच्छा ने कहने अर्थात् कहानी का प्रारम्भिक रूप बनाया होगा। स्पष्ट है कि मनुष्य के ज्ञान के साथ-साथ कहानी

का विकास भी निरन्तर होता रहा है। मनुष्य के विकास का जो क्रम रहा वही कहानी के विकास का भी रहा है। जिस प्रकार आज मनुष्य का जीवन सरल से अत्यन्त जटिलता की ओर बढ़ा, कहानी का रुप भी उसी अनुरूप जटिल हो गया है। आज का जीवन तर्क प्रधान, बुद्धि प्रधान है, इसलिए कहानियां भी बुद्धि प्रधान हो गयी हैं।

कहानी का वर्तमान स्वरुप आधुनिक युग की देन है। भारत में कहानियां अपने अत्यन्त प्राचीनतम रुप में मिलती हैं। वेदों में हम भले ही कहानी के मूल रुप का आभास न पाएँ किन्तु उनमें कहानियों की व्यापक परम्परा रही है। महाभारत, बौद्ध साहित्य, पुराण, हितोपदेश, पंचतन्त्र आदि कहानियों के भण्डार हैं। पन्चतंत्र तो वास्तव में विश्व की कहानियों का स्रोत माना जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो आधुनिक कहानी का यह स्वरूप अंग्रेजी साहित्य से होते हुए बँगला के माध्यम से मिला है। अपने प्राचीन रूप में गल्प, कथा, आख्यायिका, लघु कथा नाम से जानी जाने वाली कहानी का स्वरूप वर्तमान कहानी से बिलकुल अलग है। आजकल प्रचलित कहानियाँ मुख्यतः तीन रूपों में दृष्टिगत होती हैं जिन्हें कहानी, लघुकथा एंव लम्बी कहानी के नाम से जाना जाता है।

4.3.1 कहानी, लघुकथा, लम्बी कहानी

हम ऊपर कहानी पर चर्चा कर चुके हैं। अब आपको कहानी के अन्य रूपों से अवगत कराते हैं। कहानी का दूसरा रूप है ‘लघुकथा’ और तीसरा ‘लम्बी कहानी’। आजकल इन रूपों में कई रचनाएँ प्रकाशित हो रही हैं और लोग इन्हें एक ही मानने की भूल करते हैं। वे सोचते है कि कहानी छोटी होकर ‘लघुकथा’ और आकार बड़ा होने पर ‘लम्बी कहानी’ हो जाती है, जबकि आकार मे औसत होने वाली कहानी ही कहानी है।

लघुकथा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डा0 पुष्पा बंसल ने कहा है “लघुकथा कहानी की सजातीय है, किन्तु व्यक्तित्व में इससे भिन्न। यह मात्र घटना हैं, परिवेश-निर्माण को पूर्णतया छोड़कर पात्र-चरित्र-चित्रण को भी पूर्णतया त्यागकर विशलेषण से अछूती रहकर, मात्र घटना (चरम सीमा) की प्रस्तुति ही लघुकथा हैं। लघुकथा में प्रेरणा बिन्दु का विस्तार नहीं होता है, केवल बिन्दु होता है। लघुकथा मनोरंजन नहीं करती मन पर आघात करती है। चेतना पर ठोकर मारती है और आँखों में उंगली डालकर यर्थाथ दिखाती है। लघुकथा में एक सुस्पष्ट नुकीला संवदेना-सूत्र प्रधान हो उठता है।" उक्त कथन के आलोक में कहा जा सकता है लघु कथा में एकता, संक्षिप्ता, तीखेपन, व्यंग्य और घटना सूत्र के तीव्र प्रभाव पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

दूसरी ओर जीवन की गहरी जटिलता ने ‘लम्बी कहानी’ को जन्म दिया। ‘लम्बाई’ पृष्ठ संख्या की नहीं, अपितु साहित्य के क्षेत्र में नई दृष्टि की सूचक है। यहीं नई दृष्टि ‘लंबी कहानी’ को कहानी से अलग करती है। घटना और परिवेश में, अंतर्द्वन्द्व में अर्थात् मनोभावों के चित्रण में विस्तार देकर चित्रित किया जाता है। इसीलिए घटना का इकहरापन होते हुए भी उसके एक से

अधिक कोण स्पष्टता से उभर आते हैं और एक से अधिक पात्र उभर आते हैं। अर्थात् लम्बी कहानी में मुख्य पात्र के साथ-साथ घटना से जुड़े अन्य पात्र परिवेश की सम्पन्नता में स्थित होकर जीवन-सन्दर्भों की गहनता को विस्तार एवं आयाम प्रदान करते है। इसे संक्षेप में आप समझ सकते है। लम्बी कहानी में क्योंकि घटना और पात्रों के सन्दर्भ में 'एकता' या एक पक्ष का पालन नहीं होता, इसीलिए उसका आकार बढ़ जाता है किन्तु वह अपने कहानीपन को अक्षुण रखती हैं।

यद्यपि कहानी जीवन के यर्थाथ से प्रेरित होती है तब भी इसमें कल्पना की प्रधानता रहती है। इसमें रचनाकार अपनी बात सीधे न कहकर कथा के माध्यम से कहता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए हम आगे कहानी के अर्थ-परिभाषा उसके भेद और रचना तत्वों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

4. 3.2 अर्थ और परिभाषा

अर्थ - 'कहानी' शब्द अंग्रेजी के 'शॉर्ट स्टोरी' का समानार्थी है। कहानी का शाब्दिक अर्थ है- "कहना", इसी रूप में संस्कृत की 'कथ' धातु से कथा शब्द बना, जिसका अर्थ भी कहने के लिए प्रयुक्त होता है। कथ्य एक भाव है जिसे प्रकट करने के लिए कथाकार अपने मस्तिष्क में एक रूपरेखा बनाता है और उसे एक साँचे में ढाल कर प्रस्तुत करता है, वही 'कथा' कहलाती है। सामान्य बोलचाल की भाषा में 'कथा' और 'कहानी' शब्द एक पर्याय के रूप में जाने जाते रहे हैं; लेकिन आज कहानी कथा-साहित्य के एक आवश्यक अंग के रूप में प्रसिद्ध है। यद्यपि कहानी को किसी एक निश्चित परिभाषा या शब्दों में बॉधना कठिन कार्य है, फिर भी 'कहानी' को समझाने के लिए विद्वानों ने इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है।

परिभाषा - हम पहले ही बता चुके हैं कि कहानी पश्चिम से आई विधा है। अतः सबसे पहले पश्चिमी विद्वानों की कतिपय परिभाषाओं को लिया जा सकता है। पाश्चात्य देशो में एडगर एलन पो आधुनिक कहानी के जन्मदाताओं में प्रमुख माने जाते हैं। उन्होंने कहानी को परिभाषित करते हुए कहा है कि, "छोटी कहानी एक ऐसा आख्यान है, जो इतना छोटा है कि एक बैठक में पढ़ा जा सके और पाठक पर एक ही प्रभाव उत्पन्न करने के उद्देश्यों से लिखा गया हो, वह स्वतः पूर्ण होती है।"

हडसन के अनुसार "लघु कहानी में केवल एक ही मूल भाव होता है। उस मूल भाव का विकास तार्किक निष्कर्षो के साथ लक्ष्य की एकनिष्ठता से सरल, स्वाभाविक गति से किया जाना चाहिए।" एलेरी ने कहानी की सक्रियता पर अधिक बल दिया है और कहा कि, "वह घुड़दौड़ के समान होती है। जिस प्रकार घुड़दौड़ का आदि और अंत महत्त्वपूर्ण होता है उसी प्रकार कहानी का आदि और अंत ही विशेष महत्त्व का होता है।"

इन परिभाषाओं पर यदि हम विचार करें तो पाते हैं कि कहानी में संक्षिप्तता और मूल भाव का ही महत्त्व होता है, जबकि कहानी के वास्तविक स्वरूप को ये पूर्ण नहीं करती। अतः यहाँ सर ह्यू बालपोल के विचार को समझना जरूरी हो जाता है। उन्होंने कहानी के विषय में थोड़ा विस्तार से बताया है। पोल के अनुसार, "छोटी कहानी एक कहानी होनी चाहिए, जिसमें घटनाओं, दुर्घटनाओं, तीव्र कार्य व्यापार और कौतूहल के माध्यम से चरम सीमा तक सन्तोषजनक पर्यवसान तक ले जाने वाले अप्रत्याशित विकास का विवरण हो।"

वस्तुतः ये परिभाषाएँ पश्चिम की साहित्यिक प्रवृत्तियों एवं विधा के अनुरूपों को उद्घाटित करती हैं। हिन्दी साहित्य में कहानी, बँग्ला कहानी साहित्य के माध्यम से आई। अतः कहानी में यहाँ का पुट भी शामिल हो गया। भारतीय समाज और संस्कृति का प्रभाव उसके स्वरूप में दिखाई देना स्वाभाविक था। यहाँ हिन्दी के विद्वानों का कहानी के सन्दर्भ में विचार जानना आवश्यक है। अतः अब हम भारतीय विद्वानों के कहानी संबधी दृष्टिकोण पर विचार करते हैं। मुंशी प्रेमचन्द के अनुसार, "कहानी (गल्प) एक रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग या मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली तथा कथा-विन्यास सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं।"

बाबू श्यामसुन्दर दास का मत है कि, "आख्यायिका एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को लेकर नाटकीय आख्यान है।" बाबू गुलाबराय का विचार है कि, "छोटी कहानी एक स्वतः पूर्ण रचना है जिसमें एक तथ्य या प्रभाव को अग्रसर करने वाली व्यक्ति-केंद्रित घटना या घटनाओं के आवश्यक, परन्तु कुछ-कुछ अप्रत्ययाशित ढंग से उत्थान-पतन और मोड़ के साथ पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाला कौतूहलपूर्ण वर्णन हो।" इलाचन्द्र जोशी के अनुसार "जीवन का चक्र नाना परिस्थितियों के संघर्ष से उल्टा सीधा चलता रहता है। इस सुवृहत् चक्र की किसी विशेष परिस्थिति की स्वभाविक गति को प्रदर्शित करना ही कहानी की विशेषता है।'' जयशंकर प्रसाद कहानी को 'सौन्दर्य की झलक का रस' प्रदान करने वाली मानते हैं तो रायकृष्णदास कहानी को 'किसी न किसी सत्य का उद्घाटन' करने वाली तथा मनोरंजन करने वाली विधा कहते हैं। 'अज्ञेय' कहानी को 'जीवन की प्रतिच्छाया' मानते है तो जैनेन्द्र कुमार 'निरन्तर समाधान पाने की कोशिश करने वाली एक भूख' कहते हैं।

ये सभी परिभाषाएँ भले ही कहानी के स्वरूप को पूर्णतः स्पष्ट नहीं करती हैं, परन्तु उसके किसी न किसी पक्ष को जरूर प्रदर्शित करती हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि किसी भी साहित्य-विधा की कोई ऐसी परिभाषा देना मुश्किल है जो उसके सभी पक्षों का समावेश कर सके या उसके सभी रूपों का प्रतिनिधित्व कर सके। कहानी में साधारण से साधारण बातों का वर्णन हो सकता है, कोई भी साधारण घटना कैसे घटी, को कहानी का रुप दिया जा सकता है परन्तु कहानी अपने में पूर्ण और रोमांचक हो। जाहिर है कहानी मानव जीवन की घटनाओं और

अनुभवों पर आधारित होती है जो समय के अनुरूप बदलते हैं ऐसे में कहानी की निश्चित परिभाषा से अधिक उसकी विशेषताओं को जानने का प्रयास करें।

4. 3.3 कहानी की विशेषताएँ

अब तक आप कहानी के स्वरूप, अर्थ और परिभाषा को पढ़ चुके हैं। उक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि कहानी में निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं-

1. कहानी एक कथात्मक संक्षिप्त गद्य रचना है, अर्थात कहानी आकार में छोटी होती है जिसमें कथातत्व की प्रधानता होती है।
2. कहानी में 'प्रभावान्विति' होती है अर्थात् कहानी में विषय के एकत्व के साथ ही प्रभावों की एकता का होना भी बहुत आवश्यक है।
3. कहानी ऐसी हो, जिसे बीस मिनट, एक घण्टा या एक बैठक में पढ़ा जा सके।
4. कौतूहल और मनोरंजन कहानी का आवश्यक गुण है।
5. कहानी में जीवन का यर्थाथ होता है, वह यर्थाथ जो कल्पित होते हुए भी सच्चा लगे।
6. कहानी में जीवन के एक तथ्य का, एक संवेदना अथवा एक स्थिति का प्रभावपूर्ण चित्रण होता है।
7. कहानी में तीव्रता और गति आवश्यक है जिस कारण विद्वानों ने उसे 100 गज की दौड़ कहा है। अर्थात कहानी आरम्भ हो और शीघ्र ही समाप्त भी हो जाए।
8. कहानी में एक मूल भावना का विस्तार आख्यानात्मक शैली में होता है।
9. कहानी में प्रेरणा बिन्दु का विस्तार होता।
10. कहानी की रूपरेखा पूर्णतः स्पष्ट और सन्तुलित होती है।
11. कहानी में मनुष्य के पूर्ण जीवन नहीं बल्कि उसके चरित्र का एक अंग चित्रित होता है, इसमें घटनाएँ व्यक्ति केन्द्रित होती हैं।
12. कहानी अपने आप में पूर्ण होती है।

उक्त विशेषताओं को आप ध्यान से बार-बार पढ़कर कहानी के मूल भाव और रचना-प्रक्रिया को समझ पायेंगे। इन सब लक्षणों या विशेषताओं को ध्यान में रखकर हम आसान शब्दों में कह सकते हैं कि--''कहानी कथातत्व प्रधान ऐसा खण्ड या प्रबन्धात्मक गद्य रूप है, जिसमें जीवन के किसी एक अंश, एक स्थिति या तथ्य का संवेदना के साथ स्वतः पूर्ण और प्रभावशाली चित्रण किया जाता है।" किसी भी कहानी पर विचार करने से पहले उसे पहचानना आवश्यक होता है। आगे के पाठों में हम इस पर और विस्तार से बात करेंगे।

अभ्सास प्रश्न

अब तब आपने इस इकाई में कहानी के स्वरूप, अर्थ, परिभाषा और उसकी विशेषताओं (लक्षण) का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तर को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलाकर देखिए कि आपका उत्तर सही है या नहीं।

(1) (अ) नीचे कुछ कथन दिये गये हैं, वे सही है या गलत बताइए।

क) कहानी का सम्बन्ध गल्प से नहीं जोड़ा जाता है।

ख) जयशंकर प्रसाद के अनुसार कहानी 'सौन्दर्य की झलक का रस' प्रदान करती हैं।

ग) भारतीय समाज और संस्कृति का प्रभाव कहानी स्वरूप में दिखाई देना स्वाभाविक नहीं है।

घ) कहानी में प्रेरणा बिन्दु का विस्तार होता है।

ड़) ऐलरी आाधुनिक कहानी के जन्मदाताओं में प्रमुख हैं।

च) लघुकथा साहित्य के क्षेत्र में नई दृष्टि की सूचक है।

छ) भारतेन्दु युग में कहानियाँ भी कथात्मक शैली के निबन्धों के रूप में मिलती हैं।

(1) (ब) नीचे दी गई रचनाओं के रचनाकारों का नाम लिखिए।

(क) नासिकेतोपाख्यान
(ख) दुलाईवाली
(ग) रानी केतकी की कहानी
(घ) ग्यारह वर्ष का समय

(2) कहानी का अर्थ स्पष्ट कीजिए। (उत्तर तीन पंक्तियों में लिखिए)

....
....
....

(3) कहानी की परिभाषा तीन पंक्तियों में लिखिए।

....
....
....

(4) कहानी की प्रमुख पाँच विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

(5) लघुकथा और लंबी कहानी में अन्तर बताइए। (उत्तर लगभग दस पंक्तियों में लिखिए)

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

4.4 कहानी के तत्व

अभी तक आपने कहानी की संरचना और उसकी विशेषताओं को समझा । किन्तु कहानी आज के युग में केवल मनोरंजन का ही माध्यम नहीं है अपितु जीवन मूल्यों की जानकारी, सामाजिक तानेबाने की समझ एंव कठिन परिस्थितियों से जूझने की सामर्थ्य भी हमें कहानी से प्राप्त होती है। मूल्यांकन की दृष्टि से कहानी के कुछ तत्व निर्धारित किये गये हैं। समीक्षकों ने कथा साहित्य के रूप में उपन्यास और कहानी को एक समान मानकर मापदण्ड की एक ही पद्धति अपनाई है, और उपन्यास की भाँति कहानी के भी छः तत्व माने हैं:

4.4.1 कथानक

कथानक का अर्थ है कहानी में प्रयोग की गई कथावस्तु या वह वस्तु जो कथा में विषय रूप में चुनी गई हो। कहानी में सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक आदि में से किसी एक विषय को लेकर घटना का विकास किया जाता है। कथानक में स्वाभाविकता लाने के लिए उसमें यथार्थ, कल्पना, मनोविज्ञान आदि का समावेश यथोचित रूप में किया जाता है। कथानक के विकास की चार स्थितियाँ मानी गई है- आरम्भ, विकास, चरमोत्कर्ष और अन्त।

कहानी का आरम्भ रोचक ढंग से होना चाहिए ताकि पाठक के मन में आगे की घटनाओं के लिए जिज्ञासा उत्पन्न हो सके। जिससे पाठक कहानी में इस कदर डूब जाये कि उसके मन में कहानी को शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने का लालच आ जाय। विकास अथवा आरोह में घटना क्रम में सहजता और पात्रों के स्वाभाविक मनः स्थिति का विकास दिखाया जाना

चाहिए। जिससे पाठक को कथानक समझने में आसानी एंव संपूर्ण कथानक उसके मन-मस्तिष्क में एक चलचित्र की भाँति चलने लगे। तीसरी स्थिति चरमोत्कर्ष वह अवस्था है जहाँ पर कहानी की रोचकता में क्षणभर के लिए स्तब्धता आ जाती है। पाठक कहानी का अन्तिम फल जानने के लिए उत्तेजित हो उठता है एंव वह अनायास ही कयास लगाने लगता है। कहानी के अन्त में परिणाम निहित रहता है, जिससे पाठक को सकून की अनुभूति प्राप्त होती है। अतः कहानी का उद्देश्य एंव कथानक स्पष्ट होना चाहिए। यह न तो विस्तृत होना चाहिए और न ही बिलकुल संक्षिप्त होना चाहिए।

हिमांशु जोशी की कहानी 'तरपन' का कथानक मधुली नामक विधवा स्त्री के घर से प्रारंभ होता है, जिसका पति की सरकारी सुरंग निर्माण के दौरान मृत्यु हो जाती है। उसकी तेरहवीं पर मृतक की आत्मा की शान्ति के लिये तरपन; तर्पणद्ध करने के लिये मधुली के पास धनाभाव होता है जिसके लिये वह दर दर भटकती है। अंततः वह कोसी के तट पर मिट्टी की गाय बना अपने पति का तर्पण स्वयं करती है।

कहानी का अन्त पाठक की समस्त जिज्ञासुओं को शान्त कर देता है परन्तु बदलते परिवेश एंव लेखन में आये बदलाव में आजकल कुछ कहानीकार परिणाम को अस्पष्ट रखकर पाठको को मनन की स्थिति में छोड़ देते हैं।

4. 4.2 पात्र एवं चरित्र-चित्रण

किसी भी कहानी में कथानक के बाद पात्रों का स्थान महत्वपूर्ण होता है। कहानी में पात्रों की कम संख्या अपेक्षित है। कथानक को पात्र ही गति देता है अन्यथा कथानक निरर्थक हो जाता है। कहानीकार कथानक के मुख्य भाव को पात्रों के माध्यम से ही प्रस्तुत करता है। कहानी में मुख्य रूप से तीन प्रकार के पात्र होते हैं- मुख्य पात्र, सहायक पात्र एंव गौण पात्र। कहानी वैसे तो मुख्य पात्रों के इर्द-गिर्द घुमती रहती है परन्तु सहायक एंव गौण पात्रों के माध्यम से लेखक कहानी में रोमांच, रहस्य एंव हास्य आदि भावों का पुट देता रहता है। पात्रों के सटीक चरित्र चित्रण से कहानी ज्यादा मोहक, प्रभावशाली एंव शिक्षाप्रद हो जाती है। कहानी के मुख्य पात्र समाज के लिए प्रेरणा स्रोत एवं बच्चों के आदर्श बन जाते हैं, तथा वे जीवन में वैसा ही बनने का प्रयास करते हैं।

तरपन कहानी की मुख्य पात्र मधुली है और समस्त कथानक उसके आस पास ही घूमता है। इसके अतिरिक्त कहानी में उसका पति तुलसा, साहुकार कंसा, ब्राह्मण आदि सहायक पात्र हैं जो कहानी को गतिशीलता प्रदान करते हैं।

4. 4.3 कथोपकथन

कहानी में कथा विकास और चरित्र विकास के लिए कथोपकथन सहायक होते हैं। पात्रों के आपसी संवाद या वार्तालाप को कथोपकथन कहा जाता हैं। कहानी में कथोपकथन से एक ओर घटना-क्रम को बढ़ाया जाता है तो दूसरी ओर पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को दिखाया जाता है। संवाद में रोचकता, सजीवता और स्वाभाविकता का गुण आवश्यक होता है। इसके साथ ही संवाद की भाषा पात्रों के अनुकूल, परिवेश के अनुरूप, आकार में छोटे और प्रभावशाली होनी चाहिए। किसी भी कहानी में कथोपकथन उसकी अभिव्यक्ति एंव आम पाठक के बीच पैठ बनाने में सहायक होता है।

'तरपन' नामक कहानी में पात्रों के संवाद मन को छू लेतें हैं। एक जगह मधुली तर्पण करने हेतु आये पंडित से कहती है, "बामणज्यू गरूण पुराण की सामर्थ्य मेरी कहाँ, मेरे पास तो जौं तिल बहाने के पैसे भी नहीं हैं, गौ गा्रस के लिए आटा नहीं है और बच्चे तीन दिन से भूखे हैं।'' ये कथन मानव मन को उद्वेलित कर देतें हैं।

4. 4.4 वातावरण

कहानी को सहज और स्वाभाविक रूप प्रदान करने के लिए उसके वातावरण का विशेष महत्व होता है। वातावरण से तात्पर्य है कहानी में प्रयोग किये गये विषय-वस्तु के आस-पास का परिवेश अर्थात् देश और काल का वर्णन करना। इसमें कहानीकार सामाजिक कहानियों में अपने युग का और ऐतिहासिक-पौराणिक कहानियों में पुरातन युग के इतिहास, भूगोल, समाज आदि का चित्रण करते हैं। कहानी में घटना, स्थान, पात्र, पात्रों की भाषा-वेशभूषा इत्यादि देश और काल के अनुसार ही की जाती है। कहानी जब दृश्य एंव श्रव्य माध्यम से समाज के सामने आती है तो उस देश, काल, परिस्थिति, भाषा-शैली, पहनावा तथा रहन-सहन से सभी परिचित हो जाते हैं। उदाहरणस्वरूप वर्तमान में अधिकांश धारावाहिकों में राजस्थान का चित्रण किया जा रहा है, इससे पूरा देश वहाँ की संस्कृति से परिचित हो रहा है। साथ ही बाल विवाह जैसी कुप्रथा के प्रति जागरूकता बढ़ने लगी है।

4. 4.5 भाषा-शैली

यहाँ आप कहानी में शैलीगत तत्त्व को जानने से पहले शैली के शाब्दिक अर्थ को समझेंगे। शैली का अर्थ है कथन पद्धति। सामान्य अर्थ में कहें तो कहने का एक अंदाज यानि ढंग, तरीका जो उसे दूसरों से भिन्न दिखाये शैली है। भाषा शैली का सम्बन्ध कहानी के सभी तत्त्वों के साथ रहता है। कहानी की भाषा शैली सरल, सुबोध, सरस और धाराप्रवाह होनी चाहिए। भाषा शैली में शब्द-चयन, सुसंगठित वाक्य-विन्यास, लक्षणा-व्यंजना आदि का प्रयोग उसकी महत्ता को बढ़ा देता है। कहानी की कई शैलियाँ है, जैसे कहानी में वर्णनात्मक,

संवादात्मक, पात्रात्मक, आत्मकथात्मक और डायरी शैली में से किसी एक या एक से अधिक भाषा शैलियों को स्थान दिया जा सकता है।

कहानी की रचना में भाषा का अत्यंत महत्व होता है कहानी की भाषा सरल, स्पष्ट एंव सुग्राही होनी चाहिए। यदि भाषा अधिक क्लिष्ट होगी तो ना तो यह साधरण पाठक को लुभा पायेगी और ना यह कहानी के उद्देश्य को ग्रहण कर पायेगी। अतः कहानी में भाषा ऐसी हो जो सुग्राही, कथानक एंव पात्रों के अनुरूप हो और जिसका प्रभाव व्यापक एवं गहरा हो।

4. 4.6 उद्देश्य

प्रायः कहानी का उद्देश्य 'मनोरंजन' माना जाता है, पर विद्वानों के अनुसार कहानी किसी लक्ष्य-विशेष को लेकर चलती है और पाठक को भी वहाँ तक पहुँचा देती है। वस्तुतः कहानी का उद्देश्य यर्थाथ के सुरूचि पूर्ण वर्णन द्वारा उच्च आदर्शों का संदेश देना है। चूँकि कहानी में जीवन की जटिलताओं, दैनन्दिन कार्यकलापों एवं व्यस्तताओं को उद्धाटित किया जाता है। अतः कहानी अपनी संक्षिप्तता और संप्रेषणता के द्वारा मनुष्य को जीवन के विभिन्न पहलुओं को समझने में मदद करती है।

कहानी के छः तत्वों को ज्यो-का-त्यों स्वीकार नहीं किया जा सकता है। क्योंकि आजकल कई कहानियों में कथानक का वह स्वरूप नहीं मिलता जो समीक्षकों ने परम्परागत रूप में रखा है। कई कहानियों में संवाद होता ही नहीं है। इसी तरह केवल मनोरंजन के उद्देश्य से ही कई कहानियाँ नहीं लिखी जाती। अब तक कहानी की यात्रा अपने आरम्भ से लगातार परिवर्तनशील रही है। तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उपर्युक्त छः तत्व आज की कहानी के लिए सीमा रेखा नहीं बना सकते। अतः परम्परा से चली आ रही मूल्यांकन दृष्टि को तोड़ना होगा।

इन सब कठिनाइयों को देखते हुए कथाकार और समीक्षक 'बटरोही' ने कहानी के केवल दो तत्व बताए- (1) शाब्दिक जीवन प्रतिबिम्ब (2) उससे निःसृत होने वाली 'एक' एवं 'प्रत्यक्ष' (मानवीय) संवेदना। वे स्पष्ट करते हैं कि जीवन-प्रतिबिम्ब के अंग के रूप में पात्र और वातावरण आ जाते हैं, उनका आना अनिवार्य हो, ऐसी बात नहीं हैं। बहुत बार कहानीकार के अलावा कहानी में कोई दूसरा पात्र नहीं होता। इस विधा के दो निम्नलिखित रचना-तत्व हैं :

(अ) कथा-तत्व (ब) संरचना-तत्व।

'कथा-तत्व' से आशय परम्परागत रूप से चला आ रहा 'कथानक' नहीं हैं अपितु जीवन-जगत के प्रतिबिम्बों का कथन और उनका प्रत्यक्षीकरण। घटनाओं, क्रिया-व्यापारों और चरित्रों के माध्यम से किसी एक संवेदना को जगाने के लिए अपनाया गया कथा-परिवेश।

'संरचना-तत्व' इस कथन तत्व को या जीवन-जगत् के प्रतिबिम्बों को प्रभावशाली ढंग से विन्यासित करने वाले उपादन है, जिसे हम भाषा, सवांद और इनके द्वारा निर्मित वातावरण, शैली आदि के रूप में देख सकते हैं। वस्तुतः ये दोनों तत्व परस्पर घुले-मिले रहते है और कहानी को प्रभावशाली बनाने में अपना योगदान देते हैं। संरचना-तत्व ही कहानी का 'रचनात्मक परिवेश' है, जिससे कहानीकार संवेदना का प्रभावपूर्ण चित्रण प्रस्तुत करता है।

अभ्यास प्रश्न

अब आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तर को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलाकर देखिए कि आपका उत्तर सही है या नहीं।

(6) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

क. कहानी के अन्त में .... निहित रहता है।

ख. विद्वानों के अनुसार कहानी किसी .... को लेकर चलती है और पाठक को भी वहाँ तक पहुँचा देती है।

ग. कथानक के विकास की............................. स्थितियाँ मानी गई है।

घ. शैली का अर्थ है............................ ।

(7) कहानी के तत्वों को बताइए।

(8) कथाकार और समीक्षक बटरोही द्वारा कहानी के तत्व को परिभाषित किजिए।

(9) 'कथा-तत्व' किसे कहते है?

4.5 कहानी के भेद

कहानी के बारे में ऊपर दिये गये परिचय से यह तो आप जान गये होंगे कि कहानी में कुछ ऐसे तत्व होते हैं, जो प्रायः सभी कहानियों में मिलेंगे। किन्तु यह भी सच है कि सभी तत्व समान रूप से नहीं होते। किसी में विषय वस्तु की प्रधानता होती है तो किसी में पात्र यानी चरित्रों को प्रधानता दी जाती है। कहीं वातावरण प्रमुख होता है तो कहीं भाव महत्वपूर्ण हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कहानी में विभिन्न तत्वों की प्रधानता के कई रूप मिलते हैं। तत्वों के इन्ही रूपों के आधार पर कहानियों के कई भेद किये जा सकते हैं। अपनी विकास-यात्रा में हिन्दी

कहानी अनेक स्वरूपों और शैलियों में व्यक्त हुई है। आगे हम कहानी के इन भेदों का अध्ययन करेंगे।

4.5.1 घटनाप्रधान कहानी

जिन कहानियों में क्रमशः अनेक घटनाओं को एक सूत्र में पिरोते हुए कथानक का विकास किया जाता है अथवा किसी दैवीय घटना और संयोग का विशेष सहारा लिया जाता है, उन्हें घटना प्रधान कहानी कहा जाता है। स्थूल आर्दशवादी कहानियाँ, जासूसी, रहस्यपूर्ण, तिलस्मी एवं अद्भुत् कहानियाँ प्रायः इसी प्रकार की होती हैं। इसमें सूक्ष्म भावों की अभिव्यंजना पर बल नहीं होता बल्कि मनोरंजन पर बल रहता है। ऐसी कहानियाँ कला की दृष्टि से प्रायः साधारण कोटि की मानी जाती हैं।

4. 5.2 चरित्र-प्रधान कहानी

जिन कहानियों में चरित्र-चित्रण की प्रधानता होती है वे चरित्र प्रधान कहानियों के वर्ग में आती हैं। चरित्र प्रधान कहानियों में लेखक का ध्यान पाठकों को घटनाओं के विस्तार में न उलझाकर कहानी के पात्रों के चरित्र-निरूपण की ओर रहता है। इन कहानियों का मुख्य धरातल मनोविज्ञान होता है। चरित्र-प्रधान कहानियाँ घटनाओं को छोड़कर पात्र के चरित्र और मनोवृत्ति अर्थात् मनुष्य के भीतर की भावनाओं, संवेदनाओं, विचारों एवं क्रिया-प्रतिक्रियाओं को बहुत ही सूक्ष्म ढंग से व्यक्त करती है। इनमें व्यक्ति के अन्तर्मन का चित्रण हुआ है। इस आधार पर हम कह सकते है कि चरित्र प्रधान कहानियों में पात्रों के माध्यम से व्यक्ति के भीतर पनप रही आत्म-पीड़ा, दया, खुशी, प्रेम, ईर्ष्या, संकोच, संघर्ष, सहानुभूति एवं महत्त्वाकांक्षा इत्यादि अत्यन्त सूक्ष्म भावों को व्यक्त किया जाता है। मूलतः इन कहानियों में पात्रों के मनोगत भावों और मानसिक संघर्षो को महत्व मिला हैं।

4. 5.3 वातावरण प्रधान कहानी

इन कहानियों में वातावरण अर्थात् परिवेश को महत्त्व दिया जाता है। क्योंकि कहानी केवल कल्पना न होकर जीवन परक है और जीवन हमेशा वातावरण से युक्त होता है। हमारे प्रतिदिन के कार्यो और व्यवहारों में किसी न किसी रूप से आस-पास का माहौल या परिवेश का प्रभाव होता है। विशेषतः ऐतिहासिक कहानियों में वातावरण अधिक महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि वहाँ किसी युग विशेष का, उस युग की संस्कृति, सभ्यता आदि का वर्णन करना होता है। प्राकृतिक परिवेश, संवाद, संगीत, भाषा आदि की सहायता से वातावरण को जीवंत बनाया जाता है। प्रेमचन्द की 'पूस की रात', 'गुल्ली-डण्डा' प्रसाद की 'बिसाती', 'बनजारा', 'देवरथ', 'आकाशदीप' में यह तत्व पूर्ण रूप से चरितार्थ हुआ है।

4. 5.4 भाव प्रधान कहानी

इससे पहले आपने चरित्र और वातावरण प्रधान कहानियों की विशेषताओं को पढ़ा है। भाव प्रधान कहानी प्रायः चरित्र और वातावरण को प्रमुखता देने वाली कहानियों की तरह ही होती है। यह कह सकते हैं कि इन दोनों प्रकार की कहानियों के बीच में भाव-प्रधान कहानियाँ आती है क्योंकि इनमें केवल किसी एक भाव या विचार को आधार बनाकर समूचा कथानक निर्मित होता है और उसी के आधार से समूची कहानी अपनी एक लय के साथ निर्मित होती है। ऐसी कहानियों में एक भावना को मुख्य रखकर पात्र और वातावरण को गौण रखा जाता है। जैसे जैनेन्द्र की 'नीलम देश का राजकन्या' 'अज्ञेय' की 'कोठरी की बात' और टैगोर की 'भूखा पत्थर' उल्लेखनीय है। भाव प्रधान कहानियाँ प्रायः प्रतीकवादी कहानियों का रूप धारण कर लेती है, क्योंकि ये कहानियाँ अपने भाव-चित्रों में प्रतीकों का सहारा लेकर मानसिक चित्रों और आन्तरिक सौन्दर्य के सत्य को 'साकार' रूप देने में सफल होती है।

4. 5.5 मनोविश्लेषणात्मक कहानी

हिन्दी में मनोविश्लेषणात्मक कहानियों का सफल आरम्भ जैनेन्द्र कुमार से हुआ। मनोवैज्ञानिक कहानियों के विकासक्रम में ही मनोविश्लेषणात्मक कहानियाँ आती हैं। इन कहानियों में घटनाओं और कार्यों की अपेक्षा मानसिक ऊहापोह और मनोविश्लेषण को प्रमुखता दी जाती है। इन कहानियों में विद्रोह, पाप और अपराध के विश्लेषण हुए तथा पापी, विरोधी और अपराधी के प्रति करुणा, सहानुभूति और दया की भावना लायी गयी तथा स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों पर मौलिक ढ़ग से विचार हुए। इन कहानियों में अपूर्व ढ़ग से और एक नये दृष्टिकोण से सामाजिक मूल्यों और प्रश्नों को देखा एंव परिभाषित किया गया। जैनेन्द की कहानी 'क्या हो', 'एक रात', 'ग्रामोफोन का रिकार्ड', इलाचन्द्र जोशी की 'मैं', 'अज्ञेय' की 'अमरवल्लरी', 'विपथगा', 'साँप', 'कोठरी की बात' इसी प्रकार की कहानियॅा हैं।

4. 5.6 शैलीगत भेद

शैली तत्व कहानी कला की वह रीति है जो इसके अन्य तत्वों का अपने विधान में उपयोग करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि शैली के अन्तर्गत कहानी-कला निर्माण की विभिन्न प्रणालियाँ एवं अभिव्यक्ति के तत्व आते हैं जिसके प्रयोग से कहानीकार अपने भावों को मूर्त करता है। कहानियों के शैलीगत वर्गीकरण में वर्तमान युग में कहानी लेखन की अनेक शैलियाँ दिखाई दे रही है। यों तो अधिकतर कहानी वर्णनात्मक शैली में लिखी जाती है, किन्तु ऐतिहासिक, आत्मकथात्मक, संवादात्मक और पत्रात्मक शैली भी विकसित हैं। कुछ लेखकों ने अब डायरी शैली में भी कहानियाँ लिखी है। इसके अतिरिक्त रेखाचित्रों और संस्मरणों के रूप में भी कहानियों की रचना की जाती है।

ऐतिहासिक शैली- इसके अन्तर्गत कहानीकार तटस्थ होकर कथावाचक के रूप में कहानी की रचना करता है जो पूर्णताः वर्णन पर आधारित होती है। वर्णनात्मक शैली इसी के अन्तर्गत आती है। कहानी का सूत्रधार कहानीकार होता है और नायक 'वह' यानी अन्य पुरुष ही होता है। स्थान-स्थान पर बौद्धिक विवेचन, भावात्मक वर्णन और विश्लेषण आदि को भी स्थान मिलता है।

आत्मकथात्मक शैली- इस शैली में कहानीकार या कहानी का कोई पात्र 'मै' अर्थात् 'स्वयं' के आधार पर आत्मकथा के रूप में पूरी कहानी कहता है। इलाचन्द जोशी की 'दीवाली और होली', सुदर्शन की 'कवि की स्त्री' और 'अज्ञेय' की 'मंसो' इसी प्रकार की कहानी है।

पत्रात्मक शैली- कहानीकार जब पत्रों के माध्यम से कहानी की रचना करता है तो वह पत्रात्मक शैली कहलाती है। प्रभाव की दृष्टि से यह शैली अधिक प्रचलित और विकसित नहीं है।

डायरी शैली- यह शैली पत्र शैली के अधिक निकट है। इसमें डायरी के विभिन्न पृष्ठों द्वारा सम्पूर्ण कहानी कही जाती है। इस शैली में भूतकाल का चित्रण सजीवता से किया जाता है।

इनके अतिरिक्त कतिपय विद्वानों ने विषय की दृष्टि से कहानियों के अन्य भेद माने हैं जिनमें साहसिक, रोमांसिक, जासूसी, ऐतिहासिक और सामाजिक सम्मिलित हैं। अधिकाशंतः इन्हें घटनाप्रधान कहानियों की श्रेणी में रखते हैं।

अभ्यास प्रश्न

अब आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तर को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलाकर देखिए कि आपका उत्तर सही है या नहीं।

(10) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

क. जासूसी एवं तिलिस्म कहानियाँ .... हैं।
ख. जिन कहानियों में चरित्र-चित्रण की प्रधानता होती है वे ....कहानियाँ कहलाती हैं।
ग. विशेषतः ....कहानियों में वातावरण अधिक महत्वपूर्ण होता है।
घ. भाव प्रधान कहानियाँ प्रायः .... कहानियों का रूप धारण कर लेती है।

(11) निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए।

क) कहानी के शैलीगत भेद।
ख) भावप्रधान कहानी।

(12) कहानी के प्रमुख भेदों का वर्णन कीजिए। उत्तर लगभग दस पंक्तियों में लिखिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

4.6 सारांश

कहानी कथा साहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा है तथा यह अंग्रेजी में 'शार्ट स्टोरी', बंगला में गल्प और हिन्दी में कहानी के नाम से प्रचलित है। लघु कहानी और लम्बी कहानी कहानी के अन्य रूप हैं।

- इस इकाई को पढ़ने के बाद आप कहानी का अर्थ और परिभाषा बता सकते हैं।
- कहानी की विशेषता में प्रभावान्विति, कौतूहल, संक्षिप्तता इत्यादि आते हैं। अब आप कहानी में उन गुणों के महत्त्व का उल्लेख कर सकेंगे।
- कहानी के परम्परागत छः तत्त्व कथानक, पात्र या चरित्र-चित्रण, कथोपकथन या संवाद, देशकाल या वातावरण, भाषा शैली एंव उद्देश्य होते हैं।
- अब आप कहानी के विभिन्न भेदों की विशेषता भी बता सकते हैं। विषय वस्तु और शैलीगत रूप में हिन्दी कहानी के घटना प्रधान, चरित्र प्रधान, वातावरण प्रधान, भाव प्रधान, पत्रात्मक, डायरी शैली इत्यादि प्रकार के भेद होते हैं।

4.7 शब्दावली

अविस्मरणीय - याद रखने योग्य

विस्मरणीय- जो याद रखने योग्य नहीं हो, किन्तु 'अ' उपसर्ग से बनकर इसका अर्थ हुआ जिसे भुलाया न जा सके।

गौण - द्वितीय वर्ग का अर्थात् जो मुख्य के बाद आये।
संप्रेषणता - अपनी बात दूसरों तक पहुँचाना।
तार्किक - सटीक बात कहना।
पत्रात्मक -पत्र के रूप या आधार पर व्यक्त करना।
कौतूहल - किसी नये या अज्ञात विषय को जानने-सुनने या देखने का उत्साह।
संक्षिप्तता - थोड़े या कम शब्दों में अपनी बात कहना।
आत्मकथात्मक - स्वयं की कथा कहना।
संवादात्मक - दो लोगों के बीच बातचीत का रूप ।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) (अ)

क) गलत ख) सही ग) गलत घ) सही

ड़) गलत च)गलत छ) सही

(1) (ब)

(क) सदल मिश्र (ख) बंग महिला

(ग) सैयद इंशा अल्ला खां (घ) रामचन्द्र शुक्ल।

(2) 'कहानी' शब्द अंग्रेजी के 'शॉर्ट स्टोरी' का समानार्थी है। कहानी का शाब्दिक अर्थ है- "कहना'', इसी रूप में संस्कृत की 'कथ' धातु से कथा शब्द बना, जिसका अर्थ भी कहने के लिए प्रयुक्त होता है।

(3) अपने उत्तर को 4.2.2 में दी गयी परिभाषा से मिलाइए।

(4) अपने उत्तर को 4.2.3 में दी गयी विशेषताओं से मिलाइए।

(5) अपने उत्तर को 4.2.1 में दी गयी परिभाषा से मिलाइए।

(6) क) परिणाम ख) लक्ष्य विशेष ग) चार घ) कथन पद्धति

(7) (1) कथानक (2) पात्र अथवा चरित्र-चित्रण
(3) संवाद (4) वातावरण
(5) शैली एवं (6) उद्देश्य।

(8) अपने उत्तर को 4.3 में दी गयी परिभाषा से मिलाइए।

(9) घटनाओं, क्रिया-व्यापारों और चरित्रों के माध्यम से किसी एक संवेदना को जगाने के लिए अपनाया गया कथा-परिवेश।

(10) क) घटना प्रधान ख) चरित्र प्रधान

ग) ऐतिहासिक घ) प्रतीकवादी

(11) अपने उत्तर को 4.4 में दिए गए भेद से मिलाइए।

(12) अपने उत्तर को 4.4 में दिए गए भेद से मिलाइए।

4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1- वर्मा, धीरेन्द्र, संपा0, हिन्दी साहित्य कोश (भाग 1) (2000) ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी।
2- ठाकुर, देवेश, (1977) हिन्दी कहानी का विकास, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।
3- मोहन, सविता, (1990) समकालीन कहानी कथ्य एवं शिल्प, ग्रन्थायन, अलीगढ़।
4- संपा0 बटरोही, हिन्दी कहानी नौ कदम, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा।
5- संपा0 हरिमोहन, (2002) ग्यारह कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
6- शर्मा, राजनाथ, (1987, 20 संस्करण) साहित्यिक निबंघ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
7- गुप्त, सुरेशचन्द्र,''कहानी का स्वरूप'', आदर्श हिन्दी निबन्ध (1967) यंग मैन एण्ड कम्पनी, दिल्ली-6।
8- बटरोही, कहानीः रचना-प्रक्रिया और स्वरूप, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली।
9- टण्डन, नीरजा, ढैला निर्मला संपा0- कहानी सप्तक, (1995) श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा।
10-राय, बाबू गुलाब, (2007, 51 संस्करण) हिन्दी साहित्य का इतिहास, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. कहानी के तत्वों पर प्रकाश डालिए।
2. कहानी के प्रमुख भेदों को विस्तार से विवेचित कीजिए।

इकाई 5 उपन्यास का स्वरूप, भेद व तत्व

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 उपन्यास का स्वरूप

  5.3.1 अर्थ और परिभाषा

  5.3.2 उपन्यास की विशेषता

5.4 उपन्यास के तत्व

  5.4.1 कथावस्तु

  5.4.2 पात्र अथवा चरित्र-चित्रण

  5.4.3 संवाद

  5.4.4 वातावरण

  5.4.5 भाषा-शैली

  5.4.6 उद्देश्य

5.5 उपन्यास के भेद

  5.5.1 घटनाप्रधान उपन्यास

  5.5.2 चरित्रप्रधान उपन्यास

  5.5.3 ऐतिहासिक उपन्यास

  5.5.4 सामाजिक उपन्यास

  5.5.5 मनोवैज्ञानिक उपन्यास

  5.5.6 आंचलिक उपन्यास

5.6 सारांश

5.7 शब्दावली

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

पाठ्यक्रम के निर्धारित उपन्यास को पढ़ने से पूर्व आपको उपन्यास के स्वरूप, भेद और तत्वों से परिचित होना आवश्यक है। पिछली इकाई में आप कथा-साहित्य के रूपों से परिचित हो चुके हैं। कहानी की तरह उपन्यास भी वर्तमान साहित्य की सबसे सशक्त विधा है। यद्यपि यह सच है कि हिन्दी साहित्य में उपन्यास का आविर्भाव देर से (भारतेन्दु काल) और पश्चिम के आधार पर हुआ। प्रारम्भिक उपन्यासों में अपेक्षित परिपक्वता नहीं थी किन्तु बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में तथा इक्कीसवीं शदी के प्रारम्भिक दशक में उपन्यास ने पूर्णता हासिल कर ली।

इस लम्बी यात्रा में उपन्यास ने कई मोड़ लिए हैं। एक समय था जब पाठक केवल कल्पना लोक की भूल भुलैया वाले उपन्यास को पढ़कर सन्तुष्ट होता था परन्तु आज उपन्यास की घटनाएं और पात्र इतने वास्तविक होते हैं कि हम उनकी सजीवता और यर्थाथता अपने परिवेश में अनुभव ही नहीं करते हैं, वरन् उनको अपने आस-पास पाते हैं।

हिन्दी में मौलिक उपन्यासों की रचना आरम्भ होने से पहले बंगला-उपन्यासों के अनुवादों को लोकप्रियता मिल चुकी थी। हिन्दी के भारतेन्दु युगीन मौलिक उपन्यासों पर संस्कृत के कथा साहित्य, परवर्ती नाटक साहित्य, बंगला उपन्यासों के साथ-साथ ही पाश्चात्य उपन्यासों की छाप भी स्पष्ट दिखाई देती है। किन्तु प्रेमचन्द-पूर्व के उपन्यासकार पश्चिमी उपन्यासों की मूल छवियों से परिचित नहीं हो सके थे। उन्होंने उपन्यास को मनोरंजन अथवा समाज सुधार का साधन मान लिया था। इसीलिए तत्कालीन उपन्यास उपदेश प्रधान, कृत्रिम प्रसंगों, रोमानी और जासूसी-ऐयारी के किस्सों से परिपूर्ण हैं।

हिन्दी उपन्यास की आधुनिक विकास यात्रा का प्रारम्भ श्रीनिवास दास के उपन्यास 'परीक्षागुरू'(1882) से माना जाता है। यह विदेशी ढंग का पहला उपन्यास था लेकिन इसमें भारतीय परंपरा का सुदृढ़ आधार भी था। यह परम्परा आगे चलकर द्विवेदी युग में अधिक पुष्ट एवं विकसित हुई। इस युग के सामाजिक उपन्यासों में 'भाग्यवती' और 'परीक्षागुरु' के अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट की 'सौ अजान एक सुजान', राधाकृष्ण दास के 'निस्सहाय हिन्दू' लज्जाराम शर्मा के 'धूर्त रसिकलाल' इत्यादि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी उपन्यासों का लक्ष्य समाज की कुरीतियों को सामने लाकर उनका विरोध करना और आदर्श परिवार एवं समाज की रचना का सन्देश देना है।

आधुनिक युगीन उपन्यासों में समष्टिवादी प्रवृत्तियों पर व्यक्तिवादी दृष्टिकोण हावी होने लगा। वस्तुतः अपने लचीले और बंधन-मुक्त रूप-विधान के कारण उपन्यास में मानव जीवन का सहज और विस्तृत चित्रण को महत्व दिया जाने लगा। आज के उपन्यासों में मुख्यतः मानवीय जीवन के रहस्यों, मानसिक संघर्षो एवं भावनाओं की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति होती है। आगे हम आपको उपन्यास के बारे में अधिक विस्तार से अध्ययन करेंगे।

5.2 उद्‌देश्य

इस खण्ड में आप कथा-साहित्य का अध्ययन कर रहे हैं। इस इकाई में हम आपको उपन्यास के स्वरूप, भेद और तत्वों से परिचित करायेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- उपन्यास की रचनागत विशिष्टता को बता सकेगें।
- उपन्यास के स्वरूप, अर्थ एवं परिभाषा और विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- उपन्यास के तत्वों और भेद को समझ सकेगें।
- साहित्य और समाज के सम्बन्ध को मजबूती देने में उपन्यास की महत्व बता सकेंगे।

5.3 उपन्यास का स्वरूप

उपन्यास का मुख्य स्रोत अति प्राचीन काल से चली आई रही कथा-कहानियॉं हैं। जिसका जन्म मनुष्य की कौतुहल वृत्ति एवं मनोरंजन वृत्ति को शान्त करने के लिए हुआ है। वर्तमान में यद्यपि बौद्धिकता ने मनुष्य की कौतूहल वृत्ति को कम किया है। अतः आज वे ही कथा-कहानियां समाज में प्रचलित है जिनके पीछे बौद्धिक धरातल है। उपन्यास मनुष्य के विकास के साथ-साथ विकसित होने वाली कथा परम्परा का एक सुगठित रूप है। मानव मन की अतल गहराई से लेकर उसकी समस्त सांसारिक दृष्यमान ऊँचाई, विस्तार एवं अन्य क्रिया क्लाप उपन्यास के क्षेत्र में समाहित हैं।

वास्तविकता का प्रतिपादन नाटक और गीत भी करते हैं, परन्तु उपन्यास अधिक विस्तृत, गहन एवं पैना होता है। उपन्यास जीवन के लघुतम और साधारणतम् तथ्यों को भी पूर्ण स्वच्छन्दता तथा स्पटता के साथ प्रस्तुत करता है। उपन्यास मानव की सर्वतोन्मुखी स्वतन्त्रता की उद्घोषक विधा है। आज का जीवन गायन-नर्तन और सम्मोहन का नहीं है। अब अतीत की गौरव गाथा की अपना महत्त्व खो चुकी है। अतः उनसे अब लिपटे रहना और जीवन की प्रत्येक प्रेरणा उनमें देखना स्वयं को अन्धकार में रखने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। आज के जीवन के सूत्र है- यथार्थता, स्पष्टता, ध्रुवता, मांसलता, बौद्धिकता और स्तरीय निर्बन्धता। इन तत्वों के सार से ही उपन्यास का स्परूप् गठित हुआ है।

उपन्यास में प्रायः हमारा वह अति समीपी और आन्तरिक जीवन चित्रित होता हैं जो हमारा होते हुए भी प्रायः हमारा नहीं है। उपन्यास वर्तमान युग की लोकप्रिय साहित्यिक विधा है। आज की युग चेतना इतनी गुफित और असाधारण हो गई हैं, कि इसे साहित्य के किसी अन्य रूप में इतने आकर्षक और सहज रूप में प्रस्तुत करना दुष्कर है। उसे उपन्यास पूरी सम्भावना

और सजीवता के साथ उपस्थित करता है। इसलिये अनेक विद्वानों ने उपन्यासों को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा है।

5.3.1 उपन्यास का अर्थ और परिभाषा

अर्थ - उपन्यास शब्द उप-समीप तथा न्यास-थाती के योग से बना है, जिसका अर्थ है (मनुष्य के) निकट रखी वस्तु। अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि हमारी ही हैं, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब हैं, 'उपन्यास' है। 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग प्राचीन संस्कृत साहित्य में भी मिलता है। संस्कृत लक्षण ग्रन्थों में इस शब्द का प्रयोग नाटक की संधियों के उपभेद के लिए हुआ था। इसकी दो प्रकार से व्याख्या की गई है -"उपन्यासः प्रसादन"- अर्थात प्रसन्न करने को 'उपन्यास' कहते हैं। दूसरी व्याख्या के अनुसार -" उपपत्तिक्रतोहार्थ उपन्यासः संकीर्तितः"- अर्थात् किसी अर्थ को युक्तियुक्त रूप से उपस्थित करना 'उपन्यास' कहलाता हैं। किन्तु आज जिस अर्थ में ग्रहण किया जाता है, वह मूल 'उपन्यास' शब्द से पूर्णतः भिन्न हैं।

हिन्दी साहित्य में 'उपन्यास' नवीनतम् विधाओं में से एक है। अंग्रेजी में जिसे 'नॉवेल' कहते हैं। 'नॉवेल' शब्द नवीन और लघु गद्य कथा दोनों अर्थो में प्रयुक्त होता रहा, किन्तु अठारहवी शताब्दी के पश्चात् साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। गुजराती में 'नवलकथा' मराठी में 'कादम्बरी' और बँगला के सदृश ही हिन्दी में यह विधा 'उपन्यास' नाम से प्रचलित है। इतालवी भाषा में 'नॉवेल' शब्द 'लघुकथा' के लिए प्रयुक्त होता है। जो नवीनतम् का द्योतन तो कराता ही है साथ ही इस तथ्य को भी घोषित करता है कि उसका सम्बन्ध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वर्तमान जीवन से है।

परिभाषा - हम पहले ही बता चुके हैं कि कहानी पश्चिम से आई विधा है। कहानी की भॉंति आधुनिक उपन्यास भी पाश्चात्य साहित्य का कलेवर लेकर आया है। तो यहाँ भारतीय एवं पश्चिमी विद्वानों की कतिपय परिभाषाओं को लिया जा सकता है।

भारतीय विचारक - आधुनिक युग में जिस साहित्य विशेष के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है उसकी प्रकृति को स्पष्ट करने यह शब्द सर्वथा समर्थ है। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द के शब्दों में-''मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।''

हजारी प्रसाद द्विवेद्वी जी उपन्यास की परिभाषा देते हुए कहते हैं- "उपन्यास आधुनिक युग की देन है। नये उपन्यास केवल कथामात्र नही है यह आधुनिक वैयक्तितावादी दृष्टिकोण का परिणाम है। इसमें लेखक अपना एक निश्चित मत प्रकट करता है और कथा को इस प्रकार सजाता है कि पाठक अनायास ही उसके उद्देश्य को ग्रहण कर सकें और उससे प्रभावित हो सकें।"

डॉ श्याम सुन्दर दास के शब्दों में- ‘‘उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।’’

डा0 भागीरथ मिश्र- ‘‘युग की गतिशील पृष्ठभूमि पर सहज शैली में स्वाभाविक जीवन की पूर्ण व्यापक झाँकी प्रस्तुत करने वाला गद्य मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा हैं।’’

पाश्चात्य विचारक - उपन्यास के सन्दर्भ में किसी निर्ष्कष में पहुँचने से पूर्ण कतिपय पाश्चात्य विद्वानों की एतत् सम्बन्धी धारणा की प्रस्तुति नितान्त आवश्यक हैं।

राल्फ फॉक्स के अनुसार- ‘‘उपन्यास केवल काल्पनिक गद्य नहीं है, यह मानव जीवन का गद्य हैं।’’ फील्डिंग के अनुसार- ’’ उपन्यास एक मनोरंजन पूर्ण गद्य महाकाव्य है।’’

बेकर ने कहा है कि ‘‘उपन्यास वह रचना है जिसमें किसी कल्पित गद्य कथा के द्वारा मानव जीवन की व्याख्या की गयी हो।’’

प्रिस्टले का मत- ‘‘उपन्यास गद्य में लिखी कथा है जिसमें प्रधानतः काल्पनिक पात्र और घटनाएँ रहती है। यह जीवन का अत्यन्त विस्तृत और विशद दपर्ण है और साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में इसका क्षेत्र व्यापक होता है। उपन्यास को हम ऐसे कथानक के रूप में ले सकते है जो सरल और शुद्ध अथवा किसी जीवन-दर्शन का माध्यम हो।’’

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर का जा सकता है कि उपन्यास आधुनिक युग का अति समादृत साहित्य रूप है। उपन्यास की शैली की स्वाभाविकता उसकी रोचकता बनाये रखने में सहायक होती है। उपन्यास में उपन्यासकार का निजी जीवन दर्शन प्रतिबिम्बित होता है। लेखक की जीवन और जगत की अनुभूति जितनी व्यापक और गहरी होगी उसका औपन्यासिक वर्णन भी उतना ही व्यापक और गम्भीर होगा।

5.3.2 उपन्यास की विषेशताएँ

ऊपर आप उपन्यास के स्वरूप और अर्थ को समझ चुके है। अब हम संक्षेप में ‘उपन्यास’ की विषेशताओं को जानेंगे। विद्वानों ने उपन्यास में निम्नलिखित तथ्यों को प्रस्तुत किया है -

1- उपन्यास यर्थाथ जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति हैं। यर्थाथ से तात्पर्य है कि जीवन जैसा दीखता या अनुभव होता है। इस जाने-पहचाने जीवन के अनुभव को कल्पित घटनाओं तथा पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार रूपायित करता है। यह रूपायन कल्पित होते हुए भी मूलतः यर्थाथ है।

2- उपन्यास का मूल तत्व मानव चरित्र हैं। इसमें मनुष्य के चरित्र का बाह्य पक्ष या आचरण पक्ष तो प्रस्तुत होता ही हैं, साथ ही उसके मन की विभिन्न स्थितियों का उद्घाटन भी होता है।

3- उपन्यासकार जीवन की कथा कहकर पाठकों की उत्सुकता जगाता है। बाद में उसी जिज्ञासा का शमन मानव चरित्र के आन्तरिक उद्घाटन तथा परिस्थितियों को प्रकाश में लाकर करता है। इस प्रकार सरस कथा होते हुए भी वह जीवन का गहन गंभीर विश्लेषण करता हैं।

4- उपन्यासकार अपने समकालीन जीवन को दृष्टि में रखकर उसके आधार पर उपन्यास में प्रस्तुत जीवन की व्याख्या और विश्लेषण करता है।

अभ्यास प्रश्न

अब तब आपने इस इकाई में उपन्यास के स्वरूप, अर्थ, परिभाषा और उसकी विशेषताओं का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तर को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलाकर देखिए कि आपका उत्तर सही है या नहीं।

1- नीचे कुछ कथन दिये गये हैं, वे सही है या गलत। बताइए।

क) उपन्यासों को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा हैं।

ख) उपन्यास यथार्थ जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति है।

ग) अंग्रेजी 'नॉवेल' और गुजराती 'नवलकथा' ही उपन्यास है।

घ) उपन्यास का मूल तत्व मानव चरित्र नहीं हैं।

2- उपन्यास से आप क्या समझते हैं। उत्तर तीन पंक्ति में दीजिए।

....
....
....

3- उपन्यास के सन्दर्भ में दो-दो भारतीय एवं पश्चिमी विद्वानों के विचारों को लिखिए।

4- एक आदर्श उपन्यास की तीन विशेषताओं को लिखिए।

5.4 उपन्यास के तत्व

अभी तक आपने उपन्यास के स्वरूप और उसकी विषेशताओं को समझा है। मूल्यांकन की दृष्टि से उपन्यास के कुछ तत्व निर्धारित किये गये है। तत्त्वों की दृष्टि से विद्वानों ने उपन्यास के छह तत्त्व माने हैं-

5.4.1 कथानक

किसी उपन्यास की मूल कहानी को कथावस्तु कहा जाता है। कथावस्तु तत्व उपन्यास का अनिवार्य तत्व हैं। कथा साहित्य में घटनाओं के संगठन को कथावस्तु या कथानक की संज्ञा दी जाती है। जीवन में अनेक प्रकार की घटनाएँ घटती रहती है। उपन्यासकार अपने उद्देश्य के अनुसार उनमें एक प्रकार की एकता लाता है और अपनी कल्पना के सहारे इन कथानकों की कल्पना की जाती है।

कथासूत्र, मुख्य कथानक, प्रासंगिक कथाएँ या अन्तर्कथाएँ, उपकथानक, पत्र, समाचार, लेख तथा डायरी के पन्ने आदि कथानक के उपकरण या संसाधन हैं। जिनका उपन्यासकार अपनी आवश्यकता अनुसार उपयोग करता हैं। अनावश्यक घटनाओं का समावेश कथावस्तु को शिथिल, विकृत और सारहीन बना देता हैं। अतः इस घटना का उदय, विकास और अन्त व्यवस्थित और निश्चित होता हैं। उपन्यास में घटनाक्रम में एकता और संगठन अनिवार्य है यदि इनमें से एक को भी अलग किया तो मूल कथा बिखरी प्रतीत होती है। परन्तु आज के नवीन उपन्यासकारों का मानना है कि सांसारिक जीवन में घटने वाली घटनाओं का कोई भी क्रम नहीं होता, जीवन में घटनाएँ असंबद्ध होकर घटती है इसलिए घटनाओं के प्रवाह को पकड़ा नहीं जा सकता।

इस विचार से प्रभावित हिन्दी उपन्यासकार उपेन्दनाथ ‘अश्क’ का ‘गर्म राख’ लक्ष्मीकान्त वर्मा का ‘खाली कुर्सी की आत्मकथा’, डा0 धर्मवीर भारती का ‘सूरज का सातवाँ घोड़ा’ आदि अनेक उपन्यासों के सामने यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि इनमें घटनाओं का क्रम क्या हो? कथानक का चुनाव इतिहास, पुराण, जीवनी, आदि कहीं से भी किया जा सकता है। आज जीवन से सम्बन्धित कथानक को ही अधिक महत्त्व दिया जाता, क्योंकि उसमें हमारे दैनिक जीवन की स्वाभाविकता रहती हैं। जीवन की विविध अवस्थाओं का चित्रण, विभिन्न पक्षों का मूल्यांकन एवं मानवीय अनुभूतियों की पूर्ण अभिव्यक्ति कथानक का गुण हैं। उपन्यास में कथानक को प्रस्तुत करने के तीन ढंग प्रचलित हैं-(1) लेखक तटस्थ दर्शक की भाँति उसका वर्णन करता है। (2) कथावस्तु मुख्य या गौण पात्रों से कहलाई जाती है। (3) पात्रों की श्रृखंला के रूप में उसका वर्णन होता है। संक्षेप में कह सकते है कि- रोचकता, स्वाभाविकता तथा प्रवाह कथावस्तु के आवश्यक गुण हैं।

5.4.2 चरित्र-चित्रण और पात्र

कथानक तत्व के पश्चात् उपन्यास का द्वितीय महत्त्वपूर्ण तत्व चरित्र-चित्रण अथवा पात्र योजना है। जैसा कि अब आप जानते है, उपन्यास का मूल विषय मानव और उसका जीवन होता है। अतः पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार सजीवता, सत्यता और स्वभाविकता के साथ जीवन के इन पहलूओं को समाज के समक्ष रखता है। यो तो उपन्यास के सभी तत्व अपना-अपना

अलग महत्त्व रखते हैं परन्तु कथानक और पात्र एक-दूसरे की सफलता के लिए अधिक निकट होते हैं। इसलिए इनका पारस्परिक संतुलन अनिवार्य हो जाता है। कथावस्तु के अनुरूप पात्र का चयन होना आवश्यक हैं। इतना ही नहीं वह जिस वर्ग के पात्र का चयन करता है, उसके आंतरिक और बाह्य व्यक्तित्व की सामान्य और सूक्ष्म विषेशताओं, उसकी आकृति, वेशभूषा, वार्तालाप और भाषा-शैली आदि कथावस्तु के अनुरूप होना आवश्यक हैं। अन्यथा दोनों का विरोध रचना को असफल कर देता हैं। इस युग में पात्र सम्बन्धी प्राचीन और नवीन धारणा में पर्याप्त अन्तर आया है। पहले मुख्य पात्र नायक और नायिका पर विशेष बल दिया जाता था। आज अन्य पात्रों को भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसका कारण मनोविज्ञान का क्रान्तिकारी अन्वेषण है।

आज पात्रों के बाहरी और भीतरी व्यक्तित्व का मनावैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है जिससे उनके चरित्र में अधिक स्वाभाविकता और यथार्थता आ जाती हैं। इसके अतिरिक्त आज पात्रों को कठपुतली बनाकर नहीं बल्कि उन्हें स्वतन्त्र व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। पात्रों के चार प्रकार हैं- (1) वर्ग-विशेष के प्रतिनिधि (टाइप) (2) विशिष्ट व्यक्तित्व वाले (3) आर्दशवादी (4) यथार्थवादी। इसे इस प्रकार समझ सकते हैं : प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान' का 'होरी' पहले प्रकार का पात्र है क्योंकि वह एक विशेष वर्ग को दर्शा रहा है। जबकि 'अज्ञेय' के उपन्यास 'शेखर एक जीवन' का शेखर दूसरे प्रकार का पात्र यानि विशिष्टता लिए हुए है। आज वही उपन्यास श्रेष्ठ माने जाते हैं, जिनके पात्र जीवन की यर्थाथ स्थिति का संवेदनशील और प्रभावपूर्ण प्रस्तुतीकरण करते हैं।

5.4.3 कथोपकथन

उपन्यास में यह कथावस्तु के विकास तथा पात्रों के चरित्र-चित्रण में सहायक होता है। इससे कथावस्तु में नाटकीयता और सजीवता आ जाती है। पात्रों की आन्तरिक मनोवृत्तियों के स्पष्टीकरण में भी यह सहायक होता है। इसका विधान पात्रों के चरित्र, स्वभाव, देश, स्थिति, शिक्षा, अशिक्षा, आदि के अनुसार होना चाहिए। पात्रों के वार्तालाप में स्वाभाविकता का होना अत्यन्त आवश्यक हैं।

5.4.4 देशकाल वातावरण

पात्रों के चित्रण को पूर्णता और स्वाभाविकता देने के लिए देशकाल या वातावरण का ध्यान रखना जरूरी है। घटना का स्थान समय, तत्कालीन विभिन्न परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान उपन्यासकार के लिए आवश्यक है। ऐतिहासिक उपन्यासों का तो यह प्राण तत्व है। उदाहरणार्थ यदि कोई लेखक चन्द्रगुप्त और चाणक्य को सूट-बूट में चित्रित करे तो उसकी मूर्खता और ऐतिहासिक अज्ञानता का परिचय होगा और रचना हास्यास्पद हो जाऐगी। देशकाल-वातावरण

का वर्णन सन्तुलित होना चाहिए, जहाँ तक वह कथा-प्रभाव में आवश्यक हो तथा पाठक को वह काल्पनिक न होकर यर्थाथ लगे। अनावश्यक अंशों की प्रधानता नहीं होनी चाहिए।

5.4.5 भाषा- शैली

उपन्यास को अपने भाव एवं विचारों को व्यक्त करने के लिए सरस और सरल भाषा शैली का प्रयोग करना चाहिए। सम्पूर्ण उपन्यास की रचना-शैली एक सी है। प्रारम्भिक सभी उपन्यास रूढ़िगत शैली में ही लिखे गये। तृतीय पुरूष के रूप में वर्णनात्मक शैली ही का प्रयोग प्रायः अधिकांश उपन्यासों में किया गया है।

बाद में कलात्मक प्रयोगों के फलस्वरूप उपन्यासों में जब विकास हुआ तो सबसे अधिक प्रयोग शैली में उपन्यास लिखे गये। किन्तु धीरे-धीरे कथावस्तु में परिवर्तन से आधुनिक साहित्य की नव विधाओं में शैली तत्व का महत्त्व अधिक होने लगा, और सामान्य रूप से कथा शैली-जैसे प्रेमचन्द की रंगभूमि; आत्मकथा शैली- जैसे इलाचन्द जोशी की 'घृणामयी'; पत्र शैली जैसे उग्र का 'चन्द हसीनो के खतूत'; डायरी शैली जैसे 'शोषित दर्पण' प्रचलित हो गई। इसके अतिरिक्त वर्णनात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, फ्लैशबैक शैली, नाटकीय शैली, लोक कथात्मक शैली, कथोपकथन शैली, आदि प्रयोग आधुनिक युगीन उपन्यासों में किया जाता हैं।

5.4.3 उद्देश्य

उपन्यास में उद्देश्य या बीज से तात्पर्य-जीवन की व्याख्या अथवा आलोचना से है। प्राचीन काल में उपन्यास की रचना के प्रायः दो मूल उद्देश्य हुआ करते थे-एक तो उपदेश की वृत्ति, जिसके अन्तर्गत नैतिक शिक्षा प्रदान करना था दूसरा केवल कोरा मनोरंजन, जिसका आधार कौतूहल अथवा कल्पना हुआ करता था। आज उपन्यास में जीवन का यर्थाथ चित्रण होता है। इसलिए उपन्यासकार, जीवन के साधारण और असाधारण व्यापारों का मानव-जीवन पर कैसा प्रभाव पड़ता है, इसका आकलन करता हैं। अतः सभी उपन्यासों में कुछ विशेष विचार और सिद्वान्त स्वतः ही आ जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न

अब आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तर को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलाकर देखिए कि आपका उत्तर सही है या नहीं।

5- नीचे कुछ कथन दिये गये हैं, वे सही है या गलत। बताइए।

क) उपन्यास किसी घटना का प्रतिबिम्ब है।

ख) कथावस्तु के अनुरूप पात्र-चयन होना आवश्यक नहीं हैं।

ग) उपन्यास में घटनाक्रम में एकता और संगठन अनिवार्य है।

घ) उपन्यास की मूल कहानी को कथावस्तु कहा जाता है।

ड़) उपन्यास में देशकाल के ध्यान में नहीं रखा जाता है।

6- नीचे कुछ बहुविकल्पिक प्रश्न दिए हैं। उनके सही उत्तर छॉटिए।

क) उपन्यास का मूल आधार होता हैं-

1) देशकाल 2) पात्र 3) शैली 4) कथानक

ख) उपन्यास के तत्व नहीं हैं-

1) कथावस्तु 2) चरित्र-चित्रण 3) कथोपकथन 4) रोचकता

7- उपन्यास का उद्देश्य क्या है। उत्तर तीन पंक्ति में दीजिए।

....
....
....

8- उपन्यास में भाषा-शैली का क्या प्रभाव पड़ता है।

9- उपन्यास की कथावस्तु में किन-किन बातों को सम्मिलित किया जाता है।

5.5 उपन्यास के भेद

उपन्यास के विषय में ऊपर दिये गये परिचय से यह तो आप जान गये होंगे कि उपन्यास में कुछ ऐसे तत्व होते हैं, जो प्रायः सभी में मिलेंगे। किन्तु यह भी सच है कि सभी तत्व समान रूप से नहीं होते। कभी विषय वस्तु की प्रधानता होती है तो किसी में पात्र यानी चरित्र। कहने का तात्पर्य यह है कि उपन्यास में तत्वों की प्रमुखता के आधार पर कई भेद किये जा सकते हैं।

1- तत्वों के आधार पर: घटना प्रधान, चरित्र प्रधान।

2- वर्ण्य विषय के आधार पर: ऐतिहासिक, सामाजिक, साहसिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक इत्यादि।

3- शैली के आधार पर: कथा, आत्मकथा, पत्रात्मक, डायरी आदि।

उपन्यासों का यह वर्गीकरण भ्रम उत्पन्न करता है, साथ ही शैली को छोड़कर दोनों के कई उपरूप समानता लिए हुए है। अतः विद्वानो ने घटनाप्रधान उपन्यास, चरित्रप्रघान उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, सामाजिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, आंचलिक उपन्यासों इत्यादि को मुख्य भेद माना है। आगे हम उपन्यास के इन भेदों का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

5.5.1 घटना प्रधान उपन्यास

इन उपन्यासों में चमत्कारिक घटनाओं की प्रधानता रहती है। पाठक के कौतूहल और उत्सुकता को निरन्तर जाग्रत बनाए रखने में ही इनकी सफलता मानी जाती है। इन उपन्यासों में यद्यपि घटनाएं ही मुख्य होती हैं परन्तु वास्तविकता की अपेक्षा काल्पनिक तथा चमत्कारपूर्ण जीवन का प्राधान्य रहता है। इनकी कथावस्तु प्रेमाख्यान, पौराणिक कथाएँ, जासूसी तथा तिलिस्म घटनाओं से निर्मित होता है।

5.5.2 चरित्र-प्रधान

इन उपन्यासों में घटना के स्थान पर पात्रों की प्रधानता होती है। इनमें पात्रों के चारित्रिक-विकास पर ही पूर्ण ध्यान दिया जाता है। पात्र घटनाओं से पूर्ण स्वतन्त्र होते हैं। वे स्वयं परिस्थिति के निर्माता होते है, न कि परिस्थिति उनकी। पात्रों का चारित्रिक-विकास आरम्भ से अन्त एकरस बने रहते हैं। केवल उपन्यास के विस्तार के साथ-साथ उनके विषय में पाठक के ज्ञान में वृद्धि होती रहती है। इन चरित्रों में परिवर्तन नहीं होता, घटनाएं केवल पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर ही प्रकाश डालती है। ये उपन्यास समाज, देश तथा जाति की चारित्रिक विशेषताओं का प्रदर्शन सर्वाधिक प्रभावशाली और संवेदनशील रूप में करते हैं।

हिन्दी में जैनेन्द्र, उग्र, ऋषभचरण जैन, चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास इसी वर्ग के हैं। ऐसे उपन्यासों के पाठक कम होते हैं। ये चर्चा का विषय तो बनते है परन्तु लोकप्रिय नहीं हो पाते। भाषा, शिल्प आदि की दृष्टि से इन्हें श्रेष्ठ माना जाता है।

5.5.3 ऐतिहासिक उपन्यास

ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास की घटना या चरित्र को उजागर किया जाता है। या कहें कि किसी ऐतिहासिक घटना या चरित्र से प्रभावित होकर जब उपन्यासकार उससे सम्बद्ध युग और देश की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों का चित्रण अपनी रचना में करता है तो उसे ऐतिहासिक उपन्यास कहा जाता है। इस कार्य के लिए उसे इतिहास से सम्बन्धित अन्य तथ्यों, वातावरण, तत्कालीन जीवन का सर्वांगीण, आन्तरिक और प्रभावोत्पादकता का ज्ञान होना चाहिए। इन उपन्यासों में इतिहास और कल्पना का पूर्ण योग रहता है। इनसे एक का भी अभाव होने से सफल ऐतिहासिक उपन्यास की रचना नहीं हो सकती।

ऐतिहासिक उपन्यास इतिहासकारों, पुरातत्ववेताओं के द्वारा संग्रहित नीरस तथ्यों को कल्पना द्वारा जीवित और सुन्दर बना देता है, किन्तु रचनात्मकता का आश्रय लेकर उपन्यास लेखक जिस रूप में उसे हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है; विश्वसनीय होने पर हम उसे यथार्थ रूप में स्वीकार कर लेते है। हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा का आरम्भ भारतेन्दु युग में किशोरीलाल गोस्वामी रचित कुछ उपन्यासों में मिलता है। आधुनिक युगीन हिन्दी उपन्यासों के ऐतिहासिक उपन्यास लेखकों में डा0 वृंदावन लाल वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। 'गढ कुंडार', 'विराटा की पद्मिनी', 'मृगनयनी', टूटे कॉटे', अहिल्याबाई' आदि उनके ऐतिहासिक उपन्यास है। 'झाँसी की रानी' लेखक की ऐतिहासिक रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ है।

5.5.4 सामाजिक उपन्यास

सामाजिक उपन्यासों में सामयिक युग के विचार आदर्श और समस्याएं चित्रित रहती हैं। सामाजिक समस्याओं का चित्रण इनका मुख्य उद्देश्य रहता है। इन पर राजनैतिक-सामाजिक धारणाओं और मतों का विशेष प्रभाव रहता है। विषयगत विस्तार की दृष्टि से सामाजिक उपन्यासों का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। हिन्दी साहित्य में अधिकांश उपन्यास सामाजिक उपन्यास की श्रेणी में आते हैं। भारतेन्दु युग से प्रारम्भ होने वाली इस औपन्यासिक प्रवृत्ति का प्रसार परवर्ती युग में विभिन्न रूपों में हुआ है। प्रेमचंद और प्रेमचंद के परवर्ती युग में सामाजिक प्रवृत्ति अनेक रूपों में विकसित हुई। जिसमें मुख्य समस्यामूलक भाव प्रधान एवं आदर्शवादी तथा नीति कथात्मक औपन्यासिक प्रवृत्तियाँ प्रमुख हैं।

5.5.5 मनोवैज्ञानिक उपन्यास

आधुनिक युग के विश्व साहित्य पर मनोविश्लेषणवादी विचारधाराओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की रचना प्रथम महायुद्ध के पश्चात् हुई। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कथानक के बाह्य स्वरूप को अधिक महत्व न प्रदान कर चरित्रों के मानसिक और भावनात्मक पक्ष पर सबसे अधिक बल दिया जाता है। इन उपन्यासों में अधिकतर मनुष्य के अवचेतन का ही विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है। इसकी कथावस्तु इसलिए गौण हो जाती है, क्योंकि केवल कथावस्तु प्रस्तुत करना इस प्रकार के उपन्यासों का एकमात्र ध्येय नहीं रहता। वे परिस्थिति विशेष का विश्लेषण करते हैं और यह सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं कि एक विशेष पात्र, विशेष परिस्थिति में कोई प्रतिक्रिया किस प्रकार करता है तथा उसका उसके चेतन, अचेतन, अर्धचेतन किस अवस्था से, कैसे और किस प्रकार का संबंध रहा है। इन उपन्यासों में पात्र संख्या कम होती है, क्योंकि पात्र का मनोविश्लेषण अनिवार्य होता है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की रचना प्रेमचंद की देन है, परन्तु उनके परवर्ती काल में मनोवैज्ञानिक उपन्यास अधिकाधिक संख्या में प्रणीत हुए। इस परम्परा में, जैनेन्द्र, इलाचन्द

जोशी, उपेन्द्र नाथ 'अश्क', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' तथा बाल मनोविज्ञान उपन्यास लेखक डा0 प्रताप नारायण टण्डन के उपन्यासों को रखा गया है।

5.5.6 आंचलिक उपन्यास

इधर कुछ वर्षो से हिन्दी में एक नये प्रकार के उपन्यास लिखे जाने आरम्भ हुए, जिन्हें 'आंचलिक उपन्यास' कहा जाता है। इनमें किसी अंचल-विशेष के समग्र जीवन का चित्रण होता है। फणीश्वर नाथ 'रेणु', नागार्जुन, अमृतलाल नागर, उदयशंकर भट्ट, शैलेश मटियानी आदि आंचलिक उपन्यासकारों ने पर्याप्त ख्याति प्राप्त की। इस प्रकार के उपन्यासों का कथा क्षेत्र सीमित होता है। कथाकार अपने प्रदेशांचल के व्यावहारिक जीवन का जीता-जागता स्वरूप प्रस्तुत करता है।

उक्त भेदों के अतिरिक्त उपन्यास का वर्गीकरण शैलीगत आधार पर भी किया जा सकता है। वर्तमान युग में उपन्यास लेखन की अनेक शैलियाँ दिखाई दे रही है। यों तो अधिकतर उपन्यासकार श्रोताओं-पाठकों का ध्यान रखकर पात्रों और दृश्यों का वर्णन निरपेक्ष भाव से करते थे। जिसे वर्णनात्मक शैली कहते है, किन्तु अब मनोविज्ञान के समावेश से अन्य शैलियाँ भी विकसित हुई। इनमें कथा तथा पात्र के विकास के लिए दो या दो से अधिक पात्रों का सम्भाषण, संवादात्मक शैली, उत्तम पुरुष अर्थात् मुख्य पात्र द्वारा आरम्भ से अन्त तक स्वयं कथा कहने की आत्मकथात्मक शैली, और पत्रों के द्वारा चरित्र और कथावस्तु का विकास पत्रात्मक शैली के रूप हुआ है। कुछ लेखकों ने डायरी शैली में भी उपन्यास लिखे हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यास साहित्य निरन्तर विकसित होता रहा है। आज भी रूप-विधान और शैली की दृष्टि से इसमें दिन-प्रतिदिन नये प्रयोग देखे जा रहे हैं।

अभ्यास प्रश्न

अब आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तर को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलाकर देखिए कि आपका उत्तर सही है या नहीं।

10-किन उपन्यासों में चमत्कारिक घटनाओं की प्रधानता रहती है ?

11-अंचल-विशेष के समग्र जीवन का चित्रण करने वाले उपन्यासों को क्या कहते हैं ?

12-हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की रचना कब हुई ?

13-'झाँसी की रानी' किस लेखक की ऐतिहासिक रचना है ?

14-भारतेन्दु युग के ऐतिहासिक उपन्यासकार का नाम बताइए।

15- उपन्यास के निम्नलिखित भेदों पर टिप्पणी लिखिए।

घटना प्रधान उपन्यास
समाजिक उपन्यास
ऐतिहासिक उपन्यास
आंचलिक उपन्यास

5.6 सारांश

- उपन्यास कथा-साहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा है तथा यह अंग्रेजी में 'नॉवेल', बंगला और हिन्दी में उपन्यास के नाम से प्रचलित है।
- इस इकाई को पढ़ने के बाद आप उपन्यास का अर्थ और परिभाषा बता सकते हैं।
- उपन्यास की विषेशता में यर्थाथ जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति, जीवन का गहन गंभीर विश्लेषण इत्यादि आते है। अब आप उपन्यास में उन गुणों के महत्त्व का उल्लेख कर सकेंगे।
- उपन्यास के परम्परागत छः तत्त्व कथानक, पात्र या चरित्र-चित्रण, कथोपकथन या संवाद, देशकाल या वातावरण, शैली एंव उद्देश्य होते हैं।
- अब आप उपन्यास के विभिन्न भेदों की विशेषता भी बता सकते हैं। विषय वस्तु और शैलीगत रूप में हिन्दी उपन्यास के घटना प्रधान, चरित्र प्रधान, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, पत्रात्मक, डायरी शैली इत्यादि प्रकार के भेद होते हैं।

5.7 शब्दावली

- आविर्भाव - उत्पत्ति, उत्पन्न होना।
- परिपक्वता - पक्व का अर्थ है पका हुआ। ऐसी रचना जो पूरी तरह सम्पन्न हो।
- शमन - नष्ट करना या ख़त्म करना।
- ध्येय - लक्ष्य।
- कतिपय - कुछ
- पुरातत्ववेता - प्राचीन इतिहास को जानने वाले।
- अन्वेषण - खोजना।
- कथोपकथन - दो व्यक्तियों के बीच होने वाली बातचीत।

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क) सही ख) सही ग) सही घ) गलत

2. अपने उत्तर को 5.2.1 से मिलाइए।

3. अपने उत्तर को 5.2.1 से मिलाइए।

4. अपने उत्तर को 5.3 में दी गयी विशेषताओं से मिलाइए।

5. क) सही ख) गलत ग) सही घ) सही ड़) गलत

6. क) कथानक ख) रोचकता

7. अपने उत्तर को 5.3.3 से मिलाइए।

8. अपने उत्तर को 5.3.5 से मिलाइए।

9. अपने उत्तर को 5.3.1 से मिलाइए।

10. घटनाप्रधान उपन्यास।

11. आंचलिक उपन्यास।

12. प्रथम महायुद्ध के पश्चात।

13. डा0 वृंदावन लाल वर्मा।

14. किशोरीलाल गोस्वामी

15. अपने उत्तर को 5.4 उपन्यास के भेद से मिलाइए।

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- हिन्दी साहित्य कोश (भाग 1), संपा0 डा0 वर्मा (2000), ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी।

2- राणा, डा0 बलराज सिंह,(1978) उपन्यासकार जैनेन्द्र के पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, संजय प्रकाशन, दिल्ली।

3- शर्मा, राजनाथ, (1987, 20 संस्करण) साहित्यिक निबंध, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

4- गुप्त, डा0 सुरेशचन्द्र,''उपन्यास का स्वरूप'', आदर्श हिन्दी निबन्ध (1967) यंग मैन एण्ड कम्पनी, दिल्ली-6।

5- पाल, डा0 विजय, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र, जयभारती प्रकाशन, दिल्ली।

6- राय, बाबू गुलाब, (2007, 51 संस्करण) हिन्दी साहित्य का इतिहास, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

7- बाला, डा0 कु0 शैल, (1973) हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भिक विकास, सत्य सदन, बाराबंकी।

8- मिश्र एवं तिवारी डा0 राजेन्द्र, प्रहलाद, (2003, 1 संस्करण), बीसवीं शताब्दी के चर्चित उपन्यास, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली।

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उपन्यास के तत्वों पर प्रकाश डालिए।

2. उपन्यास के प्रमुख भेदों पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

इकाई 6 उपन्यास व कहानी में अन्तर

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 उपन्यास और कहानी का अन्तर
6.4 सारांश
6.5 शब्दावली
6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
6.8 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाईयों को पढ़कर अब तक आप जान चुके हैं कि उपन्यास और कहानी का वर्तमान स्वरूप आधुनिक युग की देन है। कहानी शब्द के लिए 'स्टोरी' संज्ञा का प्रयोग किया जाता है, जिसमें मोटे रूप में प्रायः सभी प्राचीन रूप आ जाते हैं। इसके चिह्न प्राचीनतम् साहित्य में भी मिलते हैं। कथा-साहित्य संसार की सभी भाषाओं में प्राप्त होता है। आरम्भ में सभी कथाएँ एक रूप और एक ही पद्धति से विकसित होने के कारण कथा-साहित्य कहलाने लगी।

उपन्यास और कहानी दोनों ही गद्यमय एवं वर्णन पर आधारित ऐतिहासिक शैली की विधाएँ हैं, जिनमें लेखक संवाद या कथोपकथन का आश्रय लेता है। उपन्यास और कहानी कथा-साहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा है और हिन्दी साहित्य में इनका पदार्पण बंगला के माध्यम से पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से हुआ। तत्वगत और स्वरूप की दृष्टि से उपन्यास और कहानी एक दूसरे के अत्यंत निकट हैं। उपन्यास और कहानी दोनों में ही एक समान छः तत्त्व माने गये हैं। इन दोनों में कुछ समानतायें होने के कारण कुछ आलोचकों का मानना है कि उपन्यास को काट-छाँट कर कहानी और कहानी को विचार पूर्वक कह कर उपन्यास बनाया जा सकता है। इस मत को कुछ आलोचक दूसरे शब्दों में कहते हैं कि-''एक ही चीज की कहानी लघु-संस्करण है और उपन्यास वृहद् संस्करण। यह तुलनात्मक कथन केवल आकार को आधार मानकर कहा गया है। यदि इस तथ्य को माने तो कहानी और उपन्यास के बीच तात्विक भेद समाप्त हो जाता है और इन्हें दो स्वतंत्र विधा कहना गलत होगा। परन्तु वास्तविकता यह है कि आज कहानी और उपन्यास कलागत समानता रखते हुए भी एक-दूसरे से पूर्णतः भिन्न विधाएं मानी गई हैं।

इस इकाई में हम कथा साहित्य की दोनों विधाओं कहानी और उपन्यास के बीच स्थित अन्तर को विभिन्न साहित्यिकारों की दृष्टि से जानेंगे और उनका तुलनात्मक अध्ययन करेंगे।

6.2 उद्देश्य

यह पाठ्यक्रम के द्वितीय खण्ड की छठवीं इकाई है। इससे पहले की इकाईयों में आपको उपन्यास और कहानी के स्वरूप, अर्थ-परिभाषा भेद एवं तत्त्वों से परिचित कराया गया है। इस इकाई में आप उपन्यास एवं कहानी के अन्तर को पढ़ेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- उपन्यास और कहानी का अन्तर बता सकेंगे।
- उपन्यास और कहानी के तत्त्वों को अधिक समझ सकेंगे।
- उपन्यास एवं कहानी की विशेषताओं को बता सकेंगे।
- साहित्य में दोनों के स्वतंत्र योगदान को स्पष्ट कर सकेंगे।

6.3 उपन्यास और कहानी का अन्तर

इससे पहले की इकाईयों में कहानी और उपन्यास के बारे में विस्तार से हम चर्चा कर चुके हैं। जिसे आप समझ गए होंगे। इस इकाई में हम दोनों विधाओं की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए उपन्यास और कहानी के बीच स्थित अन्तर को दर्शायेंगे।

आज कहानी और उपन्यास हिन्दी कथा-साहित्य के महत्वपूर्ण अंग हैं। संस्कृत के आचार्यो ने कथा के अनेक रूपों का वर्णन किया है, साथ ही उनका तात्विक विवेचन भी किया है। पश्चिम के साहित्यकारों ने भी रोमांस को आधार बनाकर इसे गद्य में लिखा गया महाकाव्य माना है। उपन्यास और कहानी दोनों में ही 'कथा' तत्व विद्यमान रहता है। अतः प्रारम्भ में लोगों की धारणा थी कि कहानी और उपन्यास में केवल आकारगत भेद है। यह धारणा अब निर्मूल हो चुकी है क्योंकि कभी-कभी एक लघु उपन्यास से कहानी का कथा-विस्तार अधिक होता है। ज्यों-ज्यों कहानी की शिल्पविधि का विकास होता गया, उपन्यास से उसका पार्थक्य भी स्पष्ट झलकने लगा। पश्चिम के प्रसिद्ध आलोचक हडसन ने कहानी को उपन्यास का आने वाला रूप कहकर उपन्यास और कहानी के बीच अभेदता को दर्शाया था। वस्तुतः कहानी और उपन्यास में आकार-प्रकार का भेद तो है ही, इसके साथ ही उनकी विषयवस्तु, शिल्प और शैली में भी इस भेद को स्पष्ट देखा जा सकता है। कहानी कहानी है और उपन्यास उपन्यास। यहाँ पर इस कथन के प्रमाण में कुछ कथाकार, मनीषियों, चिन्तक एवं आलोचकों के विचारों को प्रस्तुत कर रहे हैं, जिन्होंने कहानी और उपन्यास के पृथक-पृथक अस्तित्व को स्वीकार किया है।

उपन्यास सम्राट एवं सशक्त कहानीकार मुंशी प्रेमचंद ने कहानी और उपन्यास के अन्तर को इन शब्दों में स्वीकार किया है- “कहानी (गल्प) एक ऐसी रचना है, जिसमें जीवन के किसी अंश या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-विन्यास सब उसी भाव की पुष्टि करते हैं। उपन्यास की भाँति उसमें मानव-जीवन का सम्पूर्ण तथा वृहत् रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता और न उसमें उपन्यास की भाँति सभी रसों का सम्मिश्रण होता है। वह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं, जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल-बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है, जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।”

हजारी प्रसाद द्विवेद्वी के अनुसार, “उपन्यास शाखा-प्रशाखा वाला एक विशाल वृक्ष है, जबकि कहानी एक सुकुमार लता।”

डा0 श्याम सुन्दर दास इस संबंध में कहते हैं कि ‘‘यह बालिका जो गल्प कहलाती है, उपन्यास की ही औसत जात है, किन्तु कुछ समय से वह अपने पितृ गृह में निवास नहीं करती, उसने नवीन कुल मर्यादा को ग्रहण कर लिया है।’’

डा0 गुलाबराय इन दोनों के अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहते हैं-‘‘कहानी अपने पुराने रूप में उपन्यास की अग्रजा है और नये रूप में उसकी अनुजा। कहानी की एकतथ्यता ही उसका जीवन-रस है और वही उसे उपन्यास से पृथक करता है।’’

यद्यपि दोनों ही कलात्मक ढंग से मानव-जीवन पर प्रकाश डालते हैं और दोनों के तत्व समान हैं, फिर भी इनमें पर्याप्त अन्तर है। आगे उपन्यास और कहानी के अन्तर पर बिन्दुवार विचार किया जा रहा है -

- कहानी जीवन की एक झलक मात्र प्रस्तुत करती है जबकि उपन्यास सम्पूर्ण जीवन का विशाल और व्यापक चित्र प्रस्तुत करता है। उदाहरणार्थ: प्रेमचन्द की कहानी ‘पूस की रात’ और उपन्यास ‘गोदान’ किसान की दयनीय स्थिति पर आधारित है, किन्तु कहानी में खेतिहर हल्कू के जीवन की केवल एक रात का चित्रण है जबकि उपन्यास में होरी के पूरे जीवन और उससे जुड़े जरूरी घटनाओं का चित्र प्रस्तुत किया है।
- कहानी के लिए संक्षिप्तता और संकेतात्मकता आवश्यक तत्व हैं। उपन्यासकार के लिए विवरणपूर्ण, विशद और व्याख्यापूर्ण शैली आवश्यक है।
- कहानीकार एक भाव या प्रभाव-विशेष का चित्रण करता है। उपन्यास पूरी परिस्थिति और गतिशील जीवन की निवृत्ति करता हैं।
- कहानी में प्रासंगिक कथाओं का अवसर नहीं होता। उपन्यास में प्रासंगिक कथाओं का संगठन आधिकारिक कथा की सपाटता को दूर करने तथा वर्णन में विविधता लाने के

लिए आवश्यक होता हैं। उपन्यास में एक साथ एक से अधिक प्रासंगिक एवं अवान्तर कथाएं विषय और व्यक्ति से सम्बद्ध अन्य घटनाओं के रूप में प्रसंगवश जोड़ी जा सकती हैं। उदाहरणार्थ यदि भगवान श्री राम के जीवन पर उपन्यास लिखा गया तब रावण, हनुमान, अहिल्या, शबरी एवं बाली इत्यादि की कथाएं स्वतः ही जुड़ जाती हैं।

- कहानी में थोड़े समय में महत्त्वपूर्ण बात कहनी होती है। अतः कला की सूक्ष्मता इसमें आवश्यक होती है और वह एक भाव-विशेष का ही चित्रण करने का प्रयास करती है। उपन्यास में सूक्ष्म कला की आवश्यकता नहीं होती वरन इसके लिए लेखक में व्यापक, उदात्त दृष्टिकोण, भाव, रस और परिस्थिति के समग्र रूप में चित्रण की सामर्थ्य आवश्यक है। रस एंव भावों के विविध रूपों का समावेश उपन्यास में हो सकता है। उदाहरणार्थ गोदान में प्रेम, घृणा, ईर्ष्या, दुख इत्यादि भावों के साथ ही नगरीय एंव ग्रामीण जीवन के समस्त चित्र एक साथ उकेरे गये हैं। होरी के माध्यम से जहाँ ग्रामीण जीवन को दिखाया गया है वहीं उसके पुत्र गोबर के माध्यम से शहरी जीवन का चित्रण भी कुशलता से किया गया है।
- कहानी द्वारा हल्का मनोरंजन ही प्रायः सम्पादित हो पाता है। उपन्यास परिस्थिति और पात्र के पूर्ण चित्रण द्वारा हृदय-मंथन और मनः संस्कार भी करता है। अर्थात उपन्यास में जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण गभीरतापूर्वक किया जाता है जबकि कहानी विशेष उद्देश्य के लिए या हल्के मनोरंजन के लिए भी रची जा सकती है।
- कहानी में इतिवृत्तात्मकता और अतिशय कल्पना के लिए स्थान नहीं होता। उपन्यास में इतिवृत्तात्मक विवरण पर्याप्त मात्रा में होते हैं, कल्पना का व्यापक प्रसार भी हो सकता है।
- कहानी में चरित्र की झलक रहती है अर्थात चरित्र का उद्घाटन किया जाता है। उपन्यास में चरित्र की झाँकी होती है अर्थात चरित्र को विकसित किया जाता है।
- कहानी में चरित्र-चित्रण की अभिनयात्मक शैली अपनाई जाती है। उपन्यास में चरित्र-चित्रण की विश्लेषात्मक शैली अपनाई जाती है।
- कहानी का आकार छोटा होता है। उपन्यास का आकार कथा-विस्तार के अनुरूप विस्तृत हो सकता है। इसी कारण कई बार उपन्यास नीरस हो जाता है जबकि छोटे आकार के कारण कहानी रोचकता लिए होती है। 'अज्ञेय' का उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' में कथा-विस्तार इतना व्यापक है कि उसे दो भागों में लिखा गया है।
- कहानी में पात्रों की संख्या कम होती है, कई बार एक पात्र ही सम्पूर्ण कहानी का कर्ता होता है। उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक होती है एंव मुख्य पात्र के अतिरिक्त अन्य पात्र भी घटना को आगे बढ़ाते हैं।

- कहानी का चरम सीमा के साथ सीधा सम्बन्ध होता है। उपन्यास चरम सीमा की ओर धीरे-धीरे बढ़ता है।

उपन्यास और कहानी के विषय में उपर्युक्त विवेचन को और अधिक स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं- उपन्यास का गौरव जीवन की समग्रता में है, कहानी का संक्षिप्तता में। कहानी में एकपन है-एक घटना, जीवन का एक पक्ष, संवेदना का एक बिन्दु, एक भाव एक उद्देश्य। उपन्यास में बहुविविधता है, अनेकता है।

उपन्यास में प्रासंगिक और अवांतर कथाएं मुख्य कथा को पुष्ट करती हैं। कहानी में प्रायः इनके लिए अवकाश नहीं रहता। इसी तरह कहानी में सीमित पात्र भी होते हैं, उपन्यास में अनेक। माना जाता है कि कहानी में मूलतः एक ही पात्र होता है, अन्य पात्र तो उसके सहायक होते हैं।

अभ्यास प्रश्न

अब आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तर को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलाकर देखिए कि आपका उत्तर सही है या नहीं।

1- नीचे कुछ कथन दिये गये हैं, वे सही है या गलत। बताइए।

क) कहानी में किसी घटना को संक्षिप्त रूप में कहा जाता है।

ख) कहानी में प्रासंगिक और अवांतर कथाएं मुख्य कथा को पुष्ट करती हैं।

ग) उपन्यास में एकपन होता है।

घ) कहानी में प्रासंगिक कथाओं का अवसर नहीं होता।

ड़) कहानी में बहुविविधता है, अनेकता है।

2- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

क) कहानी में .... की झलक रहती है।

ख) उपन्यास में ....मुख्य कथा को पुष्ट करती हैं।

ग) कहानी की .... ही उसका जीवन-रस है।

घ) उपन्यास का स्वरूप ....के समान होता है।

ड़) कहानी का स्वरूप ....के समान होता है।

च) उपन्यास में चरित्र-चित्रण की ....शैली अपनाई जाती है।

छ) कहानी में चरित्र-चित्रण की ....शैली अपनाई जाती है।

3- नीचे कुछ कथन दिये गये है, बताइए वे किसके द्वारा कहे गये है-

क) ''यह बालिका जो गल्प कहलाती है, उपन्यास की ही औसत जात है, किन्तु कुछ समय से वह अपने पितृ गृह में निवास नहीं करती, उसने नवीन कुल ग्रहण कर लिया है।''

ख) "उपन्यास एक शाखा-प्रशाखा वाला विशाल वृक्ष हैं, जबकि कहानी एक सुकुमार लता।"

4- मुंशी प्रेमचन्द्र की कहानी और उपन्यास में अन्तर संबंधी अवधारणा लिखिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....

5- कहानी और उपन्यास में निहित मूलभूत अन्तर बताइए। उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....

....
....
....
....
....
....

6.4 सारांश

- उपन्यास और कहानी कथा-साहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा है। तथा हिन्दी में इनका पदार्पण पाश्चात्य प्रभाव से हुआ।
- कहानी में 'प्रभावान्विति' प्रमुख होती है, क्योंकि विषय के एकत्व के साथ कहानी में प्रभावों की एकता का होना भी बहुत आवश्यक हैं। उपन्यास में प्रभावान्विति प्रायः नहीं पाई जाती।
- कहानी में कथानक आवश्यक नहीं होता। कथानक हो भी सकता है, और नहीं भी। उपन्यास में कथानक अनिवार्य रूप से होता है।
- उपन्यास चरम सीमा की ओर धीरे-धीरे बढ़ता है और कहानी का चरम सीमा से सीधा संबन्ध होता है।

6.5 शब्दावली

- तात्विक - आधार, मूलभूत बातों पर विशेष ध्यान दिया गया हो
- इतिवृत्तात्मक - घटनाओं का कालक्रम से किया गया वर्णन।
- अतिशय - जरूरत से ज्यादा करना या होना।
- माधुर्य - वाणी यानि भाषा में मधुरता, मीठा बोलना।
- अग्रजा - जो पहले जन्मी हो (बड़ी बहिन)।
- अनुजा - जिसका जन्म बाद में हुआ हो (छोटी बहिन)।
- संक्षिप्तता - कम शब्दों में आवश्यक बात कहना।
- संकेतात्मकता - कथ्य को संकेतों के रूप में कहना।

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क) सही ख) गलत ग) गलत घ) सही ड़) गलत।

2. क) चरित्र ख) प्रासंगिक कथाएं ग) एकतथ्यता घ) गीतिकाव्य

ड़) महाकाव्य च) विश्लेषात्मक छ) अभिनयात्मक।

3. क) डा0 श्याम सुन्दर दास ख) हजारी प्रसाद द्विवेद्वी।

4. अपने उत्तर को 6.2 से मिलाइए।

5. अपने उत्तर को 6.2 से मिलाइए।

6.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- हिन्दी साहित्य कोश (भाग 1), संपा0 डा0 वर्मा एवं भारती (2000), ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी।

2- राणा, डा0 बलराज सिंह (1978), उपन्यासकार जैनेन्द्र के पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, संजय प्रकाशन, दिल्ली।

3- शर्मा, राजनाथ, (1987, 20 संस्करण) साहित्यिक निबन्ध, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

4- गुप्त, डा0 सुरेशचन्द्र, (1967) ''उपन्यास का स्वरूप'', आदर्श हिन्दी निबन्ध यंग मैन एण्ड कम्पनी, दिल्ली-6।

5- पाल, डा0 विजय, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र, जयभारती प्रकाशन, दिल्ली।

6- राय, बाबू गुलाब, (2007, 51 संस्करण) हिन्दी साहित्य का इतिहास, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

7- बाला, डा0 कु0 शैल, (1973) हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भिक विकास, सत्य सदन, बाराबंकी।

8- संपा0 प्रो0 हरिमोहन, (2002) ग्यारह कहानियॉं, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

9- मोहन, डा0 सविता, (1990) समकालीन कहानी कथ्य एवं शिल्प, ग्रन्थायन, अलीगढ़।

6.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उपन्यास एवं कहानी के साम्य एवं वैषम्य पर प्रकाश डालिए।

इकाई 7 उसने कहा था : पाठ एवं विवेचन

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 जीवनी/व्यक्तित्व

7.3.1 कृतित्व –वस्तु पक्ष

7.3.2 भाषा शैली

7.4 'उसने कहा था' : परिचय

7.5 कहानी की विशेषता

7.6 सारांश

7.7 शब्दावली

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के इतिहास में चंद्रधर शर्मा गुलेरी का नाम विशिष्ट प्रयोजन में प्रयुक्त होता है। आप लोग इस इकाई में गुलेरी जी की साहित्य साधना एवं उनके जीवन परिचय से अवगत होंगे। चंद्रधर शर्मा गुलेरी बहुमुखी प्रतिभा के लेखक थे। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो वे प्रेमचंद और महाकवि जयशंकर प्रसाद के समकालीन थे। प्रसिद्ध समालोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने गुलेरी जी को 'अमर कथा शिल्पी' की संज्ञा से विभूषित किया है। वास्तव में हिन्दी के साधारण पाठक गुलेरी जी को 'उसने कहा था' जैसी अमर कहानी के लेखक के रूप में ही जानते हैं। जो पाठक तनिक अधिक जिज्ञासु और सचेत हैं उनकी नजर में वे 'कछुआ धर्म' और 'मोर सी मोहि कुठाऊँ' जैसे निबंधों के तेज तर्रार लेखक हैं। 'साहित्य के इतिहास' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ में शुक्ल जी ने श्री चंद्रधर शर्मा को संस्कृत के प्रकांड प्रतिभाशाली विद्वान के बतौर याद किया है। गुलेरी जी के पांडित्य और प्रतिभा को देखते हुए संभवतया पं. पद्म सिंह शर्मा जी की यह शिकायत बेवजह नहीं लगती कि गुलेरी जी ने अपेक्षा के अनुरूप नहीं लिखा अर्थात कम लिखा। ध्यान देने योग्य तथ्य यहाँ यह है कि केवल 39 वर्ष की थोड़ी-सी उम्र में उन्होंने जितना कुछ लिखा वह इतना स्वल्प भी नहीं है कि गुलेरी जी का मूल्याँकन केवल अनुमान या संभावना के आधार पर किया जाए।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप बता सकेंगे कि –

- हिन्दी साहित्य के संपूर्ण इतिहास में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की साहित्यिक प्रतिभा क्या है?
- ''उसने कहा था'' कहानी का क्या महत्व से परिचित हो सकेंगे।
- कहानी की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन श्रेणीबद्ध तरीकों से कर सकेंगे।

7.3 जीवनी/व्यक्तित्व

मूलतः हिमाचल प्रदेश के गुलेर गाँव के वासी ज्योतिर्विद महामहोपाध्याय पंडित शिवराम शास्त्री राजसम्मान पाकर जयपुर (राजस्थान) में बस गए थे। उनकी तीसरी पत्नी लक्ष्मीदेवी ने सन् 1883 में चन्द्रधर को जन्म दिया। घर में बालक को संस्कृत भाषा, वेद, पुराण आदि के अध्ययन, पूजा-पाठ, संध्या-वंदन तथा धार्मिक कर्मकाण्ड का वातावरण मिला और मेधावी चन्द्रधर ने इन सभी संस्कारों और विद्याओं को आत्मसात् किया। आगे चलकर उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा भी प्राप्त की और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते रहे। कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम.ए. (प्रथम श्रेणी में और प्रयाग विश्वविद्यालय से बी. ए. (प्रथम श्रेणी में) करने के बाद चाहते हुए भी वे आगे की पढ़ाई परिस्थितिवश जारी न रख पाए। हालाँकि उनके स्वाध्याय और लेखन का क्रम अबाध रूप से चलता रहा। बीस वर्ष की उम्र के पहले ही उन्हें जयपुर की वेधशाला के जीर्णोद्धार तथा उससे सम्बन्धित शोधकार्य के लिए गठित मण्डल में चुन लिया गया था और कैप्टन गैरेट के साथ मिलकर उन्होंने ''जयपुर ऑब्जरवेटरी एण्ड इट्स बिल्डर्स'' शीर्षक अँग्रेजी ग्रन्थ की रचना की।

अपने अध्ययन काल में ही उन्होंने सन् 1900 में जयपुर में नगरी मंच की स्थापना में योग दिया और सन् 1902 से मासिक पत्र 'समालोचक' के सम्पादन का भार भी सँभाला। प्रसंगवश कुछ वर्ष काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के सम्पादक मंडल में भी उन्हें सम्मिलित किया गया। उन्होंने देवी प्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला और सूर्य कुमारी पुस्तकमाला का सम्पादन किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने नागरी प्रचारिणी पुस्तकमाला का सम्पादन किया। वे नागरी प्रचारिणी सभा के सभापति भी रहे।

जयपुर के राजपण्डित के कुल में जन्म लेनेवाले गुलेरी जी का राजवंशों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। वे पहले खेतड़ी नरेश जयसिंह के और फिर जयपुर राज्य के सामन्त-पुत्रों के अजमेर

के मेयो कॉलेज में अध्ययन के दौरान उनके अभिभावक रहे। सन् 1916 में उन्होंने मेयो कॉलेज में ही संस्कृत विभाग के अध्यक्ष का पद सँभाला। सन् 1920 में पं. मदन मोहन मालवीय के आग्रह के कारण उन्होंने बनारस आकर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राच्यविद्या विभाग के प्राचार्य और फिर 1922 में प्राचीन इतिहास और धर्म से सम्बद्ध मनीन्द्र चन्द्र नन्दी पीठ के आचार्य का कार्यभार भी ग्रहण किया। इस बीच परिवार में अनेक दुखद घटनाओं के आघात भी उन्हें झेलने पड़े। सन् 1922 में 12 सितम्बर को पीलिया के बाद तेज बुख़ार से मात्र 39 वर्ष की आयु में उनका देहावसान हो गया।

7.3.1 कृतित्व – वस्तु पक्ष

इस थोड़ी-सी आयु में ही गुलेरी जी ने अध्ययन और स्वाध्याय के द्वारा हिन्दी और अँग्रेजी के अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत, बांग्ला, मराठी आदि का ही नहीं जर्मन तथा फ्रेंच भाषाओं का भी ज्ञान हासिल किया था। उनकी रुचि का क्षेत्र भी बहुत विस्तृत था और धर्म, ज्योतिष इतिहास, पुरातत्त्व, दर्शन भाषाविज्ञान शिक्षाशास्त्र और साहित्य से लेकर संगीत, चित्रकला, लोककला, विज्ञान और राजनीति तथा समसामयिक सामाजिक स्थिति तथा रीति-नीति तक फैला हुआ था। उनकी अभिरुचि और सोच को गढ़ने में स्पष्ट ही इस विस्तृत पटभूमि का प्रमुख हाथ था और इसका परिचय उनके लेखन की विषयवस्तु और उनके दृष्टिकोण में बराबर मिलता रहता है।

पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के साथ एक बहुत बड़ी विडम्बना यह है कि उनके अध्ययन, ज्ञान और रुचि का क्षेत्र हालाँकि बेहद विस्तृत था और उनकी प्रतिभा का प्रसार भी अनेक कृतियों, कृतिरूपों और विधाओं में हुआ था, किन्तु आम हिन्दी पाठक ही नहीं, विद्वानों का एक बड़ा वर्ग भी उन्हें अमर कहानी 'उसने कहा था' के रचनाकार के रूप में ही पहचानता है। इस कहानी की प्रखर चकाचौंध ने उनके बाकी वैविध्य भरे सशक्त कृति संसार को मानों ग्रस लिया है। प्राचीन साहित्य, संस्कृति, हिन्दी भाषा, समकालीन समाज, राजनीति आदि विषयों से जुड़ी इनकी विद्वता का जिक्र यदा-कदा होता रहता है, पर 'कछुआ धरम' और 'मारेसि मोहि कुठाऊँ' जैसे एक दो निबन्धों और पुरानी हिन्दी जैसी लेखमाला के उल्लेख को छोड़कर उस विद्वता की बानगी आम पाठक तक शायद ही पहुँची हो। व्यापक हिन्दी समाज उनकी प्रकाण्ड विद्वता और सर्जनात्मक प्रतिभा से लगभग अनजान है।

अपने 39 वर्ष के संक्षिप्त जीवनकाल में गुलेरी जी ने किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना तो नहीं कि किन्तु फुटकर रूप में बहुत लिखा, अनगिनत विषयों पर लिखा और अनेक विधाओं की विशेषताओं और रूपों को समेटते-समंजित करते हुए लिखा। उनके लेखन का एक बड़ा हिस्सा जहाँ विशुद्ध अकादमिक अथवा शोधपरक है, उनकी शास्त्रज्ञता तथा पाण्डित्य का परिचायक है; वहीं, उससे भी बड़ा हिस्सा उनके खुले दिमाग, मानवतावादी दृष्टि और समकालीन समाज, धर्म राजनीति आदि से गहन सरोकार का परिचय देता है। लोक से यह सरोकार उनकी 'पुरानी हिन्दी' जैसी अकादमिक और 'महर्षि च्यवन का रामायण' जैसी शोधपरक रचनाओं तक में दिखाई

देता है। इन बातों के अतिरिक्त गुलेरी जी के विचारों की आधुनिकता भी हमसे आज उनके पुनराविष्कार की माँग करती है।

विषय-वस्तु की व्यापकता की दृष्टि से गुलेरी जी का लेखन धर्म पुरातत्त्व, इतिहास और भाषाशास्त्र जैसे गम्भीर विषयों से लेकर 'काशी की नींद' जैसे हलके-फुलके विषयों तक को समान भाव से समेटता है। विषयों का इतना वैविध्य लेखक के अध्ययन, अभिरुचि और ज्ञान के विस्तार की गवाही देता है, तो हर विषय पर इतनी गहराई से समकालीन परिप्रेक्ष्य में विचार अपने समय और नए विचारों के प्रति उसकी सजगता को रेखांकित करता है। राज ज्योतिषी के परिवार में जन्मे, हिन्दू धर्म के तमाम कर्मकाण्डों में विधिवत् दीक्षित, त्रिपुण्डधारी निष्ठावान ब्राह्मण की छवि से यह रूढ़िभंजक यथार्थ शायद मेल नहीं खाता, मगर उस सामाजिक-राजनीतिक-साहित्यिक उत्तेजना के काल में उनका प्रतिगामी रुढ़ियों के खिलाफ आवाज उठाना स्वाभाविक ही था। यह याद रखना जरूरी है कि वे रूढ़ियों के विरोध के नाम पर केवल आँख मूँदकर तलवार नहीं भाँजते। खण्डन के साथ ही वे उचित और उपयुक्त का मंडन भी करते हैं। किन्तु धर्म, समाज, राजनीति और साहित्य में उन्हें जहाँ कहीं भी पाखण्ड या अनौचित्य नजर आता है, उस पर वे जमकर प्रहार करते हैं। इस क्रम में उनकी वैचारिक पारदर्शिता, गहराई और दूरदर्शिता इसी बात से सिद्ध है कि उनके उठाए हुए अधिकतर मुद्दे और उनकी आलोचना आज भी प्रासंगिक हैं।

उनके लेखन की रोचकता उसकी प्रासंगिकता के अतिरिक्त उसकी प्रस्तुति की अनोखी भंगिमा में भी निहित है। उस युग के कई अन्य निबन्धकारों की तरह गुलेरी जी के लेखन में भी मस्ती तथा विनोद भाव की एक अन्तर्धारा लगातार प्रवाहित होती रहती है। धर्मसिद्धान्त, आध्यात्म आदि जैसे कुछ एक गम्भीर विषयों को छोड़कर लगभग हर विषय के लेखन में यह विनोद भाव प्रसंगों के चुनाव में, भाषा के मुहावरों में, उद्धरणों और उक्तियों में बराबर झंकृत रहता है। जहाँ आलोचना कुछ अधिक भेदक होती है, वहाँ यह विनोद व्यंग्य में बदल जाता है- जैसे शिक्षा, सामाजिक रूढ़ियों तथा राजनीति सम्बन्धी लेखों में। इससे गुलेरी जी की रचनाएँ कभी गुदगुदाकर, कभी झकझोरकर पाठक की रुचि को बाँधे रहती हैं।

मात्र 39 वर्ष की जीवन-अवधि को देखते हुए गुलेरी जी के लेखन का परिमाण और उनकी विषय-वस्तु तथा विधाओं का वैविध्य सचमुच विस्मयकर है। उनकी रचनाओं में कहानियाँ, कथाएँ, आख्यान, ललित निबन्ध, गम्भीर विषयों पर विवेचनात्मक निबन्ध, शोधपत्र, समीक्षाएँ, सम्पादकीय टिप्पणियाँ, पत्र विधा में लिखी टिप्पणियाँ, समकालीन साहित्य- समाज, राजनीति, धर्म, विज्ञान, कला आदि पर लेख तथा वक्तव्य, वैदिक-पौराणिक साहित्य, पुरातत्त्व, भाषा आदि पर प्रबन्ध, लेख तथा टिप्पणियाँ-सभी शामिल हैं।

7.3.2 भाषा शैली

गुलेरी जी की शैली मुख्यतः वार्तालाप की शैली है जहाँ वे किस्साबयानी के लहज़े में मानों सीधे पाठक से मुख़ातिब होते हैं। यह साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ी बोली को सँवरने का काल था। अतः शब्दावली और प्रयोगों के स्तर पर सामन्जस्य और परिमार्जन की कहीं-कहीं कमी भी नजर आती है। कहीं वे 'पृश्णि', 'क्लृप्ति' और 'आग्मीघ्र' जैसे अप्रचलित संस्कृत शब्दों का प्रयोग करते हैं तो कहीं 'बेर', 'बिछोड़ा' और 'पैंड़' जैसे ठेठ लोकभाषा के शब्दों का। अंग्रेजी, अरबी-फारसी आदि के शब्द ही नहीं पूरे-के-पूरे मुहावरे भी उनके लेखन में तत्सम या अनूदित रूप में चले आते हैं। भाषा के इस मिले-जुले रूप और बातचीत के लहजे से उनके लेखन में एक अनौपचारिकता और आत्मीयता भी आ गई है। हाँ गुलेरी जी अपने लेखन में उद्धरण और उदाहरण बहुत देते हैं। इन उद्धरणों और उदाहरणों से आमतौर पर उनका कथ्य और अधिक स्पष्ट तथा रोचक हो उठता है पर कई जगह यह पाठक से उदाहरण की पृष्ठभूमि और प्रसंग के ज्ञान की माँग भी करता है। आम पाठक से प्राचीन भारतीय वाङ्मय, पश्चिमी साहित्य, इतिहास आदि के इतने ज्ञान की अपेक्षा करना ही गलत है। इसलिए यह अतिरिक्त 'प्रसंगगर्भत्व' उनके लेखन के सहज रसास्वाद में कहीं-कहीं अवश्य ही बाधक होता है।

गुलेरी की कहानी कुशलता का रहस्य यह है कि वह दुःख के तह तक जाकर दर्द की पड़ताल करते हैं। जिसका उदाहरण निम्नलिखित है- **रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया।**

"वजीरा सिंह, पानी पिला" ... 'उसने कहा था।'

लहना का सिर अपनी गोद में रक्खे वजीरासिंह बैठा है। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घण्टे तक लहना चुप रहा, फिर बोला, 'कौन! कीरतसिंह?'

वजीरा ने कुछ समझकर कहा, 'हाँ।'

'भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।' वजीरा ने वैसे ही किया।

'हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस, अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठ कर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।'

वजीरासिंह के आँसू टप-टप टपक रहे थे।

बहरहाल गुलेरी जी की अभिव्यक्ति में कहीं भी जो भी कमियाँ रही हों, हिन्दी भाषा और शब्दावली के विकास में उनके सकारात्मक योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। वे खड़ी बोली का प्रयोग अनेक विषयों और अनेक प्रसंगों में कर रहे थे-शायद किसी भी अन्य

समकालीन विद्वान से कहीं बढ़कर। साहित्य पुराण-प्रसंग इतिहास, विज्ञान, भाषाविज्ञान, पुरातत्त्व, धर्म, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र आदि अनेक विषयों की वाहक उनकी भाषा स्वाभाविक रूप से ही अनेक प्रयुक्तियों और शैलियों के लिए गुंजाइश बना रही थी। वह विभिन्न विषयों को अभिव्यक्त करने में हिन्दी की सक्षमता का जीवन्त प्रमाण है। हर सन्दर्भ में उनकी भाषा आत्मीय तथा सजीव रहती है, भले ही कहीं-कहीं वह अधिक जटिल या अधिक हल्की क्यों न हो जाती हो। गुलेरी जी की भाषा और शैली उनके विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र नहीं थी। वह युग-सन्धि पर खड़े एक विवेकी मानस का और उस युग की मानसिकता का भी प्रामाणिक दस्तावेज है। इसी ओर इंगित करते हुए प्रो. नामवर सिंह का भी कहना है, ''गुलेरी जी हिन्दी में सिर्फ एक नया गद्य या नयी शैली नहीं गढ़ रहे थे बल्कि वे वस्तुतः एक नयी चेतना का निर्माण कर रहे थे और यह नया गद्य नयी चेतना का सर्जनात्मक साधन है।''

अभ्यास प्रश्न

(1) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए –

1. उसने कहा था का प्रकाशन वर्ष...............है।
2. गुलेरी जी ने..............पत्र का प्रकाशन किया।
3. ....उसने कहा था का नायक है।
4. ....उसने कहा था की नायिका है।
5. उसने कहा था कि पृष्ठभूमि..............प्रान्त की है।

7.4 उसने कहा था: परिचय

हिन्दी के निराले आराधक श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी की बेजोड़ कहानी 'उसने कहा था' सन् 1915 ई. में सरस्वती में प्रकाशित हुई थी। यों तो हिन्दी की पहली कहानी के रूप में इंशा अल्ला खां की कहानी 'रानी केतकी की कहानी' किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' और बंग महिला की 'दुलाई वाली' का नाम लिया जाता है। मगर कहानी की कसौटी पर खरा उतरने के कारण 'उसने कहा था' कहानी को ही हिंदी की पहली कहानी होने का गौरव प्राप्त है। हमारे यहाँ प्रेम पद्धति में पुरुष प्रेम का प्रस्ताव करता है और स्त्री स्वीकृति देकर उसे कृतकृत्य बनाती है। इस क्रिया व्यापार में नारी अपनी सलज्जता और गरिमा बनाए रखती है और पुरुष उसे संरक्षण देने में पौरुष की अनुभूति करता है। पुरुष के इसी पौरुषपूर्ण साहसिक प्रयत्न की ओर ही बहुधा नारी आकर्षित होती है। श्री चंद्रशेखर शर्मा गुलेरी जी ने भारतीय प्रेम पद्धति के परंपरागत रूप को 'उसने कहा था' कहानी में अक्षुण्ण बनाए रखा है। इस कहानी में प्रेम का स्वरूप किशोरावस्था के प्रथम दर्शन से आरंभ होकर क्रमशः विकसित होकर संयोगावस्था में पूर्णता न प्राप्त कर वियोगावस्था (त्रासदी) में पूर्ण होता है। अमृतसर के बाजार में एक लड़का और लड़की

मिलते हैं। लड़का लड़की से पहला सवाल करता है, 'तेरी कुड़माई हो गयी?' और लड़की के नकारात्मक उत्तर पर प्रसन्न हो दूसरे-तीसरे दिन भी यह प्रश्न दोहरा देता है, पर यकायक एक दिन उम्मीद के विपरीत जब लड़के को पता चलता है कि उसकी कुड़माई हो गयी है तो वह इस अप्रत्याशित जवाब से क्षुब्ध हो कई ऊल-जुलूल काम कर बैठता है। तीव्र मन से लहना सिंह आघात महसूसते हुए क्या-क्या सोचने-करने लगता है, निज चेतन एवं उपचेतन तथा अचेतन मन की विभिन्न परतों को खोल देने वाला वर्णन गुलेरी जी ने 20वीं सदी के शुरुआती काल में किया है, वह सचमुच इंसानी मन के चेतन उप-चेतन तथा अचेतन मन की विभिन्न परतों को खोल देने वाला ही है। गुलेरी जी के चरित्र चित्रण की ऐसी अनूठी मनोवैज्ञानिकता से पाठक आश्चर्यचकित रह जाता है। लहना सिंह अपने बचपन के प्रेम को पच्चीस साल बाद भी भुला नहीं पाता, तब लगता है सूरदास के 'लरिकाई कौ प्रेम कहौ अलि कैसे छूटत' वाली उक्त अक्षरशः सत्यापित होती है। संभवतः ऐसे अनूठे भावों के सुंदर सुदृढ़ गुंफन के कारण 'उसने कहा था' कहानी ख्याति स्तंभ कहानी बन गयी और हिन्दी के समूचे कहानी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए है। इस कहानी में शाश्वत मानव मनोभाव कथ्य का आधार बने हैं।

7.5 कहानी की विशेषता

कहानी की विशेषता यह है कि आम पाठक जिज्ञासु बनकर घटनाओं के प्रति उत्सुक बना रहता है। ''किसने कहा था'', ''क्या कहा था'' और ''क्यों कहा था''। यही तो कहानी के मूल तथ्य से जुड़ा दुर्लभ संवेदन है जो घटनाचक्र के साथ पाठक को दृढ़ता से जोड़े रखता है और उसकी जिज्ञासु प्रवृत्ति को विकसित करता है। बेशक, इस कहानी में दूसरे और पात्र भी हैं, मगर कथ्य की मूल आत्मा केवल लहना सिंह और सूबेदारनी में ही अधिक संवेदित दिखायी देती है। दोनों के मध्य एक ऐसी प्रेम कहानी अपना ताना-बाना बुनती है, जो लहना सिंह के जीवन को आदर्शवादी मूल्यों का नशेमन (नीड़) बना देता है। एक ऐसा अनुपम पात्र जो देखने-सुनने एवं पढ़ने वालों के लिए अनुकरणीय और आदरणीय तो है ही आह्लादक भी लगता है और कहानी मानवीय शाश्वत भावों को प्रकाशित करने वाली कर्तव्य एवं त्याग (बलिदान) की कहानी सिद्ध होती है। इसमें नायक-नायिका (सूबेदारनी)के मधुर रागात्मक मिलन की क्षणिक चमक दोनों के संपूर्ण जीवन तथा व्यक्तित्व को आलोकित करती है - उसने कहा था ? इस कथन को युद्ध क्षेत्र में पड़ा लहना सिंह 25 वर्ष बीत जाने पर भी भूलता नहीं है। वरन् यह उसके लिए प्रेरक शक्ति सिद्ध होती है। उसके आत्मोत्सर्ग त्याग, बलिदान का कारण बनता है। एक मायने में लहना सिंह प्रेम के लिए ही बलिदान करता है।

देश और प्रेम के प्रति कर्तव्य की भावना 'उसने कहा था' कहानी की मूल थीम है। जीवन के अंतिम क्षण में 'कुड़माई' से लेकर 'उसने कहा था' तक तमाम स्मृतियाँ अपना आकार लेती हुई लहना सिंह की आँखों में सपना बनकर तैरती हैं। वजीरा सिंह उसे पानी पिलाता है... लहना सिंह

को यों प्रतीत होता है मानों पानी के उस घूँट के साथ जुड़कर अतीत का प्रेम अपार सुख संतोष उसमें अपने आप भर गया हो। कर्तव्य बोध के शिकंजे में कसती जा रही घायल लहना सिंह की जिंदगी का एक-एक क्षण उत्सर्ग की भावना से ओत-प्रोत होकर सच्चे प्रेम का साक्ष्य बन जाता है। या यूं कहें कि घायल शरीर से रिस रहे उसके लहू की एक-एक बूंद सूबेदारनी की माँग के सिंदूर को धूमिल होने और आँचल के दूध को सूखने से बचाती है। अंतिम श्वास तक लहना सिंह की कर्तव्य परायणता जीवित रहती है और मरने के बाद उत्सर्ग से अनुप्राणित लहना सिंह का पावन प्रेम मंदिर की पूजा की भांति अत्यंत पावन बनकर लोकोत्तर आनंद एवं अप्रतिम सौंदर्य से दीप्तिमान हो उठता है। प्रेम की इस पवित्र परिणति में वासना की व्यग्रता तथा मादक चपलता से मुक्त लहना सिंह अमरत्व प्राप्त करता और इस तरह गुलेरी जी अविस्मरणीय बन जाते हैं।

‘‘स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है, ‘मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गए। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में ज़मीन दी है, आज नमक-हलाली का मौका आया है।’’ पर सरकार ने हम तीमियों की एक घंघरिया पल्टन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती? एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया। सूबेदारनी रोने लगी। ‘‘अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है, एक दिन टाँगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दूकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे, आप घोड़े की लातों में चले गए थे, और मुझे उठा-कर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे आँचल पसारती हूँ।"

दो शब्द कहानी की भाषा-शैली पर भी कहना आवश्यक है। ध्यातव्य है कि 1915 ई. में कहानीकार इतने परिनिष्ठित गद्य का स्वरूप उपस्थित कर सकता है जो बहुत बाद तक की कहानी में भी दुर्लभ है। यदि भाषा में कथा की बयानी के लिए सहज चापल्य तथा जीवन-धर्मी गंध है तो चांदनी रात के वर्णन में एक गांभीर्य जहां चंद्रमा को क्षयी तथा हवा को बाणभट्ट की कादम्बरी में आये दन्तवीणोपदेशाचार्य की संज्ञा से परिचित कराया गया है। रोजमर्रा की बोलचाल के शब्दों, वाक्यांशों और वाक्यों तथा लोकगीत का प्रयोग भी कहानी को एक नयी धारा देता है। इस प्रकार अनेक दृष्टियों से “उसने कहा था” हिंदी ही नहीं, भारतीय भाषाओं की ही नहीं अपितु विश्व कहानी साहित्य की अमूल्य धरोहर है। क्या लहना सिंह और बालिका के प्रेम को प्रेम-रसराज श्रृंगार की सीमा का स्त्री-पुरुष के बीच जन्मा प्रेम कहा भी जा सकता है? मृत्यु के कुछ समय पहले लहना सिंह के मानस-पटल पर स्मृतियों की जो रील चल रही है उससे ज्ञात होता है कि अमृतसर की भीड़-भरी सड़कों पर जब बालक लहना सिंह और बालिका (सूबेदारनी) मिलते हैं तो लहना सिंह की उम्र बारह वर्ष है और बालिका की आठ वर्ष। ध्यातव्य है कि 1914-15 ई. का हमारा सामाजिक परिवेश ऐसा नहीं था जैसा आज का। आज के बालक-बालिका रेडियो, टी.वी. तथा अन्य प्रचार माध्यमों और उनके द्वारा परिवार-नियोजन के लिए चलायी जा रही मुहिम से यौन-संबंधों की जो जानकारी रखते हैं, उस समय उसकी कल्पना

भी नहीं की जा सकती थी। यह वह समय था जब अधिकतर युवाओं को स्त्री-पुरुष संबंधों का सही ज्ञान नहीं होता था। ऐसे समय में अपने मामा के यहां आया लड़का एक ही महीने में केवल दूसरे-तीसरे दिन कभी सब्जी वाले या दूध वाले के यहां उस बालिका से अकस्मात मिल जाता है तो यह साहचर्यजन्य सहज प्रीति उस प्रेम की संज्ञा तो नहीं पा सकती जिसका स्थायी भाव रति है। इसे बालपन की सहज प्रीति ही कहा जा सकता है जिसका पच्चीस वर्षो के समय तक शिथिल न पडने वाला वह तार यह संवाद है तेरी कुडमाई हो गई? और उत्तर का भोला धृष्ट धत् है। किंतु एक दिन धत् न सुन कर जब बालक लहना सिंह संभावना, आशा के विपरीत यह सुनता है हां, हो गई, कब?, कल, देखते नहीं यह रेशम से कढा हुआ सालू! तो उसकी दुनिया में उथल-पुथल मच जाती है, मानो उसके भाव जगत में एक तूफान आ जाता है, आग-सी लग जाती है।

गुलेरी की कहानी-कला अपने समय इस कहानी-कला से आगे की है। गुलेरी पर भी अपने समय का प्रभाव है-उसकी प्रचलित रूढ़ियों का साफ प्रभाव उनकी पहली कहानी ''सुखमय जीवन'' पर है। यह कहानी वैसी ही है जैसी उस दौर की अन्य कहानियां हैं। यह कहानी नहीं, वृत्तांत भर है-इसमें शिल्प और तकनीक का कोई मौलिक नवोन्मेष नहीं है। लेकिन उन्होंने अपनी अगली कहानी ''उसने कहा था'' में अपने समय को बहुत पीछे छोड़ दिया है। शिल्प और तकनीक का जो उत्कर्ष प्रेमचंद ने अपने जीवन के अंतिम चरण में 1936 ई. के आसपास ''कफन'' और ''पूस की रात'' में अर्जित की, गुलेरी ने इस कहानी में उसे 1915 ई. में ही साध लिया। यह यों ही संभव नहीं हुआ। इसे संभव किया गुलेरी के असाधारण व्यक्तित्व ने। गुलेरी 1915 ई में महज 32 वर्ष के थे। युवा होने के कारण उनमें नवाचार का साहस था। उम्र-दराज आदमी जिस तरह की दुविधाओं और संकोचों से घिर जाता है, गुलेरी उनसे सर्वथा मुक्त थे। अंग्रेजी कहानी इस समय अपने विकास के शिखर पर थी और उसमें प्रयोगों की भी धूम थी, जिनसे गुलेरी बखूबी वाकिफ थे। कम लोगों को जानकारी है कि गुलेरी उपनिवेशकाल में अंग्रेजों द्वारा सामंतों की शिक्षा के लिए अजमेर में स्थापित विख्यात आधुनिक शिक्षण संस्थान मेयो कॉलेज में अध्यापक थे और आधुनिक अंग्रेजी साहित्य के अच्छे जानकार थे। दरअसल नवाचार के साहस और आधुनिक अंग्रेजी साहित्य की विशेषज्ञता के कारण ही गुलेरी अपने समय से आगे की कहानी लिख पाए। गुलेरी के कौतुहलपूर्ण कथोपकथन से कहानी की प्राण प्रतिष्ठा और भी शास्त्रोक्त हो जाती है-

'तेरे घर कहाँ है?'
'मगरे में; और तेरे?'
'माँझे में; यहाँ कहाँ रहती है?'
'अतरसिंह की बैठक में; वे मेरे मामा होते हैं।'
'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरुबाज़ार में हैं।'
इतने में दुकानदार निबटा, और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जा कर लड़के ने मुसकराकार पूछा, ''तेरी कुड़माई हो गई?''

इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ा कर 'धत्' कह कर दौड़ गई, और लड़का मुँह देखता रह गया।

7.6 सारांश

"उसने कहा था" का कथा-विन्यास अत्यंत विराट फलक पर किया गया है। कहानी जीवन के किसी प्रसंग विशेष, समस्या विशेष या चरित्र की किसी एक विशेषता को ही प्रकाशित करती है, उसके संक्षिप्त कलेवर में इससे अधिक की गुंजाइश नहीं होती है। किंतु यह कहानी लहना सिंह के चारित्रिक विकास में उसकी अनेक विशेषताओं को प्रकाशित करती हुई उसका संपूर्ण जीवन-वृत्त प्रस्तुत करती है, बारह वर्ष की अवस्था से लेकर प्रायः सैंतीस वर्ष, उसकी मृत्युपर्यंत, तक की कथा-नायक का संपूर्ण जीवन इस रूप में चित्रित होता है कि कहानी अपनी परंपरागत रूप-पद्धति (फॉर्म) को चुनौती देकर एक महाकाव्यात्मक औदात्य लिये हुए है। वस्तुत: पांच खण्डों में कसावट से बुनी गयी यह कहानी सहज ही औपन्यासिक विस्तार से युक्त है किंतु अपनी कहन की कुशलता से कहानीकार इसे एक कहानी ही बनाये रखता है। दूसरे, तीसरे और चौखे खण्ड में विवेच्य कहानी में युद्ध-कला, सैन्य-विज्ञान (क्राफ्ट ऑफ वार) और खंदकों में सिपाहियों के रहने-सहने के ढंग का जितना प्रामाणिक, सूक्ष्म तथा जीवंत चित्रण इस कहानी में हुआ है, वैसा हिंदी कथा-साहित्य में विरल है। लहना सिंह जैसे सीधे-साधे सिपाही, जमादार लहना सिंह की प्रत्युपन्नमति, कार्य करने की फुर्ती, संकट के समय अपने साथियों का नेतृत्व, जर्मन लपटैन (लेफ्टिनेंट) को बातों-बातों में बुद्धू बना कर उसकी असलियत जान लेना, यदि एक ओर इस चरित्र को इस सबसे विकास मिलता है तो दूसरी ओर पाठक इस रोचक-वर्णन में खो-सा जाता है। भाई कीरत सिंह की गोद में सिर रख कर प्राण त्यागने की इच्छा, वजीरा सिंह को कीरत सिंह समझने में लहना सिंह एक त्रासद प्रभाव पाठक को देता है। मृत्यु से पूर्व का यह सारा दृश्यविधान अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है। वातावरण का अत्यंत गहरे रंगों में सृजन गुलेरी जी की अपनी विशेषता है। कहानी का प्रारंभ अमृतसर की भीड़-भरी सड़कों और गहमागहमी से होता है, युद्ध के मोर्चे पर खाली पडे फौजी घर, खंदक का वातावरण, युद्ध के पैंतरे इन सबके चित्र अंकित करता हुआ कहानीकार इस स्वाभाविक रूप में वातावरण की सृष्टि करता है कि वह हमारी चेतना, संवेदना का अंग ही बन जाता है।

7.7 शब्दावली

1. नवाचार - नवीन विचार
2. चापल्य - चंचलता
3. पटभूमि - पृष्ठभूमि

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) 1. 1915

2. समालोचक

3. लहना सिंह

4. सूबेदारनी

5. पंजाब

7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पब्लिकेशन।
2. सिंह, नामवर, कहानी नयी कहानी, लोकभारती प्रकाशन।

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी कुशलता का शास्त्रीय विवेचन करें।
2. चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालें।
3. ''उसने कहा था'' कहानी की सफलता को अपने शब्दों में व्यख्यायित करें।

इकाई 8 उसने कहा था : पाठ एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 मूलपाठ
8.4 मूल्यांकन
8.5 सारांश
8.6 शब्दावली
8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
8.9 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

इस इकाई में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की प्रसिद्ध एवं कालजयी कहानी ''उसने कहा था'' के मूलपाठ का अध्ययन किया जा रहा है। यह कहानी अपने काल के साथ-साथ युवा होती गयी है। सन् 1915 में प्रकाशित यह कहानी साहित्याकाश में अपना एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है। गुलेरी जी की साहित्य साधना ''उसने कहा था'' में स्पष्टतः परिलक्षित होती है। प्रथम-दृष्टि-प्रेम तथा साहचर्यजन्य प्रेम दोनों का ही इस प्रेमोदय में सहकार है। बालापन की यह प्रीति इतना अगाध विश्वास लिए है कि 25 वर्षों के अंतराल के पश्चात भी प्रेमिका को यह विश्वास है कि यदि वह अपने उस प्रेमी से, जिसने बचपन में कई बार अपने प्राणों को संकट में डाल कर उसकी जान बचायी है, यदि आंचल पसार कर कुछ मांगेगी तो वह मिलेगा अवश्य; और दूसरी ओर प्रेमी का "उसने कहा था" की बात रखने के लिए प्राण न्योछावर कर वचन निभाना उसके अद्भुत बलिदान और प्रेम पर सर्वस्व अर्पित करने की एक बेमिसाल कहानी है।

8.2 उद्देश्य

- चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कालजयी कहानी ''उसने कहा था'' का मूलपाठ से आप परिचित होंगे।
- ''उसने कहा था'' कहानी की समीक्षा आप कर सकेंगे।
- कहानी के तत्वों से आप परिचित हो सकेंगे।

- पंजाबी पृष्ठभूमि का ज्ञान आप प्राप्त कर सकेंगे।
- विभिन्न शब्दावलियों से परिचित हो सकेंगे।

8.3 मूलपाठ

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़िवालों की जवान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है, और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगाएँ। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ चाबुक से धुनते हुए, इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट-सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अंगुलियों के पोरे को चींघकर अपने-ही को सताया हुआ बताते हैं, और संसार-भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने, नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले तंग चक्करदार गलियों में, हर-एक लड्ढी वाले के लिए ठहर कर सब्र का समुद्र उमड़ा कर 'बचो खालसाजी।' 'हटो भाई जी। 'ठहरना भाई जी। ''आने दो लाला जी।" 'हटो बाछा।' -- कहते हुए सफेद फेटों, खच्चरों और बत्तकों, गन्नें और खोमचे और भारेवालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती नहीं, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई।

यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती, तो उनकी बचनावली के ये नमूने हैं - 'हट जा जीणे जोगिए'; 'हट जा करमा वालिए'; 'हट जा पुतां प्यारिए'; 'बच जा लम्बी वालिए।' समष्टि में इनके अर्थ हैं, कि तू जीने योग्य है, तू भाग्योंवाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहिये के नीचे आना चाहती है? बच जा।

ऐसे बम्बूकार्टवालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दूकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिक्ख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था, और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दुकानदार एक परदेसी से गुँथ रहा था, जो सेर-भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

'तेरे घर कहाँ है?'

'मगरे में; और तेरे?'

'माँझे में; यहाँ कहाँ रहती है?'

'अतरसिंह की बैठक में; वे मेरे मामा होते हैं।'

'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरुबाज़ार में हैं।'

इतने में दुकानदार निबटा, और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जा कर लड़के ने मुसकराकार पूछा, ''तेरी कुड़माई हो गई?''

इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ा कर 'धत्' कह कर दौड़ गई, और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्ज़ीवाले के यहाँ, दूधवाले के यहाँ अकस्मात दोनों मिल जाते। महीना-भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा, 'तेरी कुड़माई हो गई?' और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की संभावना के विरुद्ध बोली, ''हाँ हो गई।''

''कब?''

''कल, देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।''

लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छावड़ीवाले की दिन-भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभीवाले के ठेले में दूध उड़ेल दिया। सामने नहा कर आती हुई किसी वैष्णवी से टकरा कर अन्धे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा।

''राम-राम, यह भी कोई लड़ाई है। दिन-रात खन्दकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गईं। लुधियाना से दस गुना जाड़ा और मेंह और बर्फ़ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं। ज़मीन कहीं दिखती नहीं; - घंटे-दो-घंटे में कान के परदे फाड़नेवाले धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ-सौ गज धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का जलजला सुना था, यहाँ दिन में पचीस जलजले होते हैं। जो कहीं खन्दक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई, तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।''

''लहनासिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खन्दक में बिता ही दिए। परसों 'रिलीफ' आ जाएगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट-भर खाकर सो रहेंगे। उसी फिरंगी मेम के बाग में - मखमल का-सा हरा घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो।''

''चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ा कर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जर्मनों को अकेला मार कर न लौटूँ,

तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े - संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं, और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अंधेरे में तीस-तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था - चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल ने हट जाने का कमान दिया, नहीं तो...''

''नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते! क्यों?'' सूबेदार हज़ारसिंह ने मुसकराकर कहा, 'लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ़ बढ़ गए तो क्या होगा?''

''सूबेदार जी, सच है,'लहनासिंह बोला, 'पर करें क्या? हड्डियों-हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं, और खाई में दोनों तरफ़ से चम्बे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय, तो गरमी आ जाय।''

''उदमी, उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा, तुम चार जने बालटियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंकों। महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाज़े का पहरा बदल ले।'' यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला पानी भर कर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला, ''मैं पाधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण!'' इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गए।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भर कर उसके हाथ में देकर कहा, ''अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब-भर में नहीं मिलेगा।''

''हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस धुमा ज़मीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा।''

''लाड़ी होरा को भी यहाँ बुला लोगे? या वही दूध पिलानेवाली फरंगी मेम...''

''चुप कर। यहाँ वालों को शरम नहीं।''

''देश-देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तम्बाखू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिये लड़ेगा नहीं।''

''अच्छा, अब बोधसिंह कैसा है?''

''अच्छा है।''

''जैसे मैं जानता ही न होऊँ ! रात-भर तुम अपने कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुज़र करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है, और 'निमोनिया' से मरनेवालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।''

''मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सीर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।''

वजीरासिंह ने त्योरी चढ़ाकर कहा, ''क्या मरने-मारने की बात लगाई है? मरें जर्मनी और तुरक! हाँ भाइयों, कैसे?''

दिल्ली शहर तें पिशोर नुं जांदिए,

कर लेणा लौंगां दा बपार मडिए;

कर लेणा नादेड़ा सौदा अड़िए -

(ओय) लाणा चटाका कदुए नुँ।

क बणाया वे मज़ेदार गोरिये,

हुण लाणा चटाका कदुए नुँ।।

कौन जानता था कि दाढ़ियावाले, घरबारी सिख ऐसा लुच्चों का गीत गाएँगे, पर सारी खन्दक इस गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताज़े हो गए, मानों चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

दोपहर रात गई है। अन्धेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली बिसकुटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कम्बल बिछा कर और लहनासिंह के दो कम्बल और एक बरानकोट ओढ़ कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहा।

''क्यों बोधा भाई, क्या है?''

''पानी पिला दो।''

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगा कर पूछा, 'कहो कैसे हो? ''पानी पी कर बोधा बोला, कँपनी छुट रही है। रोम-रोम में तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।''

''अच्छा, मेरी जरसी पहन लो!''

''और तुम?''

''मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है। पसीना आ रहा है।''

''ना, मैं नहीं पहनता। चार दिन से तुम मेरे लिए...''

''हाँ, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सबेरे ही आई है। विलायत से बुन-बुनकर भेज रही हैं मेमें, गुरु उनका भला करें।'' यों कह कर लहना अपना कोट उतार कर जरसी उतारने लगा।

''सच कहते हो?''

''और नहीं झूठ?'' यों कह कर नहीं करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता भर पहन-कर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घण्टा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज़ आई, ''सूबेदार हज़ारासिंह।''

''कौन लपटन साहब? हुक्म हुजूर!'' कह कर सूबेदार तन कर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

''देखो, इसी समय धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से ज़ियादह जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काट कर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़ कर सब को साथ ले उनसे जा मिलो। खन्दक छीन कर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।''

''जो हुक्म।''

चुपचाप सब तैयार हो गए। बोधा भी कम्बल उतार कर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझ कर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज़्ज़त हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेर कर खड़े हो गए और जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ा कर कहा, 'लो तुम भी पियो।'

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपा कर बोला, 'लाओ साहब।' हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में ही कहाँ उड़ गए और उनकी जगह कैदियों से कटे बाल कहाँ से आ गए?'

शायद साहब शराब पिए हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है? लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजिमेंट में थे।

'क्यों साहब, हमलोग हिन्दुस्तान कब जाएँगे?'

'लड़ाई ख़त्म होने पर। क्यों, क्या यह देश पसन्द नहीं?'

'नहीं साहब, शिकार के वे मज़े यहाँ कहाँ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी जिले में शिकार करने गए थे -

हाँ-हाँ -वहीं जब आप खोते पर सवार थे और और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ने को रह गया था? बेशक पाजी कहीं का - सामने से वह नील गाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थीं। और आपकी एक गोली कन्धे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफ़सर के साथ शिकार खेलने में मज़ा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नील गाय का सिर आ गया था न? आपने कहा था कि रेजमेंट की मैस में लगाएँगे। हाँ पर मैंने वह विलायत भेज दिया - ऐसे बड़े-बड़े सींग! दो-दो फुट के तो होंगे?'

'हाँ, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया?'

'पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ' कह कर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अंधेरे में किसी सोने वाले से वह टकराया।

'कौन? वजीरसिंह?'

'हाँ, क्यों लहना? क्या कयामत आ गई? ज़रा तो आँख लगने दी होती?'

'होश में आओ। कयामत आई और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आई है।'
'क्या?'

'लपटन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गए हैं। उनकी वर्दी पहन कर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा। मैंने देखा और बातें की है। सोहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिगरेट दिया है?'
'तो अब!'

'अब मारे गए। धोखा है। सूबेदार होरा, कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उठो, एक काम करो। पल्टन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गए होंगे।

सूबेदार से कहो एकदम लौट आयें। खन्दक की बात झूठ है। चले जाओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।‘

‘हुकुम तो यह है कि यहीं-'

‘ऐसी तैसी हुकुम की! मेरा हुकुम... जमादार लहनासिंह जो इस वक्त यहाँ सब से बड़ा अफ़सर है, उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की ख़बर लेता हूँ।'

‘पर यहाँ तो तुम आठ है।‘

‘आठ नहीं, दस लाख। एक-एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।'

लौट कर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह-जगह खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार-सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ़ जाकर एक दियासलाई जला कर गुत्थी पर रखने...

बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी बन्दुक को उठा कर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तान कर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन पर मारा और साहब ‘आँख! मीन गौट्ट' कहते हुए चित्त हो गए। लहनासिंह ने तीनों गोले बीन कर खन्दक के बाहर फेंके और साहब को घसीट कर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफ़ाफ़े और एक डायरी निकाल कर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँस कर बोला, ‘क्यों लपटन साहब? मिजाज़ कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नील गायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं।

और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ़ उर्दू कहाँ से सीख आए? हमारे लपटन साहब तो बिन ‘डेम' के पाँच लफ्ज़ भी नहीं बोला करते थे।'

लहना ने पतलून के जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानो जाड़े से बचने के लिए, दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया, ‘चालाक तो बड़े हो पर माँझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिए। तीन महिने हुए एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव आया था। औरतों को बच्चे होने के ताबीज़ बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजा बिछा कर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनीवाले बड़े पंडित हैं। वेद पढ़-पढ़ कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गए हैं। गौ को

नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जाएँगे तो गोहत्या बन्द कर देंगे। मंडी के बनियों को बहकाता कि डाकखाने से रुपया निकाल लो। सरकार का राज्य जानेवाला है। डाक-बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्ला जी की दाढ़ी मूड़ दी थी। और गाँव से बाहर निकल कर कहा था कि जो मेरे गाँव में अब पैर रक्खा तो...'

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना की हैनरी मार्टिन के दो फायरों ने साहब की कपाल-क्रिया कर दी। धड़ाका सुन कर सब दौड़ आए।

बोधा चिल्लाया, 'क्या है?'

लहनासिंह ने उसे यह कह कर सुला दिया कि 'एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया' और, औरों से सब हाल कह दिया। सब बन्दूकें लेकर तैयार हो गए। लहना ने साफा फाड़ कर घाव के दोनों तरफ़ पट्टियाँ कस कर बाँधी। घाव मांस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक-तक कर मार रहा था - वह खड़ा था, और, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़ कर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़े से मिनिटों में वे...

अचानक आवाज़ आई 'वाहे गुरु जी की फतह? वाहे गुरु जी का खालसा!!' और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गए। पीछे से सूबेदार हज़ारसिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और... 'अकाल सिक्खाँ दी फौज आई! वाहे गुरु जी दी फतह! वाहे गुरु जी दा खालसा! सत श्री अकालपुरुख!!!' और लड़ाई ख़तम हो गई। तिरेसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गए। सूबेदार के दाहिने कन्धे में से गोली आरपार निकल गई। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खन्दक की गीली मट्टी से पूर लिया और बाकी का साफा कस कर कमरबन्द की तरह लपेट लिया। किसी को ख़बर न हुई कि लहना को दूसरा घाव - भारी घाव लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था, ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी वाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी, जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा

हाल सुन और काग़ज़ात पाकर वे उसकी तुरत-बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज़ तीन मील दाहिनी ओर की खाई वालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाडियाँ चलीं, जो कोई डेढ़ घण्टे के अन्दर-अन्दर आ पहुँची। फील्ड अस्पताल नज़दीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जाएँगे, इसलिए मामूली पट्टी बाँधकर एक गाड़ी में घायल लिटाए गए और दूसरी में लाशें रक्खी गई। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही। पर उसने यह कह कर टाल दिया कि थोड़ा घाव है सबेरे देखा जायेगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़ कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा, 'तुम्हें बोधा की कसम है, और सूबेदारनी जी की सौगन्ध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।'

'और तुम?'

'मेरे लिए वहाँ पहुँचकर गाड़ी भेज देना, और जर्मन मुरदों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ? वजीरासिंह मेरे पास है ही।'

'अच्छा, पर...'

'बोधा गाड़ी पर लेट गया? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिये तो, सूबेदारनी होरां को चिठ्ठी लिखो, तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था वह मैंने कर दिया।'

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़ कर कहा, 'तैने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था?'

'अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना, और कह भी देना।'

गाड़ी के जाते लहना लेट गया। 'वजीरा पानी पिला दे, और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।'

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ़ हो जाती है। जन्म-भर की घटनायें एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ़ होते हैं। समय की धुन्ध बिल्कुल उन पर से हट जाती है।

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दहीवाले के यहाँ, सब्ज़ीवाले के यहाँ, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है, तेरी कुड़माई हो गई? तब 'धत्' कह कर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा, तो उसने

कहा, 'हाँ, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलोंवाला सालू" सुनते ही लहनासिंह को दुरूख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ?

'वजीरासिंह, पानी पिला दे।'

पचीस वर्ष बीत गए। अब लहनासिंह नं ७७ रैफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न-मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर ज़मीन के मुकदमें की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजिमेंट के अफसर की चिठ्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है, फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हज़ारासिंह की चिठ्ठी मिली कि मैं और बोधसिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ ही चलेंगे। सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार बेढे में से निकल कर आया। बोला, 'लहना, सूबेदारनी तुमको जानती हैं, बुलाती हैं। जा मिल आ।' लहनासिंह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे जानती हैं? कब से? रेजिमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाज़े पर जा कर 'मत्था टेकना' कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

मुझे पहचाना?'

'नहीं।'

''तेरी कुड़माई हो गई -धत् -कल हो गई- देखते नहीं, रेशमी बूटोंवाला सालू -अमृतसर में -"

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

''वजीरा, पानी पिला।" 'उसने कहा था।'

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है, 'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गए। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में ज़मीन दी है, आज नमक-हलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों की एक घंघरिया पल्टन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती? एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।" सूबेदारनी रोने लगी। ''अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है, एक दिन टाँगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दूकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे, आप घोड़े की लातों में चले गए थे, और मुझे उठा-कर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे आँचल पसारती हूँ।"

रोती -रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया।

''वजीरा सिंह, पानी पिला" ... 'उसने कहा था।'

लहना का सिर अपनी गोद में रक्खे वजीरासिंह बैठा है। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घण्टे तक लहना चुप रहा, फिर बोला, 'कौन! कीरतसिंह?'

वजीरा ने कुछ समझकर कहा, 'हाँ।'

'भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।' वजीरा ने वैसे ही किया।

'हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस, अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठ कर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।'

वजीरासिंह के आँसू टप-टप टपक रहे थे।

कुछ दिन पीछे लोगों ने अख़बारों में पढ़ा... फ्रान्स और बेलजियम... 68 वीं सूची... मैदान में घावों से मरा... नं 77 सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

अभ्यास प्रश्न

निर्देश : सत्य/असत्य का चुनाव कीजिए।

1. उसने कहा था का प्रकाशन सन् 1915 में हुआ था।
2. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका का संपादन किया था।
3. 'पुरानी हिंदी' के लेखक गुलेरी जी हैं।
4. उसने कहा था की पृष्ठभूमि पंजाब प्रान्त से जुड़ी हुई है।
5. गुलेरी जी को कई भाषाओं का ज्ञान था।

8.4 मूल्यांकन

पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने "उसने कहा था" कहानी की रचना कर न केवल हिंदी कहानी अपितु विश्व कथा-साहित्य को समृद्ध किया है। वास्तविकता यह है कि उनकी प्रसिद्धि "उसने कहा था" के द्वारा ही हुई। "उसने कहा था" प्रेम, शौर्य और बलिदान की अद्भुत प्रेम-कथा है। प्रथम विश्व युद्ध के समय में लिखी गयी यह प्रेम कथा कई मायनों में अप्रतिम है। प्रथम-दृष्टि-प्रेम तथा साहचर्यजन्य प्रेम दोनों का ही इस प्रेमोदय में सहकार है। बालापन की यह प्रीति इतना अगाध विश्वास लिए है कि 25 वर्षों के अंतराल के पश्चात भी प्रेमिका को यह विश्वास है कि यदि

वह अपने उस प्रेमी से, जिसने बचपन में कई बार अपने प्राणों को संकट में डाल कर उसकी जान बचायी है, यदि आंचल पसार कर कुछ मांगेगी तो वह मिलेगा अवश्य। "उसने कहा था" का कथा-विन्यास अत्यंत विराट फलक पर किया गया है। कहानी जीवन के किसी प्रसंग विशेष, समस्या विशेष या चरित्र की किसी एक विशेषता को ही प्रकाशित करती है, उसके संक्षिप्त कलेवर में इससे अधिक की गुंजाइश नहीं होती है। किंतु यह कहानी लहना सिंह के चारित्रिक विकास में उसकी अनेक विशेषताओं को प्रकाशित करती हुई उसका संपूर्ण जीवन-वृत्त प्रस्तुत करती है, बारह वर्ष की अवस्था से लेकर प्रायः सैंतीस वर्ष, उसकी मृत्युपर्यंत, तक की कथा-नायक का संपूर्ण जीवन इस रूप में चित्रित होता है कि कहानी अपनी परंपरागत रूप-पद्धति (फॉर्म) को चुनौती देकर एक महाकाव्यात्मक औदात्य लिये हुए है। वस्तुतः पांच खण्डों में कसावट से बुनी गयी यह कहानी सहज ही औपन्यासिक विस्तार से युक्त है किंतु अपनी कहन की कुशलता से कहानीकार इसे एक कहानी ही बनाये रखता है। दूसरे, तीसरे और चौखे खण्ड में विवेच्य कहानी में युद्ध-कला, सैन्य-विज्ञान (क्राफ्ट ऑफ वार) और खंदकों में सिपाहियों के रहने-सहने के ढंग का जितना प्रामाणिक, सूक्ष्म तथा जीवंत चित्रण इस कहानी में हुआ है, वैसा हिंदी कथा-साहित्य में विरल है।

लहना सिंह जैसे सीधे-साधे सिपाही, जमादार लहना सिंह की प्रत्युपन्नमति, कार्य करने की फुर्ती, संकट के समय अपने साथियों का नेतृत्व, जर्मन लपटैन (लेफ्टिनेंट) को बातों-बातों में बुद्धू बना कर उसकी असलियत जान लेना, यदि एक ओर इस चरित्र को इस सबसे विकास मिलता है तो दूसरी ओर पाठक इस रोचक-वर्णन में खो-सा जाता है। भाई कीरत सिंह की गोद में सिर रख कर प्राण त्यागने की इच्छा, वजीरा सिंह को कीरत सिंह समझने में लहना सिंह एक त्रासद प्रभाव पाठक को देता है। मृत्यु से पूर्व का यह सारा दृश्यविधान अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है।

वातावरण का अत्यंत गहरे रंगों में सृजन गुलेरी जी की अपनी विशेषता है। कहानी का प्रारंभ अमृतसर की भीड़-भरी सड़कों और गहमागहमी से होता है, युद्ध के मोर्चे पर खाली पड़े फौजी घर, खंदक का वातावरण, युद्ध के पैंतरे इन सबके चित्र अंकित करता हुआ कहानीकार इस स्वाभाविक रूप में वातावरण की सृष्टि करता है कि वह हमारी चेतना, संवेदना का अंग ही बन जाता है।

8.5 सारांश

यह देशज वातावरण से ओतप्रोत कहानी चंद्रधर शर्मा की अनुपम कृति सिद्ध हुई है। इस कहानी ने देशप्रेम के साथ-साथ प्रेयसी के प्रति प्रतिबद्धता का अनूठा संगम है। देश की रक्षा के साथ प्रेम के निशानी की रक्षा करने की अतुलनीय सीख यह कहानी देती है। कहानी में

कौतूहलता, संघर्ष एवं दुःखान्त है। कहानी को पढ़कर पाठक का निश्चित ही हृदय पसीज जाता है। इस कहानी को पढ़ने के पश्चात् आप जान चुके होंगे कि –

- कहानी कहने की शैली
- आदर्श प्रेम के लिए त्याग
- राष्ट्रप्रेम के लिए प्राणोत्तसर्ग की भावना
- युद्ध कालीन परिस्थितियों का ध्यान
- पंजाबी लोक रीति का ज्ञान

8.6 शब्दावली

1.	बम्बूकार्ट	-	रंगरूट
2.	कुड़माई	-	शादी
3.	बर्रा	-	आग की गर्मी
4.	गंदला	-	गंदा

8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. सत्य

8.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, विजय पाल, सं0, कथा एकादशी।
2. शुक्ल, रामचन्द्र – हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।

8.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. कहानी ‘‘उसने कहा था’’ का अभिप्राय अपने शब्दों में लिखिये।

2. लहनासिंह का चरित्र चित्रण कीजिये।

3. ‘‘उसने कहा था’’ की भाषा शैली पर प्रकाश डालिये।

इकाई 9 बड़े भाई साहबः प्रेमचंद- पाठ एवं विवेचन

इकाई की रूपरेखा

9.1 पस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 जीवनी/व्यक्तित्व
9.3.1 कृतित्व
9.3.2 कृतियाँ
9.4 रचना संसार
9.5 विशेषताएँ
9.5.1 कथ्य की दृष्टि से
9.5.2 भाषा की दृष्टि से
9.6 बड़े भाई साहब कहानी की विशेषता
9.7 प्रेमचंद : मूल्यांकन
9.8 सारांश
9.9 शब्दावली
9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
9.12 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

अपने युग के सर्वमान्य द्रष्टा प्रगतिशील कथाकार मुंशी प्रेमचंद की प्रासंगिकता आज प्रश्नों के घेरे में है। कई बार नासमझी में उन पर पुरानेपन का आरोप लगाया जाता है। कुछ सुधी आलोचकों की दृष्टि में उनका साहित्य वर्तमान चुनौतियों और समस्याओं का मुकाबला करने में असमर्थ है। इसमें कोई संदेह नहीं कि उनका साहित्य अपने समय के भारतीय समाज का जीवंत और प्रामाणिक दस्तावेज है साथ ही उनका सुधारवाद राष्ट्रीय आंदोलन की तत्कालीन चेतना और गांधीवादी जीवन दर्शन व साम्यवाद से एक सीमा तक प्रभावित भी है किन्तु आजादी के बाद उन मूल्यों व आदर्शों की चमक फीकी पड़ती गई। आज नवीन कथ्य, नई टेकनीक,

अभिनव शिल्पगत प्रयोग और अत्याधुनिक कला-प्रवृत्तियाँ-नग्नता, अतियथार्थवाद, पाश्चात्य प्रभाव आदि के अंतर्गत कथा-साहित्य में विशुद्ध कलावादी मानदण्डों को प्रमुखता मिल रही है, जिसके फलस्वरूप मुझे चाँद चाहिए, दो मुरदों के लिए गुलदस्ता जैसी रचनाएँ पुरस्कृत हो रही है ऐसे में आदर्शोन्मुख यथार्थवादी सामाजिक कथाकार के लेखन की प्रासांगिकता को लेकर कुछ प्रश्न व जिज्ञासाओं का उठना स्वाभाविक ही है। अपनी सांस्कृतिक विरासत से निरंतर दूर, वैभव की सर्वग्रासी चमक से विमोहित और चाँद को छू लेने को आतुर आज का युवा भी जानना चाहता है कि आखिर ऐसा क्या है प्रेमचंद के साहित्य में? जो इसे पढ़ा जाए अथवा उनके विचार भावी पीढ़ी के लिए धरोहर के रूप में संरक्षित रखे जाएँ। इस नई पीढ़ी को हम प्रेमचंद की मूलभूत जीवन दृष्टि, उनकी भाषागत सामर्थ्य, मानवतावाद या फिर परंपरा मात्र की दुहाई देकर संतुष्ट नहीं कर सकते, अतएव यहां केवल उन्हीं बिंदुओं की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया जा रहा है, जो प्रेमचंद-साहित्य की प्रासांगिकता के मेरूदण्ड हैं। इस इकाई में हम प्रेमचंद जी के कहानी कला के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ हम उनकी प्रसिद्ध कहानी ''बड़े भाई साहब'' की विशेषता को जानने का प्रयास करेंगे।

9.2 उद्देश्य

बी0ए0एच0एल0-101 प्रश्न पत्र की यह नवीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- कहानी सम्राट मुंशी प्रेमचंद की जीवनी का अवलोकन कर सकेंगे।
- मुंशी प्रेमचंद के साहित्यिक पक्ष का विस्तृत अध्ययन करेंगे।
- प्रेमचंद जी की कहानी शैली के वैशिष्ट का अध्ययन करेंगे।
- प्रेमचंद जी की कहानी ''बड़े भाई साहब'' की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

9.3 जीवनी/व्यक्तित्व

प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई 1880 को वाराणसी के निकट लमही गाँव में हुआ था। उनकी माता का नाम आनन्दी देवी था तथा पिता मुंशी अजायबराय लमही में डाकमुंशी थे। उनकी शिक्षा का आरंभ उर्दू, फारसी से हुआ और जीवन-यापन अध्यापन से। 1898 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे एक स्थानीय विद्यालय में शिक्षक नियुक्त हो गए। नौकरी के साथ ही उन्होंने पढ़ाई जारी रखी। 1910 में उन्होंने इंटर पास किया और 1919 में बी.ए. पास करने के बाद स्कूलों के डिप्टी सब-इंस्पेक्टर पद पर नियुक्त हुए। सात वर्ष की अवस्था में उनकी माता तथा चौदह वर्ष की अवस्था में पिता का देहान्त हो जाने के कारण उनका प्रारंभिक जीवन संघर्षमय रहा। उनका पहला विवाह उन दिनों की परंपरा के अनुसार पंद्रह साल की उम्र में हुआ,

जो सफल नहीं रहा। वे आर्य समाज से प्रभावित रहे, जो उस समय का बहुत बड़ा धार्मिक और सामाजिक आंदोलन था। उन्होंने विधवा-विवाह का समर्थन किया और 1906 में दूसरा विवाह अपनी प्रगतिशील परंपरा के अनुरूप बाल-विधवा शिवरानी देवी से किया। उनकी तीन संताने हुई- श्रीपत राय, अमृतराय और कमला देवी श्रीवास्तव। 1907 में उनकी रचना सोजे-वतन (राष्ट्र का विलाप) के लिए हमीरपुर के जिला कलेक्टर ने तलब किया और उन पर जनता को भड़काने का आरोप लगाया। सोजे-वतन की सभी प्रतियां जब्त कर नष्ट कर दी गई। कलेक्टर ने नवाबराय को हिदायत दी कि अब वे कुछ भी नहीं लिखेंगे, यदि लिखा तो जेल भेज दिया जाएगा। इस समय तक प्रेमचंद ,धनपत राय नाम से लिखते थे। उर्दू में प्रकाशित होने वाली जमाना पत्रिका के सम्पादक मुंशी दयानारायण निगम ने उन्हें प्रेमचंद नाम से लिखने की सलाह दी। इसके बाद वे प्रेमचन्द के नाम से लिखने लगे। जीवन के अंतिम दिनों में वे गंभीर रुप से बीमार पड़े। उनका उपन्यास मंगलसूत्र पूरा नहीं हो सका और लंबी बीमारी के बाद 8 अक्टूबर 1936 को उनका निधन हो गया।

प्रेमचंद को प्रायः 'मुंशी प्रेमचंद' के नाम से जाना जाता है। प्रेमचंद के नाम के साथ 'मुंशी' कब और कैसे जुड़ गया? इस विषय में अधिकांश लोग यही मान लेते हैं कि प्रारम्भ में प्रेमचंद अध्यापक रहे। अध्यापकों को प्राय: उस समय मुंशी जी कहा जाता था। इसके अतिरिक्त कायस्थों के नाम के पहले सम्मान स्वरूप 'मुंशी' शब्द लगाने की परम्परा रही है। संभवत: प्रेमचंद जी के नाम के साथ मुंशी शब्द जुड़कर रूढ़ हो गया। प्रोफेसर शुकदेव सिंह के अनुसार प्रेमचंद जी ने अपने नाम के आगे 'मुंशी' शब्द का प्रयोग स्वयं कभी नहीं किया। उनका यह भी मानना है कि मुंशी शब्द सम्मान सूचक है, जिसे प्रेमचंद के प्रशंसकों ने कभी लगा दिया होगा। यह तथ्य अनुमान पर आधारित है। लेकिन प्रेमचंद के नाम के साथ मुंशी विशेषण जुड़ने का प्रामाणिक कारण यह है कि 'हंस' नामक पत्र प्रेमचंद एवं 'कन्हैयालाल मुंशी' के सह संपादन मे निकलता था। जिसकी कुछ प्रतियों पर कन्हैयालाल मुंशी का पूरा नाम न छपकर मात्र 'मुंशी' छपा रहता था साथ ही प्रेमचंद का नाम इस प्रकार छपा होता था- (हंस की प्रतियों पर देखा जा सकता है))। संपादक मुंशी, प्रेमचंद। 'हंस' के संपादक प्रेमचंद तथा कन्हैयालाल मुंशी थे। परन्तु कालांतर में पाठकों ने 'मुंशी' तथा 'प्रेमचंद' को एक समझ लिया और 'प्रेमचंद'- 'मुंशी प्रेमचंद' बन गए। यह स्वाभाविक भी है। सामान्य पाठक प्राय: लेखक की कृतियों को पढ़ता है, नाम की सूक्ष्मता को नहीं देखा करता। आज प्रेमचंद का मुंशी अलंकरण इतना रूढ़ हो गया है कि मात्र मुंशी से ही प्रेमचंद का बोध हो जाता है तथा 'मुंशी' न कहने से प्रेमचंद का नाम अधूरा-अधूरा सा लगता है।

प्रेमचंद ने अपनी कला के शिखर पर पहुँचने के लिए अनेक प्रयोग किए। जिस युग में प्रेमचंद ने कलम उठाई थी, उस समय उनके पीछे ऐसी कोई ठोस विरासत नहीं थी और न ही विचार और प्रगतिशीलता का कोई मॉडल ही उनके सामने था सिवाय बांग्ला साहित्य के। उस समय बंकिम बाबू थे, शरतचंद्र थे और इसके अलावा टॉलस्टॉय जैसे रुसी साहित्यकार थे।

लेकिन होते-होते उन्होंने गोदान जैसे कालजयी उपन्यास की रचना की जो कि एक आधुनिक क्लासिक माना जाता है। उन्होंने चीजों को खुद गढ़ा और खुद आकार दिया। जब भारत का स्वतंत्रता आंदोलन चल रहा था तब उन्होंने कथा साहित्य द्वारा हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं को जो अभिव्यक्ति दी उसने सियासी सरगर्मी को, जोश को और आंदोलन को सभी को उभारा और उसे ताकतवर बनाया और इससे उनका लेखन भी ताकतवर होता गया। प्रेमचंद इस अर्थ में निश्चित रुप से हिंदी के पहले प्रगतिशील लेखक कहे जा सकते हैं। 1936 में उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ के पहले सम्मेलन को सभापति के रूप में संबोधन किया था। उनका यही भाषण प्रगतिशील आंदोलन के घोषणा पत्र का आधार बना। प्रेमचंद ने हिन्दी में कहानी की एक परंपरा को जन्म दिया और एक पूरी पीढ़ी उनके कदमों पर आगे बढ़ी, 50-60 के दशक में रेणु, नागार्जुन और इनके बाद श्रीनाथ सिंह ने ग्रामीण परिवेश की कहानियाँ लिखी हैं, वो एक तरह से प्रेमचंद की परंपरा के तारतम्य में आती हैं। प्रेमचंद एक क्रांतिकारी रचनाकार थे, उन्होंने न केवल देशभक्ति बल्कि समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों को देखा और उनको कहानी के माध्यम से पहली बार लोगों के समक्ष रखा। उन्होंने उस समय के समाज की जो भी समस्याएँ थीं उन सभी को चित्रित करने की शुरुआत कर दी थी। उसमें दलित भी आते हैं, नारी भी आती हैं। ये सभी विषय आगे चलकर हिन्दी साहित्य के बड़े विमर्श बने। प्रेमचंद हिन्दी सिनेमा के सबसे अधिक लोकप्रिय साहित्यकारों में से हैं। सत्यजित राय ने उनकी दो कहानियों पर यादगार फिल्में बनाई। 1977 में शतरंज के खिलाड़ी और 1981 में सद्गति। उनके देहांत के दो वर्षों बाद के सुब्रमण्यम ने 1938 में सेवासदन उपन्यास पर फिल्म बनाई जिसमें सुब्बालक्ष्मी ने मुख्य भूमिका निभाई थी। 1977 में मृणाल सेन ने प्रेमचंद की कहानी कफन पर आधारित ओका ऊरी कथा नाम से एक तेलुगू फिल्म बनाई जिसको सर्वश्रेष्ठ तेलुगू फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला। 1963 में गोदान और 1966 में गबन उपन्यास पर लोकप्रिय फिल्में बनीं। 1980 में उनके उपन्यास पर बना टीवी धारावाहिक निर्मला भी बहुत लोकप्रिय हुआ था।

9.3.1 कृतित्व

हिन्दी कहानी के विकास के क्रम में प्रेमचंद का आगमन एक महत्वपूर्ण घटना है। सर्वप्रथम इन्हीं की कहानियों में सामाजिक परिवेश, उसकी कुप्रथा, असामानता, छुआछूत, शोषण की विभिषिका, कमजोर वर्ग और स्त्रियों का दमन आदि भावनाएँ उद्घाटित हुईं। उन्होंने आम आदमी के जीवन व उसकी परिस्थितियों को अत्यंत निकट से देखा। अछूतों की कठिनाईयों, समस्याओं तथा कथित उच्चवर्ग द्वारा दलितों पर कियो जाने वाले अत्याचार का खुलकर विरोध ही नहीं वर्णन भी किया।

प्रेमचंद की कहानियों के विषय में राजेन्द्र यादव ने लिखा है कि "वेश्या, अछूत, किसान, मजदूर, जमींदार, सरकारी अफसर, अध्यापक, नेता, क्लर्क तथा समाज के प्रायः हर वर्ग पर प्रेमचंद ने कहानियाँ लिखी हैं और राष्ट्रीय चेतना के अंतर्गत उनकी कहानियों में विशेष

उत्साह, आदर्शवाद और आवेश है। प्रेमचंद समस्या व हल दोनो एक साथ देते हैं। यही कहानी कला की विशेषता है।"

प्रेमचंद आधुनिक हिन्दी कहानी के पितामह माने जाते हैं। यों तो उनके साहित्यिक जीवन का आरंभ 1901 से हो चुका था, पर उनकी पहली हिन्दी कहानी सरस्वती पत्रिका के दिसंबर अंक में 1915 में सौत नाम से प्रकाशित हुई और 1936 में अंतिम कहानी कफन नाम से। बीस वर्षों की इस अवधि में उनकी कहानियों के अनेक रंग देखने को मिलते हैं। उनसे पहले हिंदी में काल्पनिक, एय्यारी और पौराणिक-धार्मिक रचनाएं ही की जाती थी। प्रेमचंद ने हिंदी में यथार्थवाद की शुरूआत की। भारतीय साहित्य का बहुत सा विमर्श जो बाद में प्रमुखता से उभरा चाहे वह दलित साहित्य हो या नारी साहित्य उसकी जड़ें कहीं गहरे प्रेमचंद के साहित्य में दिखाई देते हैं। अपूर्ण उपन्यास असरारे मआबिद के बाद देशभक्ति से परिपूर्ण कथाओं का संग्रह सोजे-वतन उनकी दूसरी कृति थी, जो 1907 में प्रकाशित हुई। इस पर अँग्रेजी सरकार की रोक और चेतावनी के कारण उन्हें नाम बदलकर लिखना पड़ा। प्रेमचंद नाम से उनकी पहली कहानी बड़े घर की बेटी जमाना पत्रिका के दिसंबर 1910 के अंक में प्रकाशित हुई। मरणोपरांत उनकी कहानियाँ मानसरोवर के आठ खंडों में प्रकाशित हुई। कहानी सम्राट प्रेमचन्द का कहना था कि साहित्यकार देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है। यह बात उनके साहित्य में उजागर हुई है। 1921 में उन्होंने महात्मा गांधी के आह्वान पर अपनी नौकरी छोड़ दी। कुछ महीने मर्यादा पत्रिका का संपादन भार संभाला, छः साल तक माधुरी नामक पत्रिका का संपादन किया, 1930 में बनारस से अपना मासिक पत्र हंस शुरू किया और 1932 के आरंभ में जागरण नामक साप्ताहिक पत्र निकाला। उन्होंने लखनऊ में आयोजित (1936) अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के सम्मेलन की अध्यक्षता की। उन्होंने मोहन दयाराम भवनानी की अजंता सिनेटोन कंपनी में कहानी-लेखक की नौकरी भी की। 1934 में प्रदर्शित मजदूर नामक फिल्म की कथा लिखी और कंट्रेक्ट की साल भर की अवधि पूरी किये बिना ही दो महीने का वेतन छोड़कर बनारस भाग आये क्योंकि बंबई (आधुनिक मुंबई) का और उससे भी ज्यादा वहाँ की फिल्मी दुनिया का हवा-पानी उन्हें रास नहीं आया। प्रेमचंद ने करीब तीन सौ कहानियाँ, कई उपन्यास और सैकडों लेख लिखे। उन्होंने कुछ नाटक भी लिखे और कुछ अनुवाद कार्य भी किया। प्रेमचंद के कई साहित्यिक कृतियों का अंग्रेजी, रूसी, जर्मन सहित अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ। गोदान उनकी कालजयी रचना है। कफन उनकी अंतिम कहानी मानी जाती है। तैंतीस वर्षों के रचनात्मक जीवन में वे साहित्य की ऐसी विरासत सौप गए जो गुणों की दृष्टि से अमूल्य है और आकार की दृष्टि से असीमित।

9.3.2 कृतियाँ

प्रेमचन्द की रचना-दृष्टि, विभिन्न साहित्य रूपों में, अभिव्यक्त हुई। वह बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, समीक्षा, लेख, सम्पादकीय, संस्मरण आदि अनेक विधाओं में साहित्य की सृष्टि की किन्तु प्रमुख रूप से वह कथाकार हैं। उन्हें अपने जीवन काल में ही 'उपन्यास सम्राट' की पदवी मिल गयी थी। उन्होंने कुल 15 उपन्यास, 300 से अधिक कहानियाँ, 3 नाटक, 10 अनुवाद, 7 बाल-पुस्तकें तथा हजारों पृष्ठों के लेख, सम्पादकीय, भाषण, भूमिका, पत्र आदि की रचना की। लेकिन जो यश और प्रतिष्ठा उन्हें उपन्यास और कहानियों से प्राप्त हुई, वह अन्य विधाओं से प्राप्त न हो सकी। यह स्थिति हिन्दी और उर्दू दोनों में समान रूप से दिखायी देती है। उन्होंने 'रंगभूमि' तक के सभी उपन्यास पहले उर्दू भाषा में लिखे थे और कायाकल्प से लेकर अपूर्ण उपन्यास 'मंगलसूत्र' तक सभी उपन्यास मूलतः हिन्दी में लिखे। प्रेमचन्द कथा-साहित्य में उनके उपन्यासकार का आरम्भ पहले होता है। उनका पहला उर्दू उपन्यास (अपूर्ण) 'असरारे मआबिद उर्फ देवस्थान रहस्य' उर्दू साप्ताहिक ''आवाज-ए-खल्क'' में 8 अक्तूबर, 1903 से 1 फरवरी, 1905 तक धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। उनकी पहली उर्दू कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' कानपुर से प्रकाशित होने वाली जमाना नामक पत्रिका में 1908 में छपी। उनके कुल 15 उपन्यास है, जिनमें 2 अपूर्ण है। बाद में इन्हें अनूदित या रूपान्तरित किया गया। प्रेमचन्द की मृत्यु के बाद भी उनकी कहानियों के कई सम्पादित संस्करण निकले जिनमें कफन और शेष रचनाएँ 1936 में तथा नारी जीवन की कहानियाँ 1938 में बनारस से प्रकाशित हुए। इसके बाद प्रेमचंद की ऐतिहासिक कहानियाँ तथा प्रेमचंद की प्रेम संबंधी कहानियाँ भी काफी लोकप्रिय साबित हुईं।

9.4 प्रेमचंद्र की कहानियों का रचना संसार

प्रेमचंद बचपन से ही खिलंदड़ स्वभाव के रहे। उनके इसी खिलाड़ी की छाप 'गुल्ली डंडा', 'शतरंज के खिलाड़ी', और 'बड़े भाई साहब' जैसी कहानियों में उजागर होती है। प्रेमचंद ने हिन्दी कहानी को निश्चित परिप्रेक्ष्य और कलात्मक आधार दिया। उनकी कहानियाँ परिवेश को बुनती हैं। पात्र चुनती है। उसके संवाद उसी भाव-भूमि से लिए जाते हैं, जिस भाव-भूमि में घटना घट रही है। इसलिए पाठक कहानी के साथ अनुस्यूत हो जाता है। इसलिए प्रेमचंद यथार्थवादी कहानीकार हैं। लेकिन वे घटना को ज्यों-का-त्यों लिखने को कहानी नहीं मानते। यही वजह है कि उनकी कहानियों में आदर्श और यथार्थ का गंगा-यमुनी संगम है।

कथाकार के रूप में प्रेमचंद अपने जीवनकाल में ही किंवदंती बन गये थे। उन्होंने मुख्यताः ग्रामीण एवं नागरिक सामाजिक जीवन को कहानियों का विषय बनाया है। उनकी कथायात्रा में श्रमिक विकास के लक्षण स्पष्ट हैं, यह विकास वस्तु विचार, अनुभव तथा शिल्प

सभी स्तरों पर अनुभव किया जा सकता है। उनका मानवतावाद अमूर्त भावात्मक नहीं, अपितु सुसंगत यथार्थवाद है।

प्रेमचंद की प्रत्येक कहानी मानव मन के अनेक दृश्यों चेतना के अनेक छोरों सामाजिक कुरीतियों तथा आर्थिक उत्पीड़न के विविध आयामों को अपनी संपूर्ण कलात्मकता के साथ अनावृत करती है। कफन, नमक का दारोगा, शतरंज के खिलाड़ी, वासना की कड़ियाँ, दुनिया का सबसे अनमोल रतन आदि सैकड़ों रचनाएँ ऐसी हैं, जो विचार और अनुभूति दोनों स्तरों पर पाठकों को आज भी आंदोलित करती हैं। वे एक कालजयी रचनाकार की मानवीय गरिमा के पक्ष में दी गई उद्घोषणाएँ हैं। समाज के दलित वर्गों, आर्थिक और सामाजिक यंत्रणा के शिकार मनुष्यों के अधिकारों के लिए जूझती मुंशी प्रेमचंद की कहानियाँ हमारे साहित्य की सबलतम निधि हैं। कहानी, साहित्य की सबलतम विधा है। वह एक ऐसा दर्पण है, जिसमें व्यक्ति और समाज के परस्पर संबंधों, क्रियाविधियों, उसके सुख-दुःख के क्षणों की सजीव, हृदयग्राही तथा मार्मिक तस्वीरें देखी जा सकती हैं। इसके उन्नयन और विकास में विश्व के अनेक कथाकारों ने जो योगदान किया, वह भाषा-शैली, रूप-विधान, कला-सौष्ठव तथा तकनीक की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह हिंदी कहानी की उपलब्धि है कि इसे अपने विकास के आदिकाल में मुंशी प्रेमचंद जैसे मानव मन के कुशल चितेरे मिले, जिनके कहानी साहित्य ने हिंदी-उर्दू में एक नए युग का सूत्रपात किया।

प्रेमचंद की कहानियों का फलक व्यापक है। हिंदी के प्रख्यात समीक्षक डॉ.गौतम सचदेव ने मुंशी प्रेमचंद की कहानियों का मूल्यांकन करते हुए कहा-विचार तत्व उनकी कहानियों का निर्देशक है। लाहौर के मासिक पत्र 'नौरंगे खयाल' के संपादक के यह पूछने पर कि आप कैसे लिखते हैं? प्रेमचंद जी ने उत्तर दिया, 'मेरी कहानियां प्रायः किसी न किसी प्रेरणा या अनुभव पर आधारित होती हैं। इसमें मैं ड्रामाई रंग पैदा करने की कोशिश करता हूँ। केवल घटना वर्णन के लिए या मनोरंजन घटना को लेकर मैं कहानियां नहीं लिखता। मैं कहानी में किसी दार्शनिक या भावनात्मक लक्ष्य को दिखाना चाहता हूं। जब तक इस प्रकार का कोई आधार नहीं मिलता, मेरी कलम नहीं उठती।' प्रेमचंद का उक्त वक्तव्य आज भी प्रासंगिक है। शिल्पगत विशेषताओं की दृष्टि से भी प्रेमचंद की कहानियां अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। अपने समकालीन कथा साहित्य और परवर्ती पीढ़ी को उनकी कहानियों ने यथेष्ट रूप से प्रभावित किया है।

9.5 प्रेमचंद के साहित्य की विशेषताएँ

9.5.1 कथ्य की दृष्टि से

प्रेमचंद हिंदी के युग प्रवर्तक रचनाकार हैं। उनकी रचनाओं में तत्कालीन इतिहास बोलता है। वे सर्वप्रथम उपन्यासकार थे, जिन्होंने उपन्यास साहित्य को तिलस्मी और ऐय्यारी से

बाहर निकाल कर उसे वास्तविक भूमि पर ला खड़ा किया। उन्होंने अपनी रचनाओं में जन-साधारण की भावनाओं, परिस्थितियों और उनकी समस्याओं का मार्मिक चित्रण किया। उनकी कृतियाँ भारत के सर्वाधिक विशाल और विस्तृत वर्ग की कृतियाँ हैं। प्रेमचंद की रचनाओं को देश में ही नहीं विदेशों में भी आदर प्राप्त हैं। प्रेमचंद और उनकी साहित्य का अंतर्राष्ट्रीय महत्व है। आज उन पर और उनके साहित्य पर विश्व के उस विशाल जन समूह को गर्व है जो साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और सामंतवाद के साथ संघर्ष में जुटा हुआ है। प्रेमचंद ने अपने पात्रों का चुनाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से किया है, किंतु उनकी दृष्टि समाज से उपेक्षित वर्ग की ओर अधिक रही है। प्रेमचंद जी ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को अपनाया है। उनके पात्र प्रायः वर्ग के प्रतिनिधि रूप में सामने आते हैं। घटनाओं के विकास के साथ-साथ उनकी रचनाओं में पात्रों के चरित्र का भी विकास होता चलता है। उनके कथोपकथन मनोवैज्ञानिक होते हैं। प्रेमचंद जी एक सच्चे समाज सुधारक और क्रांतिकारी लेखक थे। उन्होंने अपनी कृतियों में स्थान-स्थान पर दहेज, बेमेल विवाह आदि का सबल विरोध किया है। नारी के प्रति उनके मन में स्वाभाविक श्रद्धा थी। समाज में उपेक्षिता, अपमानिता और पतिता स्त्रियों के प्रति उनका हृदय सहानुभूति से परिपूर्ण रहा है।

9.5.2 भाषा की दृष्टि से

प्रेमचंद की भाषा सरल और सजीव और व्यावहारिक है। उसे साधारण पढ़े-लिखे लोग भी समझ लेते हैं। उसमें आवश्यकतानुसार अंग्रेजी, उर्दू, फारसी आदि के शब्दों का भी प्रयोग है। प्रेमचंद की भाषा भावों और विचारों के अनुकूल है। गंभीर भावों को व्यक्त करने में गंभीर भाषा और सरल भावों को व्यक्त करने में सरल भाषा को अपनाया गया है। इस कारण भाषा में स्वाभाविक उतार-चढ़ाव आ गया है। प्रेमचंद जी की भाषा पात्रों के अनुकूल है। उनके हिंदू पात्र हिंदी और मुस्लिम पात्र उर्दू बोलते हैं। इसी प्रकार ग्रामीण पात्रों की भाषा ग्रामीण है। और शिक्षितों की भाषा शुद्ध और परिष्कृत भाषा है। डा. नगेन्द्र लिखते हैं- 'उनके उपन्यासों की भाषा की खूबी यह है कि शब्दों के चुनाव एवं वाक्य-योजना की दृष्टि से उसे 'सरल' एवं 'बोलचाल की भाषा' कहा जाता है। पर भाषा की इस सरलता को निर्जीवता, एकरसता एवं अकाव्यात्मकता का पर्याय नहीं समझा जाना चाहिए। 'भाषा के सटीक, सार्थक एवं व्यंजनापूर्ण प्रयोग में वे अपने समकालीन ही नहीं, बाद के कहानीकारों को भी पीछे छोड़ जाते हैं।'

9.6 बड़े भाई साहब कहानी की विशेषता

प्रस्तुत पाठ 'बड़े भाई साहब' कहानी बालपन से पूर्ण चिंतन की ओर ले जाने की यात्रा है। बड़े भाई साहब द्वारा जीवन के अनुभव की बात करना जीवन के यथार्थपक्ष व उसके आदर्श का संकेत है। राष्ट्रीय चेतना में प्रेमचंद गांधी जी से प्रभावित थे। इनकी कहानियों में आदर्शवाद

के बदलते रूप स्पष्ट दीख पड़ते हैं जो समसामयिक युगबोध को स्पष्ट करते हैं। जहाँ बड़े घर की बेटी, पंचपरमेश्वर, नमक का दरोगा, उपदेश, परीक्षा, पूस की रात जैसी कहानियों में कर्त्तव्य, त्याग, प्रेम, न्याय, मित्रता, देश सेवा के भाव की प्रतिष्ठा हुई है वहीं 'बड़े भाई साहब', 'बूढ़ी काकी', जैसी कहानियों में उनका आदर्शवाद यथार्थ में परिवर्तित होता नजर आता है।

हिन्दी कहानी के विकास में मुंशी प्रेमचंद का महत्वपूर्ण योगदान है। डॉ0 नगेन्द्र ने लिखा है- ''हिन्दी कहानी अपने विकास की आरंभिक अवस्थाओं को पारकर वहाँ पहुँची जहाँ से हमें इसके श्रेष्ठ रूप के दर्शन होने लगते हैं। बड़े भाई साहब कहानी आदशोन्मुख यथार्थवाद का प्रतीक रूप है।''

यह कहानी इस बात का संदेश देती है कि कहीं न कहीं व्यक्ति को अपनी असफलता से निराश न होकर मन के अंर्ततम में परंपरागत आदर्शपूर्ण विचारों का परित्याग नहीं करना चाहिये। बड़े भाई साहब कहानी में जिस परंपरागत विचार की प्रस्तावना की गई है उसमें मानसिक खीझ मिटाने के लिये नियमों और निर्धारण का पूरा ध्यान रखा गया है। समाज के इसी प्रकार के हीन भावों-विचारों के यथार्थ को प्रेमचंद ने 'बड़े भाई साहब' कहानी में अभिव्यक्त किया है। प्रेमचंद की कहानियों में समस्या का उद्घाटन तो है किन्तु अत्याचार के विरोध का स्वर नहीं है। बड़े भाई साहब के बार-बार असफल होने के बाद भी छोटे को नसीहत दे देकर परेशान करने की प्रक्रिया छोटा भाई नहीं कर सका। यह कहानी आदर्शपूर्ण मानसिक यथार्थ का चिंतन मात्र बनकर रह गयी।

बड़े भाई साहब कहानी महज दो किरदारों के बीच घूमती हुई कहानी है। महज दो पात्रों के माध्यम से प्रेमचंद ने मानव मात्र की विडम्बनाओं को सहजता के साथ प्रस्तुत किया है। यह कहानी कई मायनों में प्रासंगिक होती जाती है। समय-संदर्भ की शिला पर यह कहानी अपनी उपयोगिता का भान करा ही देती है। यदि इस कहानी को अपने जीवनचर्या को मद्देनजर रखते हुए पढ़ें तो हमें मानव की उपदेशात्मक प्रवृत्ति का चित्र दिखाई देने लगता है। यदि कोई उम्र में बड़ा है तो उसकी क्या मजाल कि वो किसी छोटे से कोई सलाह ले, उल्टे वह तथाकथित उम्रदराज अपनी नाकामी के अनुभव को छोटों के उपर थोपेगा।

यदि इस कहानी का वाचन देश की व्यवस्था को ध्यान में रख कर किया जाय तो प्रतिफल प्राप्त होगा कि व्यवस्था स्वयं को देश का अभिभावक घोषित करके जनता पर मूल्यहीन योजनाओं को थोपती है। जनता रूपी ''छोटे भाई'' कितने ही होनहार क्यों न हों फिर भी जनता के प्रस्ताव को अनुभवहीनता का हवाला देते हुए ''बड़े भाई'' रूपी व्यवस्था खारिज कर देती है।

यदि ''बड़े भाई साहब'' का अध्ययन तत्कालीन परिस्थिति को ध्यान में रख कर पढ़ा जाय तो ज्ञात होगा कि कहानी के रचना का काल अंग्रेजी शासन काल का है। उस समय अंग्रेजी

व्यवस्था भारतीय जनमानस के बीच खुद को भारत का ''बड़ा भाई'' घोषित कर देश में मनमानी कर रही थी। प्रेमचंद ने इस कहानी में तत्कालीन भारत की व्यथा को अभिव्यक्त किया है। कहानी सम्राट प्रेमचंद अपने कुशलता से भारत की जनता को संदेश देते हैं कि अंग्रेज रूपी ''बड़े भाई'' हमारे ऊपर अपनी नाकामी का अनुभव थोपते रहेंगे लेकिन हम भारतीयों को ''छोटा भाई'' बनकर अपने कौशल का परिचय देना होगा।

मात्र दो पात्रों के माध्यम से पूरे हिन्दुस्तान का चित्र खींचने का कौशल सिर्फ प्रेमचंद जैसे निपुण रचनाकार में ही हो सकता है। एक मानव मात्र की सहज सोच को बड़ी बारीकी से शब्दों द्वारा चित्रित करने वाले अकेले कलाकार हैं मुंशी प्रेमचंद। ''बड़े भाई साहब'' की सोच आम आदमी की सोच है। हर हारा हुआ इंसान अपने अनुभव की शेखी बघारता रहता है। और जो वास्तव में विजेता रहता है वह तो सभी के अनुभव से कुछ न कुछ सीखता ही है।

9.7 प्रेमचंद:मूल्यांकन

वास्तव में प्रेमचंद का जीवन उनके साहित्य के समान ही रोचक, प्रेरणादायक एवं घटनापूर्ण होने के कारण लोगों को परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए एक श्रेष्ठ मानव बनने की मजबूत आधारभूत सामग्री प्रदान करता है। प्रेमचंद का जन्म चूंकि तीन बहनों के बाद हुआ था, इस कारण परिवार में वे विशेष दुलारे थे। प्रेमचंद जन-साहित्य निर्माता थे। उनकी रचनाओं में हजारों साल से मर्दित, शोषित और उपेक्षित जनता, यहां तक कि घरेलू जानवरों-कुत्ता, बैल आदि तक को प्रतिनिधित्व मिला। उनकी भावनाओं के साथ जन सामान्य की जीवन दृष्टि, उसकी आशा-आकांक्षा व समस्याओं का मार्मिक चित्रण और साथ ही उनके व्यावहारिक समाधान का जैसा उद्घाटन प्रेमचंद द्वारा किया गया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने अपने समय के भारत का जीवंत चित्र अपनी लेखनी के सहारे साहित्य जगत, के सामने रखकर किसानों और मजदूरों की कारूणिक दशा के निदर्शन के साथ औद्योगिकीकरण से उत्पन्न संकट, सांप्रदायिक वैमनस्य और अनेक कुप्रथाओं- जैसे-दहेज प्रथा, छुआछूत, वेश्यावृत्ति, बाल विवाह, विधवाओं की समस्या, परिवारों के विघटन आदि से जुड़ी घरेलू समस्याओं का, जो व्यावहारिक समाधान भारतीय समाज के समक्ष रखा है, वह अपनाए जाने योग्य है। उनकी समतामूलक मानवतावादी दृष्टि प्रेम की संजीवनी से पोषित और त्याग, करूणा, उदारता, नैतिकता व भाईचारे की भावना से और भी मजबूत हुई है। ये प्रवृत्तियाँ और मूल्य किसी भी राष्ट्र के नागरिक के लिए सदैव अनुकरणीय रहेंगे। इनसे देश और समाज की एकता भी अखण्डित रखी जा सकती है। प्रेमचंद युगानुरूप विकसित सांस्कृतिक पुनरूत्थान की चेतना, जीवनादर्शों और मानवीय संवेदना के कुशल संवाहक थे और यही विशेषता उन्हें रामानंद, कबीर और गोस्वामी तुलसीदास जैसे लोक नायकों से जोड़ती है।

अभ्यास प्रश्न

(1) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. प्रेमचंद का जन्म.............वर्ष में हुआ था।
2. प्रेमचंद को उपन्यास ....कहा जाता है।
3. प्रेमचंद के बचपन का नाम.............था।
4. प्रेमचंद उर्दू में..........नाम से लिखते थे।
5. प्रेमचंद की कहानी संग्रह.............अंग्रेज सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था।
6. प्रेमचंद की पहली हिंदी कहानी.............थी।
7. प्रेमचंद की अंतिम कहानी...........थी।
8. ....प्रेमचंद का अंतिम उपन्यास है।
9. हंस पत्रिका का संपादक प्रेमचंद ने.................वर्ष से प्रारंभ किया था।
10. जमाना संपादक दयानारायण निगम ने..................नाम से लिखने की सलाह दी।

9.8 सारांश

प्रेमचंद साहित्य लेखन को उद्देश्यपरक मानते हैं और इसी भाव को बड़े भाई साहब कहानी में उन्होंने जय-पराजय (पास-फेल) के बीच संघर्षपूर्ण विचारों में परंपरागत आदर्श की जीत को मुख्य उद्देश्य माना है। बड़े भाई साहब का बार-बार एक ही कक्षा में फेल होकर भी छोटे भाई को पढ़ाई के प्रति सतर्क नसीहत देना परंपरा का आदर्शवादी यथार्थ स्वरूप है। बड़प्पन को जबरन आदर्श की तरह ओढ़े भाई साहब अंततः छोटे भाई को नसीहत देते-देते स्वयं ‘कनकौआ’(पतंग) लूटकर भागते हैं- यह जबरदस्ती के आदर्श में छिपी मानसिकता का प्रतीक है। इसमें पात्रों का बड़ा ही सूक्ष्म, स्पष्ट मनोवैज्ञानिक चिंतन प्रस्तुत हुआ है। पढ़ाई के लिए नित्य टाइम-टेबल बनाना फिर खेलने के समय उसे ध्वस्त कर देना। बावजूद कक्षा में छोटे भाई का अव्वल आना तथा बड़े भाई साहब का बार-बार एक ही कक्षा में फेल होकर भी छोटे भाई को पढ़ाई के लिए डाँटना स्वयं उनके अपराधबोध या हीन भावना को उजागर करता है।

9.9 शब्दावली

1. अकाव्यात्मकता - जिस भाषा की प्रयुक्ति काव्यात्मक न हो।
2. अपराधबोध - अपनी गलतियों से उत्पन्न हुई हीनता ग्रंथि
3. औद्योगिकीकरण - कल-कारखानों के वर्चस्व की संस्कृति
4. सांप्रदायिकता - दूसरे धर्म के प्रति कट्टरता की भावना

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 1880
2. सम्राट
3. धनपतराय
4. नवाबराय
5. सोजे-वतन
6. सौत
7. कफन
8. गोदान
9. 1930
10. प्रेमचंद

9.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, नामवर, कहानी नयी कहानी, लोक भारती प्रकाशन।
2. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा
3. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पब्लिकेशन।

9.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रेमचंद को कहानी शिल्प की विवेचना करें।
2. प्रेमचंद की भाषा शिल्प पर प्रकाश डालें।
3. ''बड़े भाई साहब'' कहानी का उद्देश्य लिखें।

इकाई 10 बड़े भाई साहब : पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 मूलपाठ
10.4 आलोचनात्मक संदर्भ
10.5 सारांश
10.6 शब्दावली
10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
10.9 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

इस इकाई में कथा सम्राट प्रेमचंद की कहानी 'बड़े भाई साहब' के मूलपाठ का अध्ययन किया जा रहा है। इस कहानी में हार-जीत का द्वन्द्व एवं छोटे की सफलता से उपजी अपराधबोध भावना का मार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक वर्णन है। ईर्ष्या का छिपा हुआ भाव या दबी कुचली मानसिकता के प्रतीक बड़े भाई साहब संभवतः हिंदी की प्रथम अनूठी कहानी है जिसमें हारे हुए को हरिनाम नहीं दूसरों को नसीहत देने में किंचित शांति मिलती है। यह प्रेमचंद की सफल मनोवैज्ञानिक रचना है।

10.2 उद्देश्य

बी0ए0एच0एल0-101 की यह दसवीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

- प्रेमचंद की कहानी ''बड़े भाई साहब'' का मूलपाठ से परिचित होंगे।

- ''बड़े भाई साहब'' कहानी की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- मूलपाठ के माध्यम से प्रेमचंद के कहानी कौशल से परिचित हो सकेंगे।
- प्रेमचंद की कहानी में आये पारिभाषिक शब्दावलियों से परिचित हो सकेंगे।
- प्रेमचंद संबंधी विभिन्न आलोचकों के मतों से परिचित हो सकेंगे।

10.3 मूलपाठ

1.

मेरे भाई साहब मुझसे पाँच साल बड़े थे, लेकिन तीन दरजे आगे। उन्होंने भी उसी उम्र में पढ़ना शुरू किया था जब मैंने शुरू किया; लेकिन तालीम जैसे महत्व के मामले में वह जल्दीबाजी से काम लेना पसंद न करते थे। इस भवन की बुनियाद खूब मजबूत डालना चाहते थे जिस पर आलीशान महल बन सके। एक साल का काम दो साल में करते थे। कभी-कभी तीन साल भी लग जाते थे। बुनियाद ही पुख्ता न हो, तो मकान कैसे पाएदार बने।

मैं छोटा था, वह बड़े थे। मेरी उम्र नौ साल कि, वह चौदह साल के थे। उन्हें मेरी तम्बीह और निगरानी का पूरा जन्मसिद्ध अधिकार था। और मेरी शालीनता इसी में थी कि उनके हुक्म को कानून समझूँ।

वह स्वभाव से बड़े अध्ययनशील थे। हरदम किताब खोले बैठे रहते और शायद दिमाग को आराम देने के लिए कभी कापी पर, कभी किताब के हाशियों पर चिड़ियों, कुत्तों, बिल्लियों की तस्वीरें बनाया करते थे। कभी-कभी एक ही नाम या शब्द या वाक्य दस-बीस बार लिख डालते। कभी एक शेर को बार-बार सुन्दर अक्षर से नकल करते। कभी ऐसी शब्द-रचना करते, जिसमें न कोई अर्थ होता, न कोई सामंजस्य! मसलन एक बार उनकी कापी पर मैंने यह इबारत देखी-स्पेशल, अमीना, भाइयों-भाइयों, दर-असल, भाई-भाई, राधेश्याम, श्रीयुत राधेश्याम, एक घंटे तक इसके बाद एक आदमी का चेहरा बना हुआ था। मैंने चेष्टा की कि इस पहेली का कोई अर्थ निकालूँ; लेकिन असफल रहा और उनसे पूछने का साहस न हुआ। वह नवीं जमात में थे, मैं पाँचवीं में। उनकी रचनाओं को समझना मेरे लिए छोटा मुंह बड़ी बात थी।

मेरा जी पढ़ने में बिल्कुल न लगता था। एक घंटा भी किताब लेकर बैठना पहाड़ था। मौका पाते ही होस्टल से निकलकर मैदान में आ जाता और कभी कंकरियाँ उछालता, कभी कागज की तितलियाँ उड़ाता, और कहीं कोई साथी मिल गया तो पूछना ही क्या कभी चारदीवारी पर चढ़कर नीचे कूद रहे है, कभी फाटक पर वार, उसे आगे-पीछे चलाते हुए मोटरकार का आनंद उठा रहे हैं। लेकिन कमरे में आते ही भाई साहब का रौद्र रूप देखकर प्राण सूख जाते। उनका पहला सवाल होता- 'कहाँ थे?' हमेशा यही सवाल, इसी ध्वनि में पूछा जाता

था और इसका जवाब मेरे पास केवल मौन था। न जाने मुंह से यह बात क्यों न निकलती कि जरा बाहर खेल रहा था। मेरा मौन कह देता था कि मुझे अपना अपराध स्वीकार है और भाई साहब के लिए इसके सिवा और कोई इलाज न था कि रोष से मिले हुए शब्दों में मेरा सत्कार करें।

'इस तरह अंग्रेजी पढ़ोगे, तो जिन्दगी-भर पढ़ते रहोगे और एक हर्फ न आएगा। अँगरेजी पढ़ना कोई हंसी-खेल नहीं है कि जो चाहे पढ़ ले, नहीं, ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा सभी अंगरेजी कि विद्वान हो जाते। यहाँ रात-दिन आंखे फोड़नी पड़ती है और खून जलाना पड़ता है, जब कही यह विद्या आती है। और आती क्या है, हाँ, कहने को आ जाती है। बड़े-बड़े विद्वान भी शुद्ध अंगरेजी नहीं लिख सकते, बोलना तो दूर रहा। और मैं कहता हूँ, तुम कितने घोंघा हो कि मुझे देखकर भी सबक नही लेते। मैं कितनी मेहनत करता हूँ, तुम अपनी आंखो देखते हो, अगर नही देखते, जो यह तुम्हारी आंखों का कसूर है, तुम्हारी बुद्धि का कसूर है। इतने मेले-तमाशे होते हैं, मुझे तुमने कभी देखने जाते देखा है, रोज ही क्रिकेट और हाकी मैच होते हैं। मैं पास नही फटकता। हमेशा पढ़ता रहा हूं, उस पर भी एक-एक दरजे में दो-दो, तीन-तीन साल पड़ा रहता हूं फिर तुम कैसे आशा करते हो कि तुम यों खेल-कुद में वक्त गंवाकर पास हो जाओगे? मुझे तो दो-ही-तीन साल लगते हैं, तुम उम्र-भर इसी दरजे में पड़ेसड़ते रहोगे। अगर तुम्हें इस तरह उम्र गंवानी है, तो बेहतर है, घर चले जाओ और मजे से गुल्ली-डंडा खेलो। दादा की गाढ़ी कमाई के रूपये क्यों बरबाद करते हो?'

मैं यह लताड़ सुनकर आंसू बहाने लगता। जवाब ही क्या था। अपराध तो मैंने किया, लताड़ कौन सहे? भाई साहब उपदेश की कला में निपुण थे। ऐसी-ऐसी लगती बातें कहते, ऐसे-ऐसे सूक्ति-बाण चलाते कि मेरे जिगर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते और हिम्मत छूट जाती। इस तरह जान तोड़कर मेहनत करने कि शक्ति मैं अपने में न पाता था और उस निराशा में जरा देर के लिए मैं सोचने लगता-क्यों न घर चला जाऊँ। जो काम मेरे बूते के बाहर है, उसमें हाथ डालकर क्यों अपनी जिन्दगी खराब करूं। मुझे अपना मूर्ख रहना मंजूर था; लेकिन उतनी मेहनत से मुझे तो चक्कर आ जाता था। लेकिन घंटे-दो घंटे बाद निराशा के बादल फट जाते और मैं इरादा करता कि आगे से खूब जी लगाकर पढ़ूंगा। चटपट एक टाइम-टेबिल बना डालता। बिना पहले से नक्शा बनाए, बिना कोई स्कीम तैयार किए काम कैसे शुरू करूं? टाइम-टेबिल में, खेल-कूद की मद बिल्कुल उड़ जाती। प्रातःकाल उठना, छः बजे मुंह-हाथ धो, नाश्ता कर पढ़ने बैठ जाना। छः से आठ तक अंग्रेजी, आठ से नौ तक हिसाब, नौ से साढ़े नौ तक इतिहास, फिर भोजन और स्कूल। साढे तीन बजे स्कूल से वापस होकर आधा घंण्टा आराम, चार से पांच तक भूगोल, पांच से छः तक ग्रामर, आघा घंटा होस्टल के सामने टहलना, साढे छः से सात तक अंग्रेजी कम्पोजीशन, फिर भोजन करके आठ से नौ तक अनुवाद, नौ से दस तक हिन्दी, दस से ग्यारह तक विविध विषय, फिर विश्राम।

मगर टाइम-टेबिल बना लेना एक बात है, उस पर अमल करना दूसरी बात। पहले ही दिन से उसकी अवहेलना शुरू हो जाती। मैदान की वह सुखद हरियाली, हवा के वह हलके-हलके झोंके, फुटबाल की उछल-कूद, कबड्डी के वह दांव-घात, वाली-बाल की वह तेजी और फुरती मुझे अज्ञात और अनिर्वाय रूप से खींच ले जाती और वहाँ जाते ही मैं सब कुछ भूल जाता। वह जान-लेवा टाइम- टेबिल, वह आंखफोड़ पुस्तकें किसी कि याद न रहती, और फिर भाई साहब को नसीहत और फजीहत का अवसर मिल जाता। मैं उनके साये से भागता, उनकी आंखो से दूर रहने कि चेष्टा करता। कमरे में इस तरह दबे पांव आता कि उन्हें खबर न हो। उनकी नजर मेरी ओर उठी और मेरे प्राण निकले। हमेशा सिर पर नंगी तलवार-सी लटकती मालूम होती। फिर भी जैसे मौत और विपत्ति के बीच में भी आदमी मोह और माया के बंधन में जकड़ा रहता है, मैं फटकार और घुड़कियां खाकर भी खेल-कूद का तिरस्कार न कर सकता।

2.

सालाना इम्तहान हुआ। भाई साहब फेल हो गए, मैं पास हो गया और दरजे में प्रथम आया। मेरे और उनके बीच केवल दो साल का अन्तर रह गया। जी में आया, भाई साहब को आड़े हाथो लूँ-आपकी वह घोर तपस्या कहाँ गई? मुझे देखिए, मजे से खेलता भी रहा और दरजे में अव्वल भी हूँ। लेकिन वह इतने दुःखी और उदास थे कि मुझे उनसे दिली हमदर्दी हुई और उनके घाव पर नमक छिड़कने का विचार ही लज्जास्पद जान पड़ा। हाँ, अब मुझे अपने ऊपर कुछ अभिमान हुआ और आत्माभिमान भी बढ़ा, भाई साहब का वहरोब मुझ पर न रहा। आजादी से खेल-कूद में शरीक होने लगा। दिल मजबूत था। अगर उन्होंने फिर मेरी फजीहत की, तो साफ कह दूँगा- आपने अपना खून जलाकर कौन-सा तीर मार लिया। मैं तो खेलते-कूदते दरजे में अव्वल आ गया। जबाव से यह हेकड़ी जताने का साहस न होने पर भी मेरे रंग-ढंग से साफ जाहिर होता था कि भाई साहब का वह आतंक अब मुझ पर नहीं है। भाई साहब ने इसे भाँप लिया-उनकी सहस बुद्धि बड़ी तीव्र थी और एक दिन जब मैं भोर का सारा समय गुल्ली-डंडे कि भेंट करके ठीक भोजन के समय लौटा, तो भाई साइब ने मानों तलवार खींच ली और मुझ पर टूट पड़े-देखता हूँ, इस साल पास हो गए और दरजे में अव्वल आ गए, तो तुम्हें दिमाग हो गया है; मगर भाईजान, घमंड तो बड़े-बड़े का नहीं रहा, तुम्हारी क्या हस्ती है, इतिहास में रावण का हाल तो पढ़ा ही होगा। उसके चरित्र से तुमने कौन-सा उपदेश लिया? या यों ही पढ़ गए? महज इम्तहान पास कर लेना कोई चीज नहीं, असल चीज है बुद्धि का विकास। जो कुछ पढ़ो, उसका अभिप्राय समझो। रावण भूमंडल का स्वामी था। ऐसे राजों को चक्रवर्ती कहते हैं। आजकल अंगरेजों के राज्य का विस्तार बहुत बढ़ा हुआ है, पर इन्हें चक्रवर्ती नहीं कह सकते। संसार में अनेकों राष्ट्र अँगरेजों का आधिपत्य स्वीकार नहीं करते। बिलकुल स्वाधीन हैं। रावण चक्रवर्ती राजा था। संसार के सभी महीप उसे कर देते थे। बड़े-बड़े देवता उसकी गुलामी करते थे। आग और पानी के देवता भी उसके दास थे; मगर उसका अंत क्या हुआ, घमंड ने उसका नाम-

निशान तक मिटा दिया, कोई उसे एक चिल्लू पानी देनेवाला भी न बचा। आदमी जो कुकर्म चाहे करेंय पर अभिमान न करे, इतराए नहीं। अभिमान किया और दीन-दुनिया से गया।

शैतान का हाल भी पढ़ा ही होगा। उसे यह अनुमान हुआ था कि ईश्वर का उससे बढ़कर सच्चा भक्त कोई है ही नहीं। अन्त में यह हुआ कि स्वर्ग से नरक में ढकेल दिया गया। शाहेम ने भी एक बार अहंकार किया था। भीख मांग-मांगकर मर गया। तुमने तो अभी केवल एक दरजा पास किया है और अभी से तुम्हारा सिर फिर गया, तब तो तुम आगे बढ़ चुके। यह समझ लो कि तुम अपनी मेहनत से नहीं पास हुए, अन्धे के हाथ बटेर लग गई। मगर बटेर केवल एक बार हाथ लग सकती है, बार-बार नहीं। कभी-कभी गुल्ली-डंडे में भी अंधा चोट निशाना पड़ जाता है। उससे कोई सफल खिलाड़ी नहीं हो जाता। सफल खिलाड़ी वह है, जिसका कोई निशान खाली न जाए।

मेरे फेल होने पर न जाओ। मेरे दरजे में आओगे, तो दाँतो पसीना आयगा। जब अलजबरा और जामेट्री के लोहे के चने चबाने पड़ेंगे और इंगलिस्तान का इतिहास पढ़ना पड़ेगा! बादशाहों के नाम याद रखना आसान नहीं। आठ-आठ हेनरी को गुजरे हैं कौन-सा कांड किस हेनरी के समय हुआ, क्या यह याद कर लेना आसान समझते हो? हेनरी सातवें की जगह हेनरी आठवां लिखा और सब नम्बर गायब! सफाचट। सिर्फ भी न मिलेगा, सिफर भी! हो किस ख्याल में! दरजनों तो जेम्स हुए हैं, दरजनो विलियम, कोड़ियों चार्ल्स दिमाग चक्कर खाने लगता है। आंधी रोग हो जाता है। इन अभागों को नाम भी न जुड़ते थे। एक ही नाम के पीछे दोयम, तेयम, चहारम, पंचम लगाते चले गए। मुझसे पूछते, तो दस लाख नाम बता देता। और जामेट्री तो बस खुदा की पनाह! अ ब ज की जगह अ ज ब लिख दिया और सारे नम्बर कट गए। कोई इन निर्दयी मुमतहिनों से नहीं पूछता कि आखिर अ ब ज और अ ज ब में क्या फर्क है और व्यर्थ की बात के लिए क्यों छात्रों का खून करते हो दाल-भात-रोटी खायी या भात-दाल- रोटी खायी, इसमें क्या रखा है; मगर इन परीक्षकों को क्या परवाह! वह तो वही देखते हैं, जो पुस्तक में लिखा है। चाहते हैं कि लडके अक्षर-अक्षर रट डालें। और इसी रटंत का नाम शिक्षा रख छोड़ा है और आखिर इन बे-सिर-पैर की बातों के पढ़ने से क्या फायदा?

इस रेखा पर वह लम्ब गिरा दो, तो आधार लम्ब से दुगना होगा। पूछिए, इससे प्रयोजन? दुगना नहीं, चौगुना हो जाए, या आधा ही रहे, मेरी बला से, लेकिन परीक्षा में पास होना है, तो यह सब खुराफात याद करनी पड़ेगी। कह दिया-'समय की पाबंदी' पर एक निबन्ध लिखो, जो चार पन्नों से कम न हो। अब आप कापी सामने खोले, कलम हाथ में लिये, उसके नाम को रोइए।

कौन नहीं जानता कि समय की पाबन्दी बहुत अच्छी बात है। इससे आदमी के जीवन में संयम आ जाता है, दूसरों का उस पर स्नेह होने लगता है और उसके करोबार में उन्नति होती है; जरा-सी बात पर चार पन्ने कैसे लिखें? जो बात एक वाक्य में कही जा सके, उसे चार पन्ने में

लिखने की जरूरत? मैं तो इसे हिमाकत समझता हूँ। यह तो समय की किफायत नहीं, बल्कि उसका दुरूपयोग है कि व्यर्थ में किसी बात को ठूंस दिया। हम चाहते हैं, आदमी को जो कुछ कहना हो, चटपट कह दे और अपनी राह ले। मगर नहीं, आपको चार पन्ने रंगने पडेंगे, चाहे जैसे लिखिए और पन्ने भी पूरे फुलस्केप आकार के। यह छात्रों पर अत्याचार नहीं तो और क्या है? अनर्थ तो यह है कि कहा जाता है, संक्षेप में लिखो। समय की पाबन्दी पर संक्षेप में एक निबन्ध लिखो, जो चार पन्नो से कम न हो। ठीक! संक्षेप में चार पन्ने हुए, नहीं शायद सौ-दो सौ पन्ने लिखवाते। तेज भी दौडिए और धीरे-धीरे भी। है उल्टी बात या नहीं? बालक भी इतनी-सी बात समझ सकता है, लेकिन इन अध्यापकों को इतनी तमीज भी नहीं। उस पर दावा है कि हम अध्यापक है। मेरे दरजे में आओगे लाला, तो ये सारे पापड़ बेलने पड़ेंगे और तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा। इस दरजे में अव्वल आ गए हो, वो जमीन पर पांव नहीं रखते इसलिए मेरा कहना मानिए। लाख फेल हो गया हूँ, लेकिन तुमसे बड़ा हूँ, संसार का मुझे तुमसे ज्यादा अनुभव है। जो कुछ कहता हूँ, उसे गिरह बांधिए नहीं पछताएँगे।

स्कूल का समय निकट था, नहीं इश्वर जाने, यह उपदेश-माला कब समाप्त होती। भोजन आज मुझे निस्स्वाद-सा लग रहा था। जब पास होने पर यह तिरस्कार हो रहा है, तो फेल हो जाने पर तो शायद प्राण ही ले लिए जाएं। भाई साहब ने अपने दरजे की पढ़ाई का जो भयंकर चित्र खींचा था; उसने मुझे भयभीत कर दिया। कैसे स्कूल छोड़कर घर नहीं भागा, यही ताज्जुब है; लेकिन इतने तिरस्कार पर भी पुस्तकों में मेरी अरुचि ज्यों-कि-त्यों बनी रही। खेल-कूद का कोई अवसर हाथ से न जाने देता। पढ़ता भी था, मगर बहुत कम। बस, इतना कि रोज का टास्क पूरा हो जाए और दरजे में जलील न होना पड़े। अपने ऊपर जो विश्वास पैदा हुआ था, वह फिर लुप्त हो गया और फिर चोरों का-सा जीवन कटने लगा।

3.

फिर सालाना इम्तहान हुआ, और कुछ ऐसा संयोग हुआ कि मै फिर पास हुआ और भाई साहब फिर फेल हो गए। मैंने बहुत मेहनत न की पर न जाने, कैसे दरजे में अव्वल आ गया। मुझे खुद अचरज हुआ। भाई साहब ने प्राणांतक परिश्रम किया था। कोर्स का एक-एक शब्द चाट गये थे; दस बजे रात तक इधर, चार बजे भोर से उभर, छः से साढ़े नौ तक स्कूल जाने के पहले। मुद्रा कांतिहीन हो गई थी, मगर बेचारे फेल हो गए। मुझे उन पर दया आती थी। नतीजा सुनाया गया, तो वह रो पड़े और मैं भी रोने लगा। अपने पास होने वाली खुशी आधी हो गई। मैं भी फेल हो गया होता, तो भाई साहब को इतना दुःख न होता, लेकिन विधि की बात कौन टाले?

मेरे और भाई साहब के बीच में अब केवल एक दरजे का अन्तर और रह गया। मेरे मन में एक कुटिल भावना उदय हुई कि कहीं भाई साहब एक साल और फेल हो जाएँ, तो मैं उनके बराबर हो जाऊं, फिर वह किस आधार पर मेरी फजीहत कर सकेंगे, लेकिन मैंने इस कमीने विचार को दिल से बलपूर्वक निकाल डाला। आखिर वह मुझे मेरे हित के विचार से ही तो डांटते

हैं। मुझे उस वक्त अप्रिय लगता है अवश्य, मगर यह शायद उनके उपदेशों का ही असर हो कि मैं दनादन पास होता जाता हूँ और इतने अच्छे नम्बरों से।

अबकी भाई साहब बहुत-कुछ नर्म पड़ गए थे। कई बार मुझे डांटने का अवसर पाकर भी उन्होंने धीरज से काम लिया। शायद अब वह खुद समझने लगे थे कि मुझे डांटने का अधिकार उन्हे नही रहा; या रहा तो बहुत कम। मेरी स्वच्छंदता भी बढ़ी। मैं उनकी सहिष्णुता का अनुचित लाभ उठाने लगा। मुझे कुछ ऐसी धारणा हुई कि मैं तो पास ही हो जाऊंगा, पढ़ूं या न पढ़ूं मेरी तकदीर बलवान् है, इसलिए भाई साहब के डर से जो थोडा-बहुत बढ़ लिया करता था, वह भी बंद हुआ। मुझे कनकौए उड़ाने का नया शौक पैदा हो गया था और अब सारा समय पतंगबाजी ही की भेंट होता था, फिर भी मैं भाई साहब का अदब करता था, और उनकी नजर बचाकर कनकौए उड़ाता था। मांझा देना, कन्ने बांधना, पतंग टूर्नामेंट की तैयारियां आदि समस्याएँ अब गुप्त रूप से हल की जाती थीं। भाई साहब को यह संदेह न करने देना चाहता था कि उनका सम्मान और लिहाज मेरी नजरों से कम हो गया है।

एक दिन संध्या समय होस्टल से दूर मैं एक कनकौआ लूटने बेतहाशा दौड़ा जा रहा था। आंखें आसमान की ओर थीं और मन उस आकाशगामी पथिक की ओर, जो मंद गति से झूमता पतंग की ओर चला जा रहा था, मानों कोई आत्मा स्वर्ग से निकलकर विरक्त मन से नए संस्कार ग्रहण करने जा रही हो। बालकों की एक पूरी सेना लग्गे और झड़दार बांस लिये उनका स्वागत करने को दौड़ी आ रही थी। किसी को अपने आगे-पीछे की खबर न थी। सभी मानो उस पतंग के साथ ही आकाश में उड़ रहे थे, जहाँ सब कुछ समतल है, न मोटरकारे है, न ट्राम, न गाड़ियाँ।

सहसा भाई साहब से मेरी मुठभेड़ हो गई, जो शायद बाजार से लौट रहे थे। उन्होंने वही मेरा हाथ पकड़ लिया और उग्रभाव से बोले-इन बाजारी लौंडो के साथ धेले के कनकौए के लिए दौड़ते तुम्हें शर्म नहीं आती? तुम्हें इसका भी कुछ लिहाज नहीं कि अब नीची जमात में नहीं हो, बल्कि आठवीं जमात में आ गये हो और मुझसे केवल एक दरजा नीचे हो। आखिर आदमी को कुछ तो अपनी पोजीशन का ख्याल करना चाहिए। एक जमाना था कि कि लोग आठवां दरजा पास करके नायब तहसीलदार हो जाते थे। मैं कितने ही मिडलचियों को जानता हूँ, जो आज अव्वल दरजे के डिप्टी मजिस्ट्रेट या सुपरिटेंडेंट है। कितने ही आठवी जमाअत वाले हमारे लीडर और समाचार-पत्रों के सम्पादक हैं। बड़े-बड़े विद्वान उनकी मातहती में काम करते हैं और तुम उसी आठवें दरजे में आकर बाजारी लौंडों के साथ कनकौए के लिए दौड़ रहे हो। मुझे तुम्हारी इस कमअकली पर दुःख होता है। तुम जहीन हो, इसमें शक नहीं; लेकिन वह जेहन किस काम का, जो हमारे आत्मगौरव की हत्या कर डाले? तुम अपने दिन में समझते होगे, मैं भाई साहब से महज एक दर्जा नीचे हूं और अब उन्हें मुझको कुछ कहने का हक नही है; लेकिन यह तुम्हारी गलती है। मैं तुमसे पांच साल बड़ा हूं और चाहे आज तुम मेरी ही जमाअत में आ जाओ- और परीक्षकों का यही हाल है, तो निस्संदेह अगले साल तुम मेरे समकक्ष हो जाओगे और शायद

एक साल बाद तुम मुझसे आगे निकल जाओ-लेकिन मुझमें और जो पांच साल का अन्तर है, उसे तुम क्या, खुदा भी नहीं मिटा सकता। मैं तुमसे पांच साल बड़ा हूँ और हमेशा रहूंगा। मुझे दुनिया का और जिन्दगी का जो तजुरबा है, तुम उसकी बराबरी नहीं कर सकते, चाहे तुम एम. ए., डी. फिल. और डी. लिट. ही क्यों न हो जाओ। समझ किताबें पढ़ने से नहीं आती है। हमारी अम्मा ने कोई दरजा पास नहीं किया, और दादा भी शायद पांचवी जमाअत के आगे नहीं गये, लेकिन हम दोनों चाहें सारी दुनिया की विधा पढ़ लें, अम्मा और दादा को हमें समझाने और सुधारने का अधिकार हमेशा रहेगा। केवल इसलिए नहीं कि वे हमारे जन्मदाता है, बल्कि इसलिए कि उन्हें दुनिया का हमसे ज्यादा तजुरबा है और रहेगा। अमेरिका में किस तरह कि राज्य-व्यवस्था है और आठवें हेनरी ने कितने विवाह किये और आकाश में कितने नक्षत्र हैं, यह बातें चाहे उन्हे न मालूम हों, लेकिन हजारों ऐसी बातें हैं, जिनका ज्ञान उन्हें हमसे और तुमसे ज्यादा है।

दैव न करें, आज मैं बीमार हो आऊं, तो तुम्हारे हाथ-पांव फूल जाएंगे। दादा को तार देने के सिवा तुम्हें और कुछ न सूझेगा; लेकिन तुम्हारी जगह पर दादा हों, तो किसी को तार न दें, न घबराएं, न बदहवास हों। पहले खुद मरज पहचानकर इलाज करेंगे, उसमें सफल न हुए, तो किसी डाक्टर को बुलायेगें। बीमारी तो खैर बड़ी चीज है। हम-तुम तो इतना भी नहीं जानते कि महीने-भर का खर्च महीने-भर कैसे चले। जो कुछ दादा भेजते हैं, उसे हम बीस-बाईस तक खर्च कर डालते हैं और पैसे-पैसे को मोहताज हो जाते हैं। नाश्ता बंद हो जाता है, धोबी और नाई से मुंह चुराने लगते हैं; लेकिन जितना आज हम और तुम खर्च कर रहे हैं, उसके आधे में दादा ने अपनी उम्र का बड़ा भाग इज्जत और नेकनामी के साथ निभाया है और एक कुटुम्ब का पालन किया है, जिसमे सब मिलाकर नौ आदमी थे। अपने हेडमास्टर साहब ही को देखो। एम.ए. हैं कि नहीं, और यहाँ के एम.ए. नहीं, ऑक्सफोर्ड के। एक हजार रुपये पाते हैं, लेकिन उनके घर इंतजाम कौन करता है? उनकी बूढ़ी मां। हेडमास्टर साहब की डिग्री यहाँ बेकार हो गई। पहले खुद घर का इंतजाम करते थे। खर्च पूरा न पड़ता था। करजदार रहते थे। जब से उनकी माताजी ने प्रबंध अपने हाथ मे ले लिया है, जैसे घर में लक्ष्मी आ गई है। तो भाईजान, यह जरूर दिल से निकाल डालो कि तुम मेरे समीप आ गये हो और अब स्वतंत्र हो। मेरे देखते तुम बेराह नहीं चल पाओगे। अगर तुम यों न मानोगे, तो मैं (थप्पड़ दिखाकर) इसका प्रयोग भी कर सकता हूँ। मैं जानता हूँ, तुम्हें मेरी बातें जहर लग रही हैं।

मैं उनकी इस नई युक्ति से नतमस्तक हो गया। मुझे आज सचमुच अपनी लघुता का अनुभव हुआ और भाई साहब के प्रति मेरे तम में श्रद्धा उत्पन्न हुई। मैंने सजल आंखों से कहा- हरगिज नहीं। आप जो कुछ फरमा रहे हैं, वह बिलकुल सच है और आपको कहने का अधिकार है।

भाई साहब ने मुझे गले लगा लिया और बाल-कनकौए उड़ान को मना नहीं करता। मेरा जी भी ललचाता है, लेकिन क्या करूँ, खुद बेराह चलूं तो तुम्हारी रक्षा कैसे करूँ? यह कर्त्तव्य भी तो मेरे सिर पर है।

संयोग से उसी वक्त एक कटा हुआ कनकौआ हमारे ऊपर से गुजरा। उसकी डोर लटक रही थी। लड़कों का एक गोल पीछे-पीछे दौड़ा चला आता था। भाई साहब लंबे हैं ही, उछलकर उसकी डोर पकड़ ली और बेतहाशा होस्टल की तरफ दौड़े। मैं पीछे-पीछे दौड़ रहा था।

10.4 आलोचनात्मक संदर्भ

प्रेमचन्द साहित्य को सोद्देश्य कर्म मानते हैं। इसी क्रम में हम यह जानते हुए चलें कि 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन में अध्यक्षीय वक्तव्य में उन्होंने कहा था- साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का समान जुटाना नहीं है-उसका दरजा इतना न गिराइए। वह देशभक्ति व राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जो हममें उच्च चिंतन, स्वाधीनता के साथ गति, संघर्ष और तड़प पैदा करे, सुलाए नहीं।

प्रेमचन्द्र के उपर्युक्त कथन से उनकी साहित्यिक प्रतिबद्धता का स्पष्ट पता चलता है। प्रेमचन्द्र साहित्य लेखन को उद्देश्य परक मानते हैं। और इसी मान को बड़े चाहे, साहब कहानी में उन्होंने जय-पराजय (पास-फेल) के बीच संघर्षपूर्ण विचारों में परंपरागत आदर्श भी जीत को मुख्य उद्देश्य माना है। कहानी को कथानक से लेकर उद्देश्य तक के सभी स्तर पर मानव मन के करीब लाकर प्रेमचन्द ने जिस परंपरा का सूत्रपात किया वह आज भी कथा-साहित्य की मुख्य धारा बनी हुई है। बड़े भाई साहब कहानी में नियति मे विश्वास का गहरा प्रभाव है। अपनी असफलता को दबाने या भूलने के लिए दूसरों को आदर्श की घुटी पिलाने की प्रवृत्ति इस कहानी का सशक्त मनोवैज्ञानिक पक्ष है। यही कारण है कि अंत में पतंगबाजी का घोर विरोध करने वाले भाई साहब स्वयं कटी हुई पतंग की डोर पकड़कर भागने में कामयाब रहते हैं।

हार-जीत व पास-फेल में द्वन्द्व में फँसे बड़े भाई साहब महीन वहीं अपने दबे कुचले असफल होने वाले भाव को व्यक्त करते रहते हैं। छोटे भाई को डाँटते समय पिता-दादा का उदाहरण देना परंपरा का द्योतक है। इस कहानी में परंपरा को निर्वहन पर भी अप्रत्यक्ष रूप से जोर दिया गया है। असफलता के बावजूद बड़े भाई साहब स्वयं से लगभग अपमानित होने पर छोटे भाई को आदर्श की बात समझाते है, जो इस कहानी की यथार्थता ही नहीं अपितु यह उद्घाठित करता है कि असफलता से अधिकारों का हनन नहीं होता। लेखक यह स्पष्ट करने में सर्वथा सफल रहा है कि स्वयं के दोष को छिपाने में दूसरों को उपदेश देना एक मानसिक कमजोरी का प्रतीक है। मन को भीतर से भी नहीं दबाया जा सकता। यह बात प्रस्तुत कहानी बड़े भाई साहब में उस समय प्रकट होती है जब वह डाँटने-मारने की जगह स्वयं पतंग लूटकर भागते हैं। यह

मानसिक दुर्बलता पर परिस्थिति जन्य अधिकार की स्थापना है। यही प्रेमचन्द की कथा-शैली की विशेषता है कहानी पढ़ते हुए कहीं नहीं लगता कि यह कहानी है। बल्कि प्रतीत होता है मानों कोई संवाद या रिर्पोट पढ़ रहे हैं। कुल मिलाकर बड़े भाई साहब कहानी मनुष्य की स्वयं की असफलता पर अपमान बोध से ग्रसित मानसिकता का सूक्ष्म विवेचन है। अपमानित और घायल मानसिकता झुकने को तैयार नहीं है बड़प्पन का बोध सीखने-समझने को तैयार नहीं है, जो इस कहानी पर मुख्य स्वर है अंततः उपदेशक ही झुकता है और कथनी-करनी के अंतर को दूर कर देता है-पतंग लूटकर।

अभ्यास प्रश्न

सही/गलत का चुनाव कीजिए।

1. बड़े भाई साहब कहानी में दो मुख्य पात्र हैं।
2. बड़े भाई साहब मनोवैज्ञानिक कहानी है।
3. बड़े भाई साहब प्रेमचंद की कमजोर कहानी है।
4. बड़े भाई साहब छोटे भाई से पाँच वर्ष बड़े थे।
5. बड़े भाई साहब कहानी मैं शैली में लिखी गई कहानी है।

10.5 सारांश

अपने बड़े भाई साहब कहानी के पाठ का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। इस पाठ को पढ़ने के बाद आपके सामने कहानी के माध्यम से उठाई गई या कही गई बातों का एक सम्पूर्ण चित्र उभर आया होगा। प्रेमचन्द ने तत्कालीन समय में भारतीय समाज की ज्वलंत समस्याओं के साथ-साथ मानवीय सूक्ष्म मानसिकता को उद्घाटित किया है। बड़े भाई साहब बहुत मेहनत से अध्ययन करते हैं किन्तु परीक्षा का परिणाम शून्य आता है और वहीं छोटे भाई साहब खेलते कूदते हुए भी उत्तम परिणामों से पास होते रहते हैं। यह पात्रों की स्थिति कथानक की विडम्बना है। बड़े भाई साहब मुख्य रूप से मानसिकता के चतुर्दिक घूमती हुई कहानी है। बार-बार फेल होने की हीन-भावना से ग्रसित बड़े भाई साहब पर फेल होने का अपराध बोध इतना बोझिल हो जाता है कि अपने भाव को दबाकर छोटे भाई को नसीहत की फेहरिस्त थमा देते हैं। खेलना-कूदना तो दूर खेलने वाले बच्चों से चिढ़ने लगते हैं। प्रेमचन्द ने यहा कथानक का भाव मानसिक स्तर में अन्तरतम भाव को उद्घाटित करता है। इस कहानी में किसी भी वाद-विवाद को तलाशना बेमानी है। मात्र मानसिक उलझन या दबाव के कारण उपजी प्रवृत्ति ही इस कहानी का उद्देश्य है। यह मानव स्वभाव कि जब किसी कार्य में सफलता नहीं मिल पाती तो वह अपने दोष को दर-किनार कर दूसरों पर अपने जैसा न बनने की सलाह देता है। यह प्रेमचन्द की सफल मनोवैज्ञानिक शैली है।

10.6 शब्दावली

1. कनकौआ - पतंग
2. फेहरिस्त - सूची
3. सिफर - परिणाम विहीन
4. घोंघा - कम अक्ल
5. निपुण - कुशल

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सही
2. सही
3. सही
4. गलत
5. सही

10.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रेमचंद संचयन- साहित्य अकादमी
2. शर्मा, रामविलास – प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन।

10.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. कहानी ''बड़े भाई साहब'' की समीक्षा कहानी तत्वों के आधार पर करें।
2. बड़े भाई का चरित्र चित्रण करें।
3. कहानी के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर प्रकाश डालें।
4. 'बड़े भाई साहब'' कहानी से आपको क्या सीख मिलती है।

इकाई 11 'अपना-अपना भाग्य' - जैनेन्द्र कुमार: पाठ एवं विवेचन

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 'अपना-अपना भाग्य' कहानी का मूल पाठ
11.4 मानवीय मूल्यों के पतन व संवेदनहीनता का चित्रण
11.5 'अपना-अपना भाग्य': विवेचन
11.6 सारांश
11.7 शब्दावली
11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

प्रेमचंद की कहानियों से आप अवश्य परिचित होंगे, इनकी कहानियाँ आजादी के पहले के भारतीय समाज के यथार्थ को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती हैं। प्रेमचंद के समकालीन कहानीकारों में जैनेन्द्र कुमार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिन्होंने प्रेमचंद के सम्पर्क में रहने के बावजूद अपने कथालेखन में एक अलग रास्ते की तलाश की। जैनेन्द्र का जन्म 2 जनवरी सन् 1905 में कौड़ियागंज, जिला अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश) में हुआ। इनके बचपन का नाम सकटुआ, आनन्दी लाल था। बचपन में ही पिता श्री प्यारेलाल की असमय मृत्यु के उपरांत ये अपनी माँ श्रीमती रामदेवी बाई के साथ अपने ननिहाल में मामा के यहाँ आ गये। इनका आरम्भिक पालन-पोषण मामा महात्मा भगवानदीन के सान्निध्य में हुआ। जहाँ सन् 1911 में 6 वर्ष का होने के उपरांत उन्होंने मामा द्वारा स्थापित 'हस्तिनापुर ब्रह्मचर्याश्रम' में प्रारम्भिक शिक्षा हेतु प्रवेश लिया। यहीं पर इनका वर्तमान नामकरण भी हुआ, यानी अब ये जैनेन्द्र कुमार के नाम से पुकारे जाने लगे। आश्रम से अपनी आरम्भिक शिक्षा ग्रहण करने के उपरांत सन् 1919 में पंजाब से प्राइवेट मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। आगे की उच्च शिक्षा हेतु आपने वाराणसी के काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। परंतु स्वाधीनता संघर्ष के दरम्यान होने वाले असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के चलते पढ़ाई बीच में ही छोड़ देनी पड़ी। सन् 1920 से 1923 तक

स्वाधीनता आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी के उपरांत इन्होंने कुछ दिनों तक दिल्ली में रहकर जीवन-यापन हेतु व्यापार का कार्य भी किया। साथ ही इन्होंने कुछ क्रांतिकारी राजनीतिक पत्रों में संवाददाता की भूमिका भी निभाई। इस दरम्यान आपका लेखन जीवन की तमाम् कठिनाईयों के बावजूद बदस्तूर जारी रहा। राजनीतिक आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी के चलते कई बार जेल भी जाना पड़ा।

जैनेन्द्र कुमार का रचनाकर्म विस्तृत फलक को अपने में समेटे हुए हैं। इन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई। इनका प्रथम कहानी संग्रह सन् 1925 में 'फाँसी' नाम से प्रकाशित हुआ, जिसने साहित्य जगत में इन्हें चर्चा के केन्द्र में ला खड़ा किया। अपने पास-पड़ोस के जीवन यथार्थ को आधार बनाकर कहानियाँ लिखी हैं। इनकी लिखी कहानियाँ विचार प्रधान हैं। जिसमें विचारों की प्रधानता के साथ-साथ मानव मन को विश्लेषित करने का प्रयास भी हमें दिखाई पड़ता है। इनके प्रकाशित कहानी संग्रह हैं- 'फाँसी', 'वातायन', 'नीलम देश की राजकन्या', 'एक रात', दो चिड़ियाँ', 'लाल सरोवर', 'बाहुबली', 'एक कैदी', 'खेल', 'ध्रुवयात्रा', 'पाजेब' तथा जयसन्धि। इनकी सम्पूर्ण कहानियों का संग्रह 'जैनेन्द्र की कहानियाँ', शीर्षक से सात भागों में प्रकाशित है। अनेक लोकप्रिय व बहुचर्चित उपन्यासों की रचना इनके द्वारा की गई। 'परख', 'तपोभूमि', 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी', 'सुखदा', 'विर्वत', 'व्यतीत' और 'जयवर्द्धन' जैसे उपन्यास हिन्दी कथा साहित्य को अलग धरातल प्रदान करते हैं। बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न रचनाकार जैनेन्द्र द्वारा अनुवाद, सम्पादन और निबन्ध लेखन का कार्य बखूबी किया गया।

जैनेन्द्र कुमार की कहानियाँ मानव मन के आन्तरिक भावों, विचारों का सूक्ष्म विश्लेषण करती हैं। दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण इनकी कहानियों को प्रेमचंद से अलग करता है, जहाँ उनकी रुचि घटनाओं के यथार्थ चित्रण में न होकर उसकी तह तक जाने में हैं। घटनाओं की तुलना में मानव अनुभूतियों का चित्रण इनके यहाँ प्रमुख रूप से है, इसलिए कहानियों में घटना-विस्तार की अपेक्षा गहनता का भाव निहित है। साथ ही यह भी व्यक्ति की केन्द्रीयता के बावजूद समाज भी इनकी नजरों से ओझल नहीं हुआ है। इस प्रकार देखा जाय तो जैनेन्द्र कुमार का रचनाकर्म परिमाण में विपुल होने के साथ-साथ एक नवीन रचनात्मक व प्रयोगधर्मिता से परिपूर्ण है। जो उन्हें समकालीन कथाकारों से अलग करता है, यह अनायास नहीं कि वे अपने लेखन के आरंभ से ही आकर्षण और चर्चा के केन्द्र में रहे। प्रेमचंद के प्रिय कथाकार मित्रों में जैनेन्द्र का नाम प्रमुख है जिनकी किस्सागोई और कथा कहने का अंदाज और कथाकारों से उन्हें अलग करता है। इसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

11.2 उद्देश्य

आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित प्रश्नपत्र प्रथम के ब्लाक तृतीय हिन्दी कहानी (स्वतंत्रता पूर्व व पश्चात् कहानी) के क्रम में यह 11वीं इकाई है। यह इकाई बहुचर्चित कथाकार जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'अपना-अपना भाग्य' पर आधारित है। यहाँ पर आप 'अपना-अपना भाग्य' कहानी के मूल पाठ का अध्ययन करेंगे, साथ ही इसके विवेचन में भी रूबरू होंगे। यह कहानी समाज में व्याप्त दिखावटी संवेदना, अवसरवादिता, झूठे अहंकार और बेबस की लाचारी को मार्मिक रूप से प्रस्तुत करती है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- 'अपना-अपना भाग्य' कहानी के मूल पाठ का अध्ययन कर सकेंगे।
- मध्यवर्गीय अवसरवादिता, बाल मजदूर की विवशता व उसके कारणों पर विचार कर सकेंगे।
- व्यक्तिगत स्वार्थ के चलते दिखावटी व्यवहार व झूठी सहानुभूति को समझ सकेंगे।
- 'अपना-अपना भाग्य' कहानी का विवेचन कर सकेंगे।
- जैनेन्द्र कुमार के आधुनिक हिन्दी कहानी में स्थान व योगदान को रेखांकित कर सकेंगे।

11.3 'अपना-अपना भाग्य' कहानी का मूल पाठ

(1)

बहुत कुछ निरुद्देश्य घूम चुकने पर हम सड़क के किनारे की एक बेंच पर बैठ गये। नैनीताल की सन्ध्या धीरे-धीरे उतर रही थी। रुई के रेशे से, भाप-से बादल हमारे सिरों को छू-छूकर बेरोक घूम रहे थे। हल्के प्रकाश और अँधियारी से रंगकर कभी वे नीले दीखते, कभी सफेद और फिर देर में अरुण पड़ जाते। वे जैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे थे।

पीछे हमारे पोलोवाला मैदान फैला था। सामने अंगरेजों का एक प्रमोद-गृह था, जहाँ सुहावना, रसीला बाजा बज रहा था और पार्श्व में था वहीं सुरम्य अनुपम नैनीताल।

ताल में किश्तियाँ अपने सफेद पाल उड़ाती हुई एक-दो अंग्रेज यात्रियों को लेकर, इधर से उधर और उधर से इधर खेल रही थी। कहीं कुछ अंग्रेज,एक-एक देवी सामने प्रतिस्थापित कर, अपनी सुई-सी शक्ल की डोंगियों को, मानों शर्त बाँधकर सरपट दौड़ा रहे थे। कहीं किनारे पर कुछ साहब अपनी बंसी डाले, सधैर्य, एकाग्र, एकस्थ, एकनिष्ठ मछली-चिन्तन कर रहे थे।

पीछे पोलो-लॉन में बच्चे किलकारियाँ मारते हुए हाकी खेल रहे थे। शोर, मार-पीट, गाली-गलौज भी जैसे खेल का ही अंश था। इस तमाम खेल को उतने क्षणों का उद्देश्य बना, वे बालक अपना सारा मन, सारी देह, समग्र बल और समूची विद्या लगार मानो खतम कर देना

चाहते थे। उन्हें आगे की चिन्ता न थी, बीते का खयाल न था। वे शुद्ध तत्काल के प्राणी थे। वे शब्द की सम्पूर्ण सच्चाई के साथ जीवित थे।

सड़क पर से नर-नारियों का अविरल प्रवाह आ रहा था और जा रहा था। उसका न ओर था, न छोर। यह प्रवाह कहाँ जा रहा था, और कहाँ से आ रहा था, कौन बता सकता है? सब उम्र के, सब तरह के लोग उसमें थे। मानों मनुष्यता के नमूनों का बाजार सजकर सामने से इठलाता निकला चला जा रहा हो।

अधिकार-गर्व में तने अंग्रेज उसमें थे और चिथड़ों से सजे घोड़ों की बाग थामे, वे पहाड़ी उसमें थे, जिन्होंने अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को कुचलकर शून्य बना लिया है और जो बड़ी तत्परता से दुम हिलाना सीख गये हैं।

भागते, खेलते, हँसते, शरारत करते, लाल-लाल अंग्रेज बच्चे थे और पीली-पीली आँखे फाड़े, पिता की ऊँगली पकड़कर चलते हुए अपने हिन्दुस्तानी नौनिहाल भी थे।

अंग्रेज पिता थे, जो अपने बच्चों के साथ भाग रहे थे और खेल रहे थे। उधर भारतीय पितृदेव भी थे, जो बुजुर्ग़ीं को अपने चारों तरफ लपेटे धन-सम्पन्नता के लक्षणों का प्रदर्शन करते हुए चल रहे थे।

अंग्रेज-रमणियां थे, जो धीरे-धीरे नहीं चलती थीं, तेज चलती थीं। उन्हें न चलने में थकावट आती थी, न हँसने में मौत आती थी। कसरत के नाम पर घोड़े पर भी बैठ सकती थीं, और घोड़े के साथ ही साथ, जरा जी होते ही, किसी-किसी हिन्दुस्तानी पर कोड़े भी फटकार सकती थीं। वह दो-दो, तीन-तीन, चार-चार की टोलियों में निःशंक, निरापद इस प्रवाह में मानों अपने स्थान को जानती हुई सड़क पर चली जा रही थीं।

उधर हमारी भारत की कुल लक्ष्मी, सड़क के बिल्कुल किनारे दामन बचाती और सम्हालती हुई, साड़ी के कई तहों में सिमट-सिमट कर, लोक-लाज, स्त्रीत्व और भारतीय गरिमा के आदर्श को अपने परिवष्टनों में छिपाकर सहमी-सहमी धरती में आँखे गाड़े, कदम-कदम बढ़ रही थी।

इसके साथ ही भारतीयता का एक और नमूना था। अपने कालेपन को खुरच-खुरच कर बहा देने की इच्छा करने वाले अंग्रेजीदाँ पुरुषोत्तम भी थे, जो बेटियों को देखकर मुँह फेर लेते थे और अंगरेज को देखकर आँखे बिछा देते थे और दुम हिलाने लगते थे। वैसे वह अकड़कर चलते थे-मानों भारत-भूमि को इसी अकड़ के साथ कुचल-कुचलकर चलने का उन्हें अधिकार मिला है।

(2)

घण्टे-के-घण्टे सरक गये। अन्धकार गाढ़ा हो गया। बादल सफेद होकर जम गये। मनुष्यों का वह ताँता एक-एक कर क्षीण हो गया। अब इक्का-दुक्का आदमी सड़क पर छतरी लगाकर निकल रहा था। हम वहीं के वहीं बैठे थे। सर्दी-सी मालूम हुई। हमारे ओवरकोट भीग गये थे।

पीछे फिरकर देखा। वह लाल बर्फ की चादर की तरह बिल्कुल स्तब्ध और सुन्न पड़ा था। सब सन्नाटा था। तल्लीताल की बिजली की रोशनियाँ दीप-मालिका-सी जगमगा रहीं थी। वह जगमगाहट दो मील तक फैले हुए प्रकृति के जल-दर्पण पर प्रतिबिम्बित हो रही थी और दर्पण का काँपता हुआ, लहरें लेता हुआ, वह जल प्रतिबिम्बों को सौगुना, हजार गुना करके, उनके प्रकाश को मानों एकत्र कर पूंजीभूत करके व्याप्त कर रहा था। पहाड़ी के सिर पर की रोशनियां तारों-सी जान पड़ती थी।

हमारे देखते-देखते एक घने पर्दे ने आकर इन सबको ढँक दिया। रोशनियाँ मानो मर गयी। जगमगाहट लुप्त हो गयी। वह काले-काले भूत से पहाड़ भरी इस सफेद पर्दे के पीछे छिप गये। पास की वस्तु भी न दीखने लगी। मानों यह घनीभूत प्रलय थी। सब कुछ इस घनी गहरी सफेदी में दब गया। एक शुभ महासागर ने फैलकर संसृति के सारे अस्तित्व को डुबो दिया। ऊपर, नीचे, चारों तरफ, वह निर्भेद्य, सफेद शून्यता ही फैली हुई थी।

ऐसा घना कुहरा हमने कभी न देखा था। वह टप-टप टपक रहा था।

मार्ग अब बिल्कुल निर्जन-चुप था। वह प्रवाह न जाने किन घोसलों में जो छिपा था, उस बृहदाकार शुभ्र शून्य में कहीं से, ग्यारह बार टन-टन हो उठा। जैसे कहीं दूर कब्र में से आवाज आ रही हो।

हम अपने-अपने होटलों के लिए चल दिये।

(3)

रास्ते में दो मित्रों का होटल मिला। दोनों वकील-मित्र छुट्टी लेकर चले गये। हम दोनों आगे बढ़ गये। हमारा होटल आगे था।

ताल के किनारे-किनारे हम चले जा रहे थे। हमारे ओवरकोट तर हो गये थे। बारिश नहीं मालूम होती थी, पर वहाँ तो ऊपर-नीचे हवा के कण-कण में बारिश थी। सर्दी इतनी थी कि सोचा, कोट पर एक कम्बल और होता तो अच्छा होता।

रास्ते में ताल के बिल्कुल किनारे एक बेंच पड़ी थी। मैं जी में बेचैन हो रहा था। झटपट होटल पहुँचकर इन भीगे कपड़ों से छुट्टी पा, गरम बिस्तर में छिपकर सो रहना चाहता था, पर

साथ के मित्र की सनक कब उठेगी, कब थमेगी-इसका पता न था। और वह कैसी क्या होगी-इसका भी कुछ अन्दाजा न था। उन्होंने कहा-आओ, जरा यहाँ बैठें।

हम उस चूते कुहरे में रात के ठीक एक बजे तालाब के किनारे उस भीगी बर्फ-सी ठंडी हो रही लोहे की बेंच पर बैठ गये।

5-10-15 मिनट हो गये। मित्र के उठने का इरादा न मालुम हुआ। मैने खिसियाकर कहा -

''चलिए भी''

''अरे जरा बैठो भी''

हाथ पकड़कर जरा बैठने के लिए इस जोर से बैठा लिया गया तो और चारा न रहा-लाचार बैठे रहना पड़ा। सनक से छुटकारा आसान न था और यह जरा बैठना, जरा न था, बहुत था।

चुपचाप बैठे तंग हो रहा था, कुढ़ रहा था कि मित्र अचानक बोले-

''देखो.... वह क्या है?''

मैने देखा- कुहरे की सफेदी में कुछ ही हाथ दूर से एक काली-सी मूरत हमारी तरफ बढ़ी आ रही थी। मैनं कहा- ''होगा कोई।''

तीन गज की दूरी से देख पड़ा, एक लड़का सिर के बड़े-बड़े बालों को खुजलाता हुआ चला आ रहा है। नंगे पैर है, नंगे सिर। एक मैली-सी कमीज लटकाये हैं। पैर उसके न जाने कहाँ पड़ रहे हैं, और वह न जाने कहाँ जा रहा है- कहाँ जाना चाहता है? उसके कदमों में जैसे कोई न अगला है? न पिछला है, न दायाँ है, न बायाँ है।

पास की चुंगी की लालटेन के छोटे-से प्रकाश-वृत्त में देखा-कोई दस बरस का होगा। गोरे रंग का है, पर मैल से काला पड़ गया है। आँखें अच्छी बड़ी, पर रूखी हैं। माथा जैसे अभी से झुर्रियाँ खा गया है।

वह हमें न देख पाया। वह जैसे कुछ भी नहीं देख रहा था। न नीचे की धरती, न ऊपर चारों तरफ फैला हुआ कुहरा, न सामने का तालाब और न बाकी दुनियाँ। वह बस अपने विकट वर्तमान को देख रहा था-

मित्र ने आवाज दी- ''ए!''

उसने जैसे जाग कर देखा और पास आ गया।

‘‘तू कहाँ जा रहा है रे?’’

उसने अपनी सूनी आँखे फाड़ दी।

‘‘दुनिया सो गयी, तू ही क्यों घूम रहा है?’’

बालक मौन मूक, फिर भी बोलता हुआ चेहरा लेकर खड़ा रहा।

‘‘कहाँ सोयेगा?’’

‘‘यहीं कहीं’’

‘‘कल कहाँ सोया था?’’

‘‘दुकान पर।’’

‘‘आज वहाँ क्यों नहीं?’’

‘‘नौकरी से हटा दिया।’’

‘‘क्या नौकरी थी?’’

‘‘‘‘सब काम। एक रुपया और जूठा खाना।’’

‘‘फिर नौकरी करेगा?’’

‘‘हाँ।’’

‘‘बाहर चलेगा?’’

‘‘हाँ।’’

‘‘आज क्या खाना खाया?’’

‘‘कुछ नहीं।’’

‘‘अब खाना मिलेगा?’’

‘‘नहीं मिलेगा।’’

‘‘यों ही सो जायेगा?’’

‘‘हाँ।’’

‘‘कहाँ?’’

‘‘यहीं, कहीं।’’

‘‘इन्हीं कपड़ों से?’’

बालक फिर आँखों से बोलकर मूक खड़ा रहा। आँखें मानों बोलती थीं- ‘‘यह भी कैसा मूर्ख प्रश्न!’’

‘‘माँ-बाप हैं?’’

‘‘हैं।’’

‘‘कहाँ?’’

‘‘15 कोस दूर गाँव में।’’

‘‘तू भाग आया?’’

‘‘हाँ!’’

‘‘क्यों।’’

‘‘मेरे कई छोटे भाई-बहन हैं-सो भाग आया, वहाँ काम नहीं रोटी नहीं। बाप भूखा रहता था, और मारता था। माँ भूखी रहती थीं और रोती थी। सो भाग आया। एक साथी और था। उसी गाँव का। मुझसे बड़ा था। दोनों साथ यहाँ आये। वह अब नहीं है।’’

‘‘कहाँ गया?’’

‘‘मर गया।’’

‘‘मर गया?’’

‘‘हाँ, साहब ने मारा, मर गया।’

‘‘अच्छा, हमारे साथ चल।’’

वह साथ चल दिया। लौटकर हम वकील दोस्तों के होटल में पहुँचे।

‘‘वकील साहब!’’

वकील लोग, होटल के ऊपर के कमरे से उतरकर आये। कश्मीरी दोशाला लपेटे थे, मोजे-चढ़े पैरों में चप्पल थी। स्वर में, हल्की-सी झुँझलाहट थी, कुछ लापरवाही थी।

''आ-हा फिर आप!- कहिये।''

''आपको नौकर की जरूरत थी न ? -देखिए यह लड़का है।''

''कहाँ से ले आये?-इसे आप जानते हैं?''

''जानता हूँ-यह बेईमान नहीं हो सकता।''

''अजी, ये पहाड़ी बड़े शैतान होते हैं। बच्चे-बच्चे में गुन छिपे रहते हैं। आप भी क्या अजीब हैं- उठा लाये कहीं से- लो जी, यह नौकर लो।''

''मानिए तो, यह लड़का अच्छा निकलेगा।''

''आप भी..... जी, बस खूब हैं। ऐरे-गैरे को नौकर बना लिया जाय और अगले दिन वह न जाने क्या-क्या लेकर चम्पत हो जाये।''

''आप मानते ही नहीं, मैं क्या करूँ?

''माने क्या, खाक?-आप भी...! जी अच्छा मजाक करते हैं। अच्छा अब हम सोने जाते हैं।''

और वह चार रुपये रोज के किराये वाले कमरे में सजी मसहरी पर सोने झटपट चले गये।

(4)

वकील साहब के चले जाने पर, होटल के बाहर आकर मित्र ने अपनी जेब में हाथ डालकर कुछ टटोला। पर झट कुछ निराशा भाव से हाथ बाहरकर मेरी ओर देखने लगे।

''क्या है?''

''इसे खाने के लिए कुछ देना चाहता था,'' अंग्रेजी में मित्र ने कहा- ''मगर, दस-दस के नोट हैं।''

''नोट ही शायद मेरे पास हैं, देखूँ?''

सचमुच मेरे पाकिट में भी नोट ही थे। हम फिर अंग्रेजी में बोलने लगे। लड़के के दाँत बीच-बीच में कटकटा उठते थे। कड़ाके की सर्दी थी।

मित्र ने पूछा-''तब?''

मैने कहा-‘‘दस का नोट ही दे दो।’’ सकपकाकर मित्र मेरा मुँह देखने लगे- ‘‘अरे यार! बजट बिगड़ जायेगा। हृदय में जितनी दया है, पास में उतने पैसे तो नहीं हैं।’’

‘‘तो जाने दो, यह दया ही इस जमाने में बहुत है।’’-मैने कहा।

मित्र चुप रहे। जैसे कुछ सोचते रहे। फिर लड़के से बोले-‘‘अब आज तो कुछ नहीं हो सकता। कल मिलना। वह ‘होटल डी पब’ जानता है? वहीं कल 10 बजे मिलेगा?’’

‘‘हाँ..., कुछ काम देंगे हुजूर?’’

‘‘हाँ-हाँ, ढूँढ दूँगा।’’

‘‘तो जाऊँ?’’

‘‘हा,’’ ठंडी साँस खींचकर मित्र ने कहा-‘‘कहाँ सोयेगा?’’

‘‘यही कहीं, बेंच पर, पेड़ के नीचे किसी दुकान की भट्टी में।’’

बालक फिर उसी प्रेत-गति से एक ओर बढ़ा और कुहरे में मिल गया। हम भी होटल की ओर बढ़े। हवा तीखी थी- हमारे कोटों को पारकर बदन में तीर-सी लगती थी।

सिकुड़ते हुए मित्र ने कहा, ‘‘भयानक शीत है। उसके पास कम-बहुत कम कपड़े.....।’’

‘‘यह संसार है यार!’’-मैंने स्वार्थ की फिलासफी सुनायी- ‘‘चलो, पहले बिस्तर में गर्म हो लो, फिर किसी और की चिन्ता करना।’’

उदास होकर मित्र ने कहा- ‘‘स्वार्थ!-जो कहो, लाचारी कहो, निठुराई कहो, बेहयाई!’’

x x x x

दूसरे दिन नैनीताल स्वर्ग के किसी काले गुलाम पशु के दुलारे को वह बेटा-बालक, निश्चित समय पर हमारे ‘होटल डी पब’ में नहीं आया। हम अपनी नैनीताल यात्रा खुशी-खुशी खतम कर चलने को हुए। उस लड़के की आस लगाते बैठे रहने की जरूरत हमने न समझी।

मोटर में सवार होते ही थे कि यह समाचार मिला कि पिछली रात, एक पहाड़ी बालक सड़के के किनारे, पेड़ के नीचे, ठिठुरकर मर गया!

मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस बरस की उम्र और वही काले चिथड़े कमीज मिली। आदमियों की दुनिया ने बस यही उपहार उसके पास छोड़ा था।

पर बतानेवालों ने बताया कि गरीब के मुँह पर, छाती, मुट्ठी और पैरों पर बर्फ की हल्की-सी चादर चिपक गयी थी। मानों दुनिया की बेहयाई ढँकने के लिए 'प्रकृति ने बालक के लिए सफेद और ठण्डे कफन का प्रबन्ध कर दिया था।'

सब सुना और सोचा-अपना-अपना भाग्य!

11.4 मानवीय मूल्यों का पतन एवं संवेदनहीनता का चित्रण

आपने 'अपना-अपना भाग्य' कहानी पढ़ ली है। यह कहानी जैनेन्द्र कुमार की बहुचर्चित कहानियों में से है। जैसा कि आपने कहानी में पढ़ा व अपने आस-पड़ोस में देखा भी होगा कि अक्सर किसी के साथ कुछ भी अच्छा-बुरा होने पर उस घटना को व्यक्ति के भाग्य से जोड़ दिया जाता है। यह कहानी 'अपना-अपना भाग्य' की निरर्थकता को उजागर करती है। भाग्य की आड़ में किस तरह हम अपनी जिम्मेदारियों से पीछा छुड़ाते हैं। प्रस्तुत कहानी में इसका अंकन किया गया है। कहानी की शुरुआत नैनीताल के सामाजिक वातावरण के चित्रण से होती है। जिससे हम जान पाते हैं कि यह वातावरण आजादी से पूर्व का है। जब यहाँ अंग्रेजों का शासन था और उनके समक्ष भारतीय जनता की हैसियत शोषित जैसी थी। साथ ही मध्यवर्गीय पढ़े-लिखे भारतीयों की मानसिकता का भी अंकन हुआ है जो दिखने में तो भारतीय हैं, पर उनका काम अंग्रेजों की नकल करना और अपने देशवासियों का शोषण करने में उनका सहयोगी बनना है।

नैनीताल जैसा कि आप जानते हैं प्राकृतिक सौन्दर्य से भरा-पूरा हैं जिसके चलते यहाँ पर लोग दूर-दूर से घूमने के लिए आते हैं। आज़ादी के पूर्व यहाँ अंग्रेजों की सुख-सुविधा हेतु तरह-तरह की व्यवस्था अंग्रेज सरकार द्वारा की गई थी। जिसमें घुड़दौड़, नौका विहार, क्लब, पोलो इत्यादि प्रमुख हैं जो कि अंग्रेजों की उच्च अभिरुचि का हमें पता देती हैं। गर्व से तने हुए अंग्रेज, घोड़ी की बाग थामे स्थानीय गरीब निवासी, अंग्रेजों की नकल करने वाला पढ़ा-लिखा मध्यवर्ग, स्त्रियों और बच्चों की हैसियत और स्थिति का चित्रण तत्कालीन समाज पर प्रकाश डालता है। जैसा कि आप जानते हैं कि जैनेन्द्र कुमार मानव के अंतर्तम में छुपे रहस्यों को उजागर करने वाले कथाकार है। उनकी यह प्रयोगधर्मिता बौद्धिकता व मनोविश्लेषण को आधार बनाती है। यानी उनके यहाँ किस परिस्थिति में मानव मन में क्या भाव-विचार उत्पन्न होते हैं, इसका विश्लेषण प्रमुख रूप से हुआ है। इसी के चलते उनके यहाँ घटनाओं का ज्यादा चित्रण न होकर चरित्र-चित्रण पर बल दिया गया है। 'अपना-अपना भाग्य' कहानी में लेखक ने एक बालक को केंद्र में रखते हुए मध्यवर्ग के स्वार्थ व संवेदनहीनता को उजागर किया है। यह वर्ग समाज में व्याप्त हर विसंगति का हल भाग्य के हवाले कर अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो जाना चाहता है।

आपने 'अपना-अपना भाग्य' कहानी में देखा कि किस प्रकार एक बालक आधी रात में दो प्रकृति प्रेमी मित्रों के आनंद में व्यवधान बनकर उपस्थित होता है। यह बालक नैनीताल में सर्द

मौसम में रात के एक बजे नंगे पैर, भूखे पेट सड़कों पर किसी सुरक्षित जगह की तलाश में भटक रहा है, जहाँ वह किसी तरह रात गुजार सके। दोनों मित्र उसकी इस हालत के बारे में तरह-तरह के प्रश्न करते हैं जो सारी स्थिति को बयां कर देते हैं-

''तू कहाँ जा रहा है रे?''

उसने अपनी सूनी आँखे फाड़ दीं।

दुनिया सो गयी, तू ही क्यों घूम रहा है?

बालक मौन मूक, फिर भी बोलता हुआ चेहरा लेकर खड़ा रहा।

''कहाँ सोयेगा?''

''यहीं कहीं।''

''कल कहाँ सोया था?''

''दुकान पर!''

''आज वहाँ क्यों नहीं?''

''नौकरी से हटा दिया।''

''क्या नौकरी थी?''

''सब काम! एक रूपया और जूठा खाना।''

आपने देखा कि संवाद छोटे-छोटे होकर भी बालक की असहायता और मित्रों की संवेदनहीनता पर प्रकाश डालने में सक्षम है। इनके द्वारा प्रश्न पूछने पर वह बालक चुप हो जाता है और उसका बोलता चेहरा हमें सब बता देता है। आधी रात को अधनंगे भटकते एक बालक से मित्रों द्वारा प्रश्न पर प्रश्न पूछते जाना मध्यवर्गीय शंकालु प्रवृत्ति का भी हमें पता देता है। हर प्रकार से संतुष्ट हो जाने के बाद बालक को वे कोई काम दिलाने के लिए अपने वकील मित्रों के पास ले जाते हैं। पर वहाँ से उन्हें निराश होना पड़ता है। वह भी इस चलते कि इन वकील मित्रों को इस बालक पर भरोसा नहीं है। घोर व्यवहारिक मानसिकता का यहाँ हमें दर्शन होता है जो हर चीज को उपयोगिता के तराजू पर तौलती है। मानवीय संवेदना, दया जैसे तत्व मानो खो से गये हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ व अपनी सुख-सुविधा की चिन्ता इस वर्ग को इतनी ज्यादा है रात में एक निरीह बालक की समस्या इन्हें अपनी नींद में खलल सी जान पड़ती है। यहाँ से कहानी उस मोड़ पर आती है, जहाँ दोनों मित्र बालक को लेकर चिन्तित दिखाई पड़ते हैं, साथ ही यह भाव भी है कि किस प्रकार उस बालक से अपना पीछा छुड़ायें। वे इसके लिए बालक को कुछ पैसा देना चाहते

हैं, पर उनके पास दस-दस के नोट हैं, खुले पैसे नहीं है। अपनी सारी सहानुभूति के बावजूद अपना बजट बिगड़ने के डर से कोई दस रुपये का नोट बालक को देने को तैयार नहीं होता। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि ये दोनों मित्र होटल में ठहरे हुए हैं और बालक को आधी रात में ठंड से ठिठुरने के लिए अकेला छोड़ देते हैं। अंत में बालक ठंड में ठिठुरकर जान दे देता है। उसकी मौत की जानकारी होने के बाद ये लोग 'अपना-अपना भाग्य' कहकर अपने उत्तरदायित्व से मुक्ति पा लेते हैं।

आपने देखा कि इस कहानी का कथानक सीधा-सादा है, उलझाव नहीं है। पात्रों की संख्या भी बहुत कम है। पर यह कहानी हमारे समक्ष कुछ प्रश्न खड़े करती हैं, मसलन क्या एक दस वर्ष के बालक का नैनीताल की सर्द रात में ठिठुरकर दम तोड़ देना उसके भाग्य की देन है? जिसका जिक्र सैलानी मित्रों द्वारा किया जाता है। बाल मजदूरी अमानवीयता व उसके कारणों पर भी प्रस्तुत कहानी में प्रकाश डाला गया है। आपने यह महसूस किया होगा कि बालक घोर गरीबी के चलते अपना घर छोड़कर एक दुकान मालिक के यहाँ मजदूरी करने पर विवश हो जाता है। एक ऐसा मालिक जो क्रूर व निर्दयी है एवं जिसकी निर्दयता के चलते बालक का साथी दम तोड़ देता है। यह स्थिति उन आर्थिक विसंगतियों की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित करती है, जिसके चलते न जाने कितने बचपन तबाह हो रहे हैं। साथ ही समाज में व्याप्त उस मानसिकता से भी हमारा साक्षात्कार कराता है जहाँ स्वार्थ व संवेदनहीनता का भाव इतना प्रबल है कि ऐसा गरीब को वह मनुष्य का दर्जा देने को तैयार नहीं। यह मध्यवर्ग बातें तो बड़ी-बड़ी करता है, पर किसी बेबस की सहायता के नाम पर तरह-तरह के बहाने बनाने लगता है। यह स्थिति मानवीय संवेदना में आ रही पतनशीलता को प्रदर्शित करती है। झूठी सहानुभूति, पाखण्ड, स्वार्थ, व्यक्तिगत हित इस वर्ग की खासियत बनती जा रही है। जैनेन्द्र कुमार इस कहानी के माध्यम से मानव की मनोवृत्तियों का विश्लेषण करते हैं। संवेदना का क्षरण, मध्यवर्गीय अवसरवादिता, आडम्बरप्रियता का चित्रण पाठकों का ध्यान आकर्षित करता है। जैनेन्द्र के कथा-साहित्य में बौद्धिकता के प्रति आग्रह व्यक्ति चरित्र का विश्लेषण प्रमुख रूप से दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि उनकी कहानियों में मानसिक द्वन्द्व व घात-प्रतिघात के चित्र बहुतायत हैं। प्रस्तुत कहानी में बच्चे की कुछ सहायता करने के दरम्यान दोनों मित्रों के बीच होने वाला संवाद मानसिक द्वन्द्व का परिचायक है, जिसमें करें या न करें का भाव तो निहित ही है, साथ ही मध्यवर्गीय संवदेनहीनता का प्रमाण भी है।

11.5 'अपना-अपना भाग्य'- विवेचन

अपने पिछले अनुक्रम के अन्तर्गत पढ़ा कि जैनेन्द्र कुमार की कहानियों में व्यक्ति चित्रण पर ज्यादा जोर है। यानी मानव के अन्तर्तम में उठने वाले द्वन्द्व संवदेनाओं का यथार्थ चित्रण उनकी रचनाओं में हमें प्राप्त होता है। उनकी यह खासियत तत्कालीन लेखकों से अलग धरातल पर उन्हें प्रतिष्ठित करती हैं। 'अपना-अपना भाग्य' की कथावस्तु सरल होने के बावजूद पाठकों

के मर्म को छूती है। कुछ पात्रों के चित्रण के आधार पर यह कानी उस सच से हमें रूबरू कराती है जो हमारे समाज में विसंगतियों के रूप में विद्यमान हैं। एक ऐसा समाज जो अपनी संवेदनहीनता व मानवीय मूल्यों के पतन के चलते टूट रहा है। मध्यवर्गीय चरित्र का खोखलापन यहाँ अपनी झूठी सहानुभूति व दिखावटी व्यवहार के बावजूद उजागर हो जाता है। यह मध्यवर्ग अपने व्यक्तिगत हित को सर्वोपरि रखता है, जहाँ मानव मूल्यों की अहमियत न के बराबर है। इस कहानी के केन्द्र में एक बेसहारा दस वर्षीय बालक है, जो आधी रात में नैनीताल की सूनी सड़कों पर भूखे पेट किसी आश्रय की तलाश में भटक रहा है। उसे इस हालात में देखकर दोनों सैलानी मित्र उससे सहानुभूति तो प्रकट करते हैं, पर जब उसके लिए कुछ करने की बात आती है तो पीछे हट जाते हैं। बाद में इस बालक की मौत पर 'अपना-अपना भाग्य' कहकर संतोष की सांस लेते हैं। जैनेन्द्र कुमार की यह कहानी इस छोटे से प्रकरण को आधार बनाकर समाज में व्याप्त अमानवीयता को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है।

प्रस्तुत कहानी में बाह्य परिवेश का चित्रण प्रमुख न होकर मन में उठने वाले भावों के चित्रण पर ज्यादा ध्यान दिया गया है। यहाँ आप देखेंगे कि जैनेन्द्र कुमार किसी घटना का क्रमिक विवरण नहीं प्रस्तुत करते, बल्कि जीवन में व्याप्त समस्याओं के जड़ की तलाश में गहरे उतरते हैं। जैनेन्द्र कथाकार होने के साथ-साथ चिन्तक की भूमिका में भी नजर आते हैं। इसी के चलते उनकी रचनाओं में बौद्धिकता का प्रभाव सर्वत्र देखा जा सकता है।

'अपना-अपना भाग्य' कहानी मानव मनोवृत्तियों का उद्घाटन करती है। जिसका आरंभ नैनीताल के स्वतंत्रता पूर्व वातावरण के चित्रण से होता है। जहाँ अंग्रेजों व भारतीयों के बीच की दूरी को लेखक ने बखूबी रेखांकित किया है। अंग्रेज सारी सुख-सुविधा का साधिकार उपभोग करते हुए नौका विहार का आनंद उठा रहे हैं- ''ताल में किश्तियाँ अपने सफेद पाल उड़ाती हुई एक-दो अंग्रेज यात्रियों को लेकर, इधर-से-उधर और उधर-से-इधर खेल रही थीं। कहीं कुछ अंग्रेज एक-एक देवी सामने प्रतिस्थापित कर, अपनी मुई-सी शक्ल की डोंगियों को, मानों शर्त बाँधकर सरपट दौड़ा रहे थे। कहीं किनारे पर कुछ साहब अपनी बंसी डाले, सधैर्य, एकाग्र, एकस्थ, एकनिष्ठ मछली-चिन्तन कर रहे थे।'' वहीं पोलों लान में सारी चिन्ता से मुक्त खेलते हुए अंग्रेज बच्चे हैं। अंग्रेज जहाँ अधिकार भाव के गर्व से भरे हुए हैं, वहीं गरीब स्थानीय पहाड़ी लोग उनकी सेवा करने को मजबूर हैं। लेखक उपरोक्त उद्धरण के माध्यम से हमारे समक्ष गुलाम भारत की तस्वीर पेश करता है, जहाँ आम भारतीय की हैसियत अंग्रेजों के सामने तुच्छ है। साथ ही लेखक हमारे समक्ष अंग्रेज रमणियों एवं भारतीय महिलाओं के अन्तर को भी हमारे समक्ष अंग्रेज रमणियों एवं भारतीय महिलाओं के अन्तर को भी हमारे समक्ष उजागर करता है। जहाँ अंग्रेज महिलाएँ स्वच्छन्द भाव से अपने सारे कार्य कर रही हैं, वहीं ''हमारी भारत की कुल-लक्ष्मी सड़क से बिल्कुल किनारे दामन बचाती और सम्हालती हुई, साड़ी की कई तहों में सिमट-सिमटकर, लोक-लाज, स्त्रीत्व और भारतीय गरिमा के आदर्श को अपने परिवेष्टनों में छिपाकर सहमी-सहमी धरती में आँख गाड़े, कदम-कदम बढ़ा रही थी।'' यह समूचा परिदृश्य

तत्कालीन परतंत्र भारतीय समाज की हकीकत हमारे समक्ष उजागर करता है। इसके साथ ही कहानीकार यहाँ उन भारतीयों की भी खोज-खबर लेता है, जो अपने को आम भारतीयों से अलग समझता है। यह वर्ग ''भारतीयता का एक और नमूना था। अपने कालेपन को खुरच-खुरच कर बहा देने की इच्छा करने वाले अंग्रेजीदाँ पुरुषोत्तम भी थे, जो नेटिवों को देखकर मुँह फेर लेते थे और अंग्रेज को देखकर आँखें बिछा देते थे और दुम हिलाने लगते थे। वैसे वह अकड़कर चलते थे- मानो भारत-भूमि को इसी अकड़ के साथ कुचल-कुचलकर चलने का उन्हें अधिकार मिला है।''

यह वर्ग तत्कालीन अंग्रेज शिक्षा नीति की उपज था। जो दिखने में तो भारतीय था, पर उसका मुख्य कार्य अंग्रेजों द्वारा किये जाने वाले आम जनता के शोषण में सहभागी बनना था। लेखक ने इस स्थिति पर व्यंग्य किया है, क्योंकि यह नवशिक्षित वर्ग अपने को साधारण भारतीय लोगों से अलग समझता है। इसे आज जनता के दुःख-दर्द से कोई वास्ता नहीं। विडम्बना यह है कि इस शिक्षित भारतीय वर्ग को उसकी तमाम खिदमत के बावजूद अंग्रेज अपने समान अधिकार देने को राजी नहीं। यह वर्ग अंग्रेजों का सहयोगी है और हर प्रकार की सेवा करने को हरदम तैयार रहता है। यह गुलाम मानसिकता उन लोगों की है जिनसे हम कुछ सार्थक करने की अपेक्षा रखते हैं। इनकी हालत यह है कि भारतीय लोगों को देखकर मुँह फेर लेते हैं और आडम्बर से जिन्हें खास लगाव है। लेखक यह स्पष्ट करना चाहता है कि बनावट की जिंदगी जीने वाला यह नव मध्यवर्ग इस कदर संवेदनहीन बन चुका है कि उसे आम भारतीयों का दुःख-दर्द दिखाई नहीं पड़ता। अंग्रेजों को खुश रखना, इन्हें अपना परम कर्त्तव्य जान पड़ता है।

अभी आपने पढ़ा कि प्रस्तुत कहानी स्वतंत्रता पूर्व के वातावरण के चित्रण के माध्यम से तत्कालीन हकीकत को उजागर करती है। जहाँ पृष्ठभूमि के रूप में परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा भारत है, जिसमें भारतीयों के आत्मसम्मान की कोई अहमियत नहीं। अशिक्षा, गरीबी, रुढ़ियाँ, दिखावा उसे दिन-पर-दिन खोखला करती जा रही है। अगर सुख-सुविधा, मनोरंजन इत्यादि साधन हैं भी तो वे सिर्फ अंग्रेजों के लिए। यह कहानी हमारे समक्ष इस सच को भी उजागर करती हैं कि इस गुलाम अवस्था के बावजूद नव मध्यवर्म अपने ही देशवासियों के हित से बेखबर होकर नितान्त संवेदनहीन होता जा रहा है। मानव मूल्यों का ह्रास इस कदर हो रहा है कि दूसरों का दुःख-दर्द भी उनके मनोरंजन का साधन प्रतीत होता है। यह कहानी मानव मूल्यों में आ रहे पतन को रेखांकित करती है।

'अपना-अपना भाग्य' कहानी में कहानीकार अपने मित्र के साथ नैनीताल घूमने के लिए गया है। जहाँ होटल 'डी पब' में रुकने के उपरांत शाम को वे बाहर घूमने जाते हैं और बहुत देर घूमने के बाद सड़क के किनारे की बींच पर बैठ जाते हैं। इस दौरान घूमने जाते हैं। इस दौरान समय बीतता जाता है और नैनीताल की सड़कों पर चहल-पहल कम होती जाती है। दोनों मित्रों में से एक को अपने होटल के कमरे में पहुँचने की जल्दी है और दूसरा कुछ देर और प्रकृति की

सुन्दरता का दीदार करना चाहता है। अन्त में वे एक जगह बैठ जाते हैं। इस दरम्यान अंधेरे कुहरे में छाया के समान उन्हें कुछ चलता प्रतीत होता है। उसके और नजदीक आने पर वे देखते हैं कि एक दस वर्ष का बालक है जो नंगे पांव और केवल एक कमीज पहने हुए है। एक मित्र द्वारा उसे आवाज देकर बुलाने पर वह पास आता है। वह कहाँ जा रहा है, इस बारे में कुछ नहीं बता पाता। यह बालक घर की घोर गरीबी और कलह से तंग आकर अपना घर छोड़कर एक दोस्त के साथ नैनीताल आकर एक दुकार पर नौकरी करने लगता है। जहाँ उसे मालिक ने सभी काम करने पड़ते हैं और बदले में उसे जूठा भोजन और एक रूपया मिलता है। मालिक की निर्मम यातना के चलते उसका दोस्त दम तोड़ देता है। अब इस बालक को भी दुकान के मालिक ने निकाल दिया है जिसके चलते वह किसी ठिकाने की तलाश में भटक रहा है।

नैनीताल की सर्द रात में इस बालक का भटकना उन विसंगतियों से हमारा परिचय कराता है जिसके चलते किसी मासूम का बचपन छिन जाता है। वह बेबस और लाचार होकर किसी के यहाँ गुलामी की तरह काम करने को मजबूर हो जाता है। इसकी तुलना हम कहानी की पृष्ठभूमि में चित्रित हँसते-खेलते अंग्रेज बच्चों से करें तो यह प्रकरण और मार्मिक हो उठता है। लेखक ने बाल की दारुण मनःस्थिति का बखूबी अंकन किया है, जहाँ वह यह नहीं समझ पाता कि क्या करे? साथ ही मित्रों और बालक को बातचीत मध्यवर्गीय चरित्र में व्याप्त संवेदनहीनता का परिचय देती है। जब ये मित्र बालक को लेकर पूरी तरह आश्वस्त हो जाते हैं तब वे उसे कोई काम दिलाने के लिए किसी दूसरे होटल में ठहरे हुए अपने वकील मित्रों के पास ले जाते हैं। पर वहाँ भी बालक को शंका की निगाह से देखा जाता है, उस पर बदमाश, चोर आदि होने के आरोप लगाये जाते हैं। अन्त में दोनों मित्र यह निश्चय करते हैं कि इस बालक की तत्काल में कुछ सहायता की जानी चाहिए। पर इस दया भाव की हकीकत हमारे समक्ष तब उजागर हो जाती है जब वे पास में खुले पैसे न होने के चलते बालक को दस रूपये का नोटे देने की हिम्मत नहीं जुटा पाते। सारी दया, संवेदना, सहानुभूति की कलई खुल जाती है। यहाँ लेखक ने मानव में व्याप्त संवेदनहीनता व अन्तर में व्याप्त द्वन्द्व का चित्रण किया है। जहाँ दया का प्रदर्शन मात्र का अपने दायित्व से छुट्टी पा ली जाती है। इस कुकृत्य के चलते बालक की उम्मीद धूल में मिल जाती है। केवल एक कमीज उसके शरीर से चिपटी पड़ी है, द्वन्द्व के चलते उसके दाँत किटकिटा रहे हैं। उसे इस हालात में छोड़कर दोनों मित्रों का अपने होटल के गर्म कमरे में चले जाना घोर अमानवीयता का परिचायक है। अगले दिन ये मित्र जब वापस जाने के लिए बस में सवार होते हैं तो उन्हें ठण्ड से एक बालक की मौत का पता चलता है। इस बालक की दर्दनाक मौत पर प्रकृति भी शर्मिन्दा है। वह उसके मृत शरीर पर बर्फ की पतली चादर डाल देती है, जिसे देखकर लगता है कि मनुष्य ने न सही पर प्रकृति ने उसके ऊपर कफन ओढ़ा दिया है। प्रस्तुत कहानी का यह मार्मिक अंत पाठक को सोचने पर विवश कर देता है कि क्या एक बालक का भूखे पेट रात की भयानक ठण्ड में ठिठुरकर मर जाना ही उसका भाग्य था?

आपने यह कहानी पढ़ने के दरम्यान यह जरूर ध्यान दिया होगा कि लेखक शब्दों का प्रयोग बहुत सधे अंदाज में करता है। इस प्रकार की नपी-तुली भाषा का प्रयोग जैनेन्द्र कुमार की खासियत है। प्रस्तुत कहानी में यह इस प्रकार हुआ है कि छोटे-छोटे संवादों व कथन के माध्यम से व्यक्ति मन की सारी परतें खुलकर हमारे सामने आ जाती है। कहानी में लेखक ने सधे अंदाज में 'अपना-अपना भाग्य' कथन के पाखण्ड की पोल खोली है। मध्यवर्गीय निकृष्ट सोच जिसका सहारा लेकर सारे मानवीय मूल्यों, संवेदनाओं को दरकिनार कर देता है। एक बाल-मजदूर की विवशता व सामाजिक विद्रपताओं का चित्रण ध्यातव्य है। आर्थिक विसंगतियाँ और सामाजिक संवेदनहीनता किस प्रकार एक बालक को बाल मजदूर बना देती है, उनका हँसता-खेलता बचपन छीन लेती है, इसका विश्लेषण इस कहानी में किया गया है। आपने क्या कभी अपने आस-पड़ोस में ऐसे बाल मजदूरों को देखा है? क्या आपने सोचा है कि किन कारणों के चलते ये बच्चे अपना बचपन भुलाकर यह कार्य करने को मजबूर हैं।

अभ्यास प्रश्न

1.'अपना-अपना भाग्य' कहानी में बालक क्यों अपना घर छोड़कर चला आता है?

2. दोनों मित्र क्यों बालक की कोई सहायता नहीं कर पाते?

3. बालक के साथी की मौत का कारण स्पष्ट कीजिए?

11.6 सारांश

'अपना-अपना भाग्य' कहानी जैनेन्द्र कुमार की बहुचर्चित कहानियों में से है। जिसमें एक बाल मजदूर को केन्द्र में रखकर सामाजिक पाखण्ड व संवेदनहीनता का मनोवैज्ञानिक स्तर पर विश्लेषण किया गया है। जहाँ सिर्फ भाग्य के नाम पर किसी की बेबस छोड़ देना घोर अमानवीयता का परिचायक है। यह वह नव मध्यवर्ग है जो बातें तो बड़ी-बड़ी करता है, पर व्यक्ति की सहायता के नाम पर भाग्य की दुहाई देकर किनारा कर लेता है। यह परतंत्र भारत के नवशिक्षित वर्ग की हकीकत भी है जो अंग्रेजों को खुश रखने के लिए हर प्रकार के कार्य खुशी-खुशी करता है पर अपने ही देशवासियों की सहायता, सहयोग करने में स्वार्थी मनोवृत्ति आगे आ जाती है। इस कहानी में घटना का चित्रण प्रमुख न होकर व्यक्ति की मनोवृत्तियों के चित्रण पर बल दिया गया है। जहाँ भाग्य का पाखण्ड किसी को उसके हाल पर छोड़ देना का बहाना भर है और सहानुभूति सिर्फ दिखावे तक सीमित है। यह भाग्यवादी सिद्धान्त कहीं-न-कहीं उस क्षुद्र मानसिकता की परिचायक है जो हर घटना, विसंगिति को नियति से जोड़कर देखने की आदी है। जैनेन्द्र कुमार इस कहानी के माध्यम से 'अपना-अपना भाग्य' जैसे अन्धिविश्वास के पाखण्ड का पर्दाफाश करते हैं। जो कि समाज के प्रति उसके लगाव को भी रेखांकित करता है।

11.7 शब्दावली

मनोविश्लेषण - मन के विचारों की समीक्षा, चित्त विश्लेषण
मनोविज्ञान - मन की प्रकृति, वृत्तियों आदि का विवेचन करने वाला विज्ञान
सकपकाना - हिचकिचाना, चकित होना, लज्जा आदि के कारण घबराहट में पड़ जाना।
फिलॉसफी - दर्शनशास्त्र
स्तब्ध - गतिहीन, स्थिर
मनोवृत्ति - मन का विकार

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 'अपना-अपना भाग्य' कहानी में बालक द्वारा अपना घर छोड़ देने का प्रमुख कारण गरीबी और कलह का वातावरण है।
2. दोनों मित्रों द्वारा बालक की सहायता न कर पाने का प्रमुख कारण उनकी स्वार्थी मनोवृत्ति है, जिसके चलते वे बालक को दस रुपये का नोट तक देने में हिचकिचाते हैं।
3. बालक के साथी की मौत का प्रमुख कारण दुकान मालिक द्वारा दी जाने वाली यातना है।

11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जैन, सं० निर्मला, जैनेन्द्र रचनावली-, प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
2. पाण्डेय, सं० योगेन्द्र नारायण, कथा भारती -, प्रकाशक-राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद।

11.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह, नामवर, कहानी: नई कहानी- संस्करण-2002, लोकभारती, इलाहाबाद
2. यादव, राजेन्द्र, कहानी: अनुभव और अभिव्यक्ति - वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
3. मधुरेश, हिन्दी कहानी: अस्मिता की तलाश - आधार प्रकाशन, पंचकूला।

11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आधुनिक हिन्दी कहानीकारों में जैनेन्द्र कुमार का स्थान निर्धारित करें।
2. 'अपना-अपना भाग्य' कहानी में लेखक के मुख्य उद्देश्य पर प्रकाश डालिये।

इकाई 12 'अपना-अपना भाग्य' - विश्लेषण एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 मानवीय मूल्यों के ह्रास का चित्रण
12.3.1 समाज में व्याप्त बाल मजदूरी की अमानवीयता का चित्रण
12.4 मध्यवर्गीय पाखण्ड का चित्रण
12.5 'अपना-अपना भाग्य' कहानी का आशय
12.5.1 'अपना-अपना भाग्य' कहानी की पृष्ठभूमि
12.6 'अपना-अपना भाग्य' कहानी की भाषा-शैली।
12.7 सारांश
12.8 शब्दावली
12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

जिस समय जैनेन्द्र कुमार का कथा साहित्य में बतौर लेखक आगमन हुआ वह स्वाधीनता संघर्ष का दौर था। जैनेन्द्र भी इस राष्ट्रीय आन्दोलन मे सक्रिय भूमिका निभाते है। साथ ही रचनात्मक स्तर पर प्रेमचंद बहुत बड़ी लकीर साहित्य जगत में खींच चुके थे। अपने उपन्यासों व कहानियों के माध्यम से उन्होने समाज में चलने व पलने वाली विसंगतियों को स्वर प्रदान किया। यानी अपने कथा लेखन में प्रेमचन्द समाज को आधार बनाकर चलते है। इसी समय जैनेन्द्र का एक युवा लेखक के रूप में आगमन छायावादोत्तर कथा साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। उनकी कहानी लेखन की अलग भावभूमि से प्रेमचन्द भी प्रभावित थे। यह प्रभाव इस कदर बढ़ता है कि दोनों लेखकों में गहरी मित्रता का भाव पनपता है। यह अनायास नहीं है कि कभी जैनेन्द्र कुमार को प्रेमचन्द ने हिन्दी का गोर्की कहा, यह प्रशंसा भाव एक स्थापित लेखक की उदीयमान के प्रति प्रशंसा है। इसके बावजूद तथ्य यह कि जैनेन्द्र कुमार एक अलग रास्ते व कहानी के अलग लहजे का चुनाव करते हैं। प्रेमचन्द्र के यहाँ, जहाँ समाज केन्द्र में है

वही जैनेन्द्र के यहाँ व्यक्ति केन्द्र में है। विचारो की प्रधानता व बौद्धिकता का आग्रह उनके यहाँ प्रमुख रूप से है। सन् 1929 मे प्रकाशित उनका प्रथम कहानी संग्रह 'फाँसी' मे आसपास के जीवन यथार्थ को आधार बनाया गया है, पर वहाँ भी विचारों की प्रधानता प्रमुख है। उनके उपन्यासों में भी व्यक्ति अंतर्जगत के सूक्ष्म विश्लेषण को आप देख सकते है। जहाँ पात्रों की संख्या व कथानक मे बहुलता न होकर चरित्र के आंतरिक मनोभावों के चित्रण पर ज्यादा जोर दिया गया है।

परख (1929), सुनीता (1935) और त्यागपत्र (1937) जैसे उपन्यास कथा साहित्य में जैनेन्द्र की उपस्थिति को मजबूत रूप मे दर्ज कराते है। उनका यह कथाकार रूप लोगों के आकर्षण का केन्द्र इसलिए भी बना क्योंकि उनमें अनोखापन, एक नया संस्कार था जो कि प्रेमचंद के विरोध में नहीं, पर उनसे अलग जरूर है। उनकी इस विशेषता के प्रेमचंद भी कायल थे, प्रेमचंद के अनुसार-''उनमे साधारण सी बात को भी कुछ इस ढँग मे कहने की शक्ति है, जो तुरन्त आकर्षित करती है। उनकी भाषा मे एक खास लोच है, एक खास अन्दाज है। "(आभारः जैनेन्द्र चनावली की भुमिका पृ. 6) यानी कि जैनेन्द्र का अन्दाज व कथा कहने के क्षेत्र मे नवीन कारीगरी से लोगों पर प्रभाव पड़ा। साथ ही यह भी कि उनके पात्र समाजिक न होकर वैयक्तिक हैं जिसके चलते उनके बारे में यह भी धारणा बनी कि वे घटनाओ के, जीवन-जगत के नहीं, पात्रों की वैयक्तिताओं के उपन्यासकार हैं। मनोविश्लेषणवादी कथाकर के रूप में चर्चित जैनेन्द्र अपनी रचना-प्रक्रिया का उद्घाटन अपने उपन्यास 'सुनीता' की भूमिका में इस प्रकार करते हैं - ''कहानी सुनाना मेरा उदेश्य नहीं है, अतः तीन-चार व्यक्तियों से ही मेरा काम चल गया है, इस विश्व के छोटे से छोटे खण्ड को लेकर हम अपना चित्र बना सकते हैं और उसमें सत्य का दर्शन भी करा सकते हैं, जो ब्रह्मांड है वही पिंड में भी है। इसलिए अपने चित्र के लिए बड़े कैनवास की जरूरत मुझे नहीं हुई। थोड़े में समग्रता क्यों न दिखाई जा सके। आप देखें तो पाएंगे कि उनका अपने रचनाकर्म के शुरुआती दौर में दिया गया यह वक्तव्य य उनके समूचे कथा लेखन मे प्रसारित होता है। उनका लक्ष्य पिण्ड मे ब्रह्मांण्ड व सीमीत कैनवास में समग्रता का दर्शन कराने से है, जहाँ वे प्रखर बौद्धिक व चिन्तक ज्यादा मालूम पड़ते है। जैनेन्द्र अपने कथा साहित्य में घटनाओं और चरित्रों से भरे-पूरे संसार की रचना नहीं करते, बल्कि उनके यहाँ व्यक्ति के अर्न्ततम तक जाने के बेचैनी है। पात्र भी उनके यहाँ गिने-चुने हैं, जिससे कि कहानी को ठोस रूप दिया जा सके। विवरण में जाने से उनको परहेज है एवं कम से कम शब्दों से अपनी बात कह देने का प्रयास भी। 'अपना-अपना भाग्य' कहानी में यह प्रवृत्ति आप देख सकते है

'अपना अपना भाग्य' कहानी जैनेन्द्र कुमार की महत्वपूर्ण कहानियों मे से है, जिसमें एक छोटी सी घटना व दो-तीन पात्रों के आधार पर कहानी रची गई है कहानी की शुरूआत नैनीताल के आजादी पूर्व वातावरण को चित्रित करने से आरम्भ होती है । आगे चलकर दो मित्रो व एक बच्चे के भाव चित्रण व मानसिक क्रिया-व्यापार प्रस्तुत करने तक सीमित हो जाती है। घटनाओं की बहुलता व पात्रों की अधिकता यहाँ न होकर मानव के मनोभावों व उसमें निहित

स्वार्थ को उभारना प्रमुख उद्देश्य है। साथ ही भाग्यवादिता के प्रति प्रश्नचिह्न भी खड़ा किया गया है, जो कि लोगो के लिए अपने द्वारा गलत कार्यों को सही ठहराने का बहाना भर है। जैनेन्द्र का अपने पुर्ववर्ती लेखको से अलग यह अंदाज छायावादोत्तरकालीन कथाकारों मे अगली कतार में ला खड़ा कर देता है। ।

12.2 उद्देश्य

प्रथम प्रश्न पत्र के ब्लाक हिन्दी कहानी (स्वतंत्रता पूर्व व पश्चात् कहानी) की 12वीं इकाई आपके सामने है। बहुचर्चित कहानीकार जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'अपना अपना भाग्य' पर यह आधरित है। मध्यवर्गीय समाज में छिजते जा रहे मानवीय संवेदन व स्वार्थ भाव को सहज अंदाज में प्रस्तुत किया गया है। भाग्यवाद की कोरी निरर्थकता को स्पष्ट किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आपः

- स्वतंत्रता पूर्व भारतीयों की स्थिति को स्पष्ट कर सकेंगे।
- मानवीय संवेदना के दिन-पर-दिन हो रहे क्षरण के कारणों पर विचार कर सकेंगे।
- बाल मजदूरी की अमानवीय प्रथा के यथार्थ को रेखांकित कर सकेंगे।
- मध्यवर्गीय दोहरी जिन्दगी के पाखण्ड पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- उन स्थितियों को स्पष्ट कर सकेंगे जिसके चलते एक बालक अपना बचपन भूलकर मजदूरी करने पर विवश हो जाता है।
- झूठी सहानुभूति की निरर्थकता पर टिप्पणी कर सकेंगे।

12.3 मानवीय मूल्यों के पतन का चित्रण

अपने इकाई 11 को पढ़ने के दरम्यान देखा होगा कि किस प्रकार एक बालक ठंड में ठिठुरकर मौत की नींद सो जाता है। इस इकाई में हम विस्तार से उस पर चर्चा करेंगे। 'अपना-अपना भाग्य' कहानी पर सर्वप्रथम हम इसके शीर्षक पर विचार करें तो पाएंगे कि अक्सर हम इस शब्दों का प्रयोग करते हैं। किसी के साथ कुछ बुरा या अच्छा होते देखकर हम अक्सर उसे उसके भाग्य से जोड़ देते हैं। पर आपने सोचा है कि अच्छा और बुरा होना क्या भाग्य की ही देन है? प्रस्तुत कहानी इस बिन्दु पर विचार करने हेतु हमें प्रेरित करती है। शीर्षक की दृष्टि से 'अपना-अपना भाग्य' शीर्षक अर्थवर्त्तापूर्ण है और यह पूरी कहानी को स्पष्ट करने में सहायक है। शीर्षक की महत्ता इस बात में है कि वह पूरे भाव व विचार को कुछ शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त कर सके। साथ ही शीर्षक पाठक के भीतर उत्सुकता उत्पन्न करने वाला भी होना चाहिए, जिसके चलते वह कहानी पढ़ने से अपने आप रोक न सके। इस प्रकार शीर्षक समूची कथा का निचोड़

तो होता ही है, साथ ही पाठकों में उत्सुकता जगाने वाला भी होता है। आपने पूरी कहानी पढ़ी होगी, आपने देखा होगा कि भाग्य के नाम पर किस प्रकार कुछ लोग बदतर जिन्दगी जीने को मजबूर हैं या कर दिये गये हैं। वहीं कुछ लोग झूठी सहानुभूति दिखाकर अपनी सुख-सुविधा में मग्न हैं। 'अपना-अपना भाग्य' शीर्षक इस दृष्टि से अपने आप में परिपूर्ण है।

कथा साहित्य में जैनेन्द्र कुमार की चर्चा एक मनोविश्लेषणवादी रचनाकार के रूप में होती हैं। उनके यहाँ बौद्धिकता का आग्रह प्रबल है यानी कि वे बंधी-बधाई लीक पर सोचने की हिमायती नहीं है। वे तर्क व विचार की कसौटी पर किसी भाव या विचार को ग्रहण करते हैं। साथ ही साथ मानव चरित्रों की जटिलता का उद्घाटन भी उनके यहाँ प्रमुख रूप से विद्यमान हैं। 'अपना-अपना भाग्य' कहानी में आपने देखा होगा कि पात्रों की संख्या बहुत कम है। तीन पात्र प्रमुख हैं जिनके वार्तालाप व क्रिया व्यापार से यह कहानी आगे बढ़ती है। दो सैलानी मित्र घूमने के लिए नैनीताल में आये हुए हैं। मैं जहाँ आधी रात के समय उनकी मुलाकात ठण्ड में ठिठुरते दस-ग्यारह साल के एक बालक से होती है। वह भी एक ऐसे समय जब दोनों मित्र सूनसान रात में प्रकृति की छटा निहाने में मग्न हैं। जिससे हमें इनके संवेदनशील होने का परिचय प्राप्त होता है। चुपचाप बैठे होने के दौरान एक मित्र को लगता है कि कोई आ रहा है। रात के अंधेरे में एक काली-सी मूरत उनकी ओर बढ़ी आयी है- ''तीन गज की दूरी से देख पड़ा, एक लड़का सिर के बड़े-बड़े बालों को खुजलाता हुआ चला आ रहा है। नंगे पैर हैं, नंगे सिर। एक मैली सी कमीज लटकाये है। पैर उसके न जाने कहाँ पड़ रहे हैं, और वह न जाने कहाँ जा रहा है- कहाँ जाना चाहता है? उसके कदमों में जैसे कोई न अगला है, न पिछला है, न दायाँ है, न बायाँ है।''? यह दस बरस के बालक का चित्र है जिसका बचपन मानो छिन गया है, माथे पर अभी से झुर्रियाँ पड़ी प्रतीत होती हैं। इस बालक का कोई घर-द्वार नहीं है, उसे कुछ सूझ नहीं रहा है। इस बालक पर तरस खाकर कोई करम दिलवाने हेतु दोनों मित्र उसे अपने एक वकील मित्र के यहाँ ले जाते हैं। यह वकील मित्र भी छुट्टियाँ बिताने नैनीताल आये हुए हैं। वे इस पहाड़ी बालक को शक की निगाह से देखते हैं और वापस अपने कमरे में सोने चले जाते हैं। वकील साहब का प्रकरण ऐसे लोगों के चरित्र को उजागर करता है जिन्हें दूसरे के दुःख-दर्द से कोई मतलब नहीं। यह सुविधाभोगी वर्ग के प्रतिनिधि हैं।

वकील मित्र द्वारा बालक को कोई काम देने से इनकार करने के बाद दोनों मित्रों के सामने बड़ी समस्या आ खड़ी होती है कि अब इस बालक का क्या किया जाये। वे अब जल्द-से-जल्द इस बालक से अपना पीछा छुड़ाना चाहते हैं। इस संबंध में दोनों के बीच हुआ वार्तालाप झूठी सहानुभूति की परतों को उधेड़ देता है। ''वकील साहब के चले जाने पर, होटल के बाहर आकर मित्र ने अपनी जेब में हाथ डालकर कुछ टटोला। पर झट कुछ निराशाभाव से हाथ बाहर कर मेरी ओर देखने लगे।"

''क्या है,''

''इसे खाने के लिए कुछ देना चाहता था'', अंग्रेजी में मित्र ने कहा- ''मगर दस-दस के नोट हैं।''

''नोट ही शायद मेरे पास हैं, देखूँ?''

सचमुच मेरे पाकिट में भी नोट ही थे। वे फिर अंग्रेजी में बोलने लगे। लड़के के दाँत बीच-बीच में कटकटा उठते थे। कड़ाके की सर्दी थी।

मित्र ने पूछा- ''तब ?''

मैने कहा- ''दस का नोट ही दे दो।'' सकपकाकर मित्र मेरा मुँह देखने लगे। -''अरे यार! वजट बिगड़ जायेगा। हृदय में जितनी दया है, पास में उतने पैसे तो नहीं हैं।''

''तो जाने दो, यह दया ही इस जमाने में बहुत है।''- मैने कहा।

उपरोक्त कथोपकन में आपने देखा कि किस प्रकार दोनों मित्र बालक को चाह कर भी कुछ नहीं दे पाते। पर क्या वे वास्तव में उसके लिए कुछ करना चाहते हैं, इसका उत्तर नकारात्मक ही होगा। लेखक ने बड़े सहज अंदाज में इनकी सहानुभूति व संवेदना की कलई खोल दी है। बच्चे के सामने अंग्रेजी में किया जाने वाला वार्तालाप भी इस बात का सूचक है कि उन्हें अपनी पोल खुलने का डर है। वे यहाँ भी चौकन्ने हैं कि बच्चे के सामने उनकी हैसियत और उनकी झूठी सहानुभूति का पता न चले। यह मध्यवर्गीय चरित्र में आये मानवीय मूल्यों में गिरावट का प्रतीक है। प्रस्तुत कहानी में सारा दया भाव दस रुपये के सामने दब जाता है और बालक को मिलती है झूठी सहानुभूति और आश्वासन। बालक असमय ठंड में ठिठुरकर मौत की नींद सो जाता है। मौत की खबर पर दोनों मित्रों की प्रतिक्रिया यही है कि भाग्य को यही मंजूर था। पर सवाल यह है कि क्या बालक की मौत का जिम्मेदार भाग्य को ठहराया जा सकता है? आपने पूरी कहानी पढ़ी है, क्या आपको लगता है कि यह सच है। लेखक इस कथन के पीछे के पाखण्ड को उजागर करता है, साथ ही मध्यवर्ग में संवेदना व मूल्यों में आ रही गिरावट को भी रेखांकित करता है।

अभ्यास प्रश्न

1. 'अपना-अपना भाग्य' कथन प्रस्तुत कहानी में किसके लिए कहा गया है?
2. प्रस्तुत कहानी के शीर्षक की सार्थकता पर विचार करें।
3. दोनों मित्र बालक की किसी प्रकार की सहायता क्यों नहीं कर पाते?

12.3.1 समाज में व्याप्त बाल मजदूरी की अमानवीयता का चित्रण

आपने अपने आस-पास बच्चों को मजदूरी करते हुए देखा होगा। क्या आपने गौर किया कि वह ऐसा क्यों करते हैं, क्या उनकी इच्छा खेलने व पढ़ने की नहीं होती। क्यों सिर्फ हर जगह

उन्हें दुत्कार व मार ही मिलती है। प्रस्तुत कहानी में एक ऐसा ही बालक है जिसका बचपन छिन गया है, वह अमानवीय स्थिति में मजदूरी करने को विवश है। यह दस बरस का बालक आधी रात को कड़ाके की ठण्ड में किसी आश्रय की तलाश में भटक रहा है। उसे कुछ नहीं सूझ रहा है, उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो ''वह जैसे कुछ भी नहीं देख रहा था। न नीचे की धरती, न ऊपर चारों तरफ फैला हुआ कुहरा, न सामने का तालाब और न बाकी दुनिया। वह बस अपने विकट वर्तमान को देख रहा था।'' एक ऐसा विकट वर्तमान जहाँ उसके लिए कोई सहारा नहीं है, भूखे, अधनगें वह नैनीताल की ठण्ड में न जाने किसकी तलाश कर रहा है। दोनों मित्रों और बालक के बीच का संवाद ध्यातव्य है-

''तू कहाँ जा रहा है रे?''

उसके अपनी सूनी आँखें फाड़ दीं।

''दुनिया सो गयी, तू ही क्यों घूम रहा है?''

बालक मौन मूक, फिर भी बोलता हुआ चेहरा लेकर खड़ा रहा।

''कहाँ सोयेगा?''

''यहीं कहीं।''

''कल कहाँ सोया था?''

''दुकान पर।''

''आज वहाँ क्यों नहीं?''

''नौकरी से हटा दिया।''

''क्या नौकरी थी?''

''सब काम। एक रुपया और जूठा खाना।''

यहाँ आपने इस पर भी ध्यान दिया होगा कि कहानी में किसी पात्र का नाम नहीं दिया गया है। ऐसे पात्र आपको अपने आस-पास हर जगह मिल जाएँगें। यहाँ बालक का ऐसे बाल मजदूरों के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाता है जो आर्थिक दुश्चिंता व मजबूरी के कारण मजदूरी करने को विवश है। जहाँ पर अमानवीय यातना सहने के दौरान कितने बच्चों की मौत भी हो जाती है, पर तथाकथित सभ्य समाज का इससे कुछ लेना-देना नहीं। प्रस्तुत कहानी का बालक घर से भाग आया है। भागने का कारण पूछने पर वह बताता है कि- ''मेरे कई छोटे भाई-बहन हैं- सो भाग आया, वहाँ काम नहीं, रोटी नहीं। बाप भूखा रहता था और मारता था। माँ भूखी रहती

थी और रोती थी। सो भाग आया।यानी गरीब परिवार, सदस्यों की अधिक संख्या, अशिक्षा आदि प्रमुख कारण हैं जो बाल मजदूरी को बढ़ावा देते हैं। 'अपना-अपना भाग्य' कहानी में बाल मजदूरी की अमानवीयता का चित्रण तो किया गया है, साथ-ही-साथ समाज का इन छोटे बालकों के प्रति रवैये व कारणों पर भी प्रकाश डाला गया है। जैनेन्द्र कुमार की खासियत यह है कि वे बहुत नपे-तुले शब्दों व सीमित पात्रों की सहायता से मानव के अंतर्जगत का विश्लेषण करते हैं। उन रहस्यों की तलाश करते हैं जिन्हें मानव ने तरह-तरह के आदर्शवादी कथन रूपी पर्दों से ढक रखा है। प्रस्तुत कहानी में एक बालक भाग्य के आडम्बर पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करता है। हम यह भी कह सकते हैं कि एक नन्हें बालक का मजदूर रूप में होना उसका भाग्य नहीं वरन् सामाजिक व आर्थिक विसंगति है। जहाँ कुछ लोग अपने हित साधन के लिए इनका शोषण करते हैं। यहाँ मानवीयता की भावना नदारद है। इस मध्यवर्गीय चरित्र की पड़ताल लेखक का प्रमुख उद्देश्य है जो अपनी सुख-सुविधा के लिए किसी की मौत पर भी तमाम तरह की झूठी रुढ़ियों का प्रयोग करता है। जैनेन्द्र के यहाँ चूंकि विचारों की प्रधानता है, जहाँ तर्क के आधार पर किसी चरित्र को देखने और दिखाने का प्रयास किया गया है। इसी के चलते आप को कहानी पढ़ते हुए कभी-कभी देखने और दिखाने का प्रयास किया गया है। इसी के चलते आप को कहानी पढ़ते हुए कभी-कभी यह भी प्रतीत होता होगा कि एक तटस्थ भाव से लेखक चरित्रों की विशेषताओं को उद्घाटित कर रहा है। फिर भी हमें यह यह पता जरूर चल जाता है कि लेखक की सहानुभूति किसके प्रति है। यानी जैनेन्द्र कुमार अपनी कहानियों के माध्यम से मानव मूल्यों में आ रही गिरावट के प्रति चौकन्ने हैं और जो शोषित हैं, उसके भविष्य को लेकर चिंतित भी नजर आते हैं।

अभ्यास प्रश्न

(1) उन कारणों पर प्रकाश डालिये जिनके चलते बालक अपने घर से भागकर नैनीताल मजदूरी करने आता है?

12.4 मध्यवर्गीय पाखण्ड का चित्रण

'अपना-अपना भाग्य' कहानी में दो मित्रों के माध्यम से मध्यमर्ग के झूठ व पाखण्ड का चित्रण भी किया गया है। यहाँ आप देखेंगे किस प्रकार दोनों मित्रों की झूठी सहानुभूति तब खुलकर सामने आ जाती है। जब उनमें से किसी की हिम्मत बालक को दस रुपये देने की नहीं होती। इनका सारा प्रकृति प्रेम ढोंग प्रतीत होने लगता है। बालक को इनके द्वारा मिलता है तो सिर्फ आश्वासन जो उसे जिन्दा नहीं रख पाती। जैनेन्द्र कुमार अपने कथा लेखन में जीवन में व्याप्त समस्याओं के जड़ की तलाश करते हैं। स्वार्थ से परिपूर्ण मनोवृत्ति किस प्रकार मनुष्य को अपनी गिरफ्त में ले चुकी है कि इन मित्रों को यही लगता है कि जाने दो, यह दया की इस जमाने में बहुत है। उसके बाद बालक को अगले दिन 'होटल डी पब' में आने को कहकर सोने चल देते

हैं, कहीं-न-कहीं इनके मन में अपने कृत्य से अपराधबोध भी है। पर वे उससे दार्शनिक अंदाज का सहारा लेकर दरकिनार करने का प्रयास करते हैं-

''ठंडी साँस खींचकर मित्र ने कहा- ''कहाँ सोएगा?''

''यहीं कहीं, बेंच पर, पेड़ के नीचे, किसी दुकान की भट्टी में।''

बालक फिर उसी प्रेम-गति से एक ओर बढ़ा और कुहरे में मिल गया। हम भी होटल की ओर बढ़े। दवा तीखी थी- हमारे कोटों को पारकर बदन में तीर-सी लगती थी।

सिकुड़ते हुए मित्र ने कदा ''भयानक शीत है। उसके पास कम- बहुत कम कपड़े।''

'यह संसार है यार!'' मैंने स्वार्थ की फिलासफी सुनायी- ''चलो, पहले बिस्तर में गर्म तो हो लो, फिर किसी और की चिन्ता करना।''

उदास होकर मित्र ने कहा- ''स्वार्थ! जो कहो, लाचारी कहो, निठुराई कहो, या बेहयाई।''

उपरोक्त कथन मध्यवर्गीय चरित्र को उजागर करता है, जहाँ सारी सहानुभूति के बावजूद वे बालक के लिए कुछ नहीं कर पाते। स्वार्थ यहाँ प्रबल हो जाता है, पर मन में कहीं-न-कहीं कुछ न कर पाने का अफसोस भी है। जैनेन्द्र कुमार ने मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को यहाँ उजागर किया है, जो मध्यवर्ग की नियति प्रतीत होता है। ''यह संसार है यार'' का दार्शनिक अन्दाज बड़े सहज ढंग से सारी हकीकत से हमें रूबरू करा देता है। यह इस स्वार्थी मानसिकता को भी स्पष्ट करता है कि दुनियां में ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं, हमें उसे लेकर ज्यादा चिन्तित नहीं होना चाहिए। किसी के लिए कुछ कहने के बात आने पर हम उसे उसके हालात पर जस का तस छोड़ देते हैं। झूठा अहंकार, निर्ममता, दिखावटी सहानुभूति का चित्रण प्रस्तुत कहानी में प्रमुख रूप से हुआ है। कहानी का अंत पाठकों को नियति पर सोचने के लिए विवश करता है। जब वे दोनों मित्र वापस जाने के लिए ''मोटर में सवार हाते ही थे कि यह समाचार मिला कि पिछली रात, एक पहाड़ी बालक सड़क के किनारे, पेड़ के नीचे ठिठुरकर मर गया।

मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस बरस की उम्र और वही काले चिथड़ों की कमीज मिली। आदमियों की दुनिया ने बस यही उपकार उसके पास छोड़ा था।

पर बताने वालों ने बताया कि गरीब के मुँह पर, छाती, मुट्ठी और पैरों पर बर्फ की हल्की-सी चादर चिपक गयी थी। मानों दुनियां की बेहयाई ढँकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफेद और ठण्डे कफन का प्रबन्ध का दिया था।

सब सुना और सोचा- अपना-अपना भाग्य।'

यह अंत मानव की निष्ठुरता व उसके स्वार्थी मनोवृत्ति को उजागर करता है। साथ ही भाग्य के विषय में एक प्रश्न भी हमारे विचार हेतु प्रस्तुत करता है कि क्या बालक की मौत की जिम्मेदारी भाग्य पर है या उस स्वार्थी मनोवृत्ति पर जो आदमी की आदमी नहीं समझने देती। जहाँ गरीब आदमी की हैसियत कीड़े-मकोड़ों से भी बदतर बना दी गई है। प्रकृति द्वारा बालक के शरीर पर बर्फ की चादर ओढ़ा देना मानवीय मूल्यों में हो रहे पतन का सूचक है। बालक की इस प्रकार की कठोर जिन्दगी व उसकी असमय मौत गरीबी, मध्यवर्गीय अवसरवादिता व निष्ठुरता की देन है।

अभ्यास प्रश्न

(1) प्रस्तुत कहानी के आधार पर बालक का चरित्र चित्रण कीजिए।
(2) उन कारणों पर प्रकाश डालिये जो बालक की मौत के जिम्मेदार हैं।

12.5 'अपना-अपना भाग्य' कहानी का आशय

'अपना-अपना भाग्य' कहानी में जैनेन्द्र कुमार का उद्देश्य मध्यवर्गीय समाज की निष्ठुरता और अमानवीयता का उद्घाटन करना है। आपने महसूस किया होगा कि हमारे समाज में व्यक्ति की सोच आत्मकेंद्रित होती जा रही है। उसे इस बात से काई फर्क नहीं पड़ता कि क्या आस-पड़ोस में घट रहा है। जीवन की भाग-दौड़ में किसी के पास इतनी फुर्सत नहीं है कि वह दूसरों के दुख-दर्द, परेशानी को महसूस कर सके। यह प्रवृत्ति मानवीयता के ह्रास की सूचक है। जिसमें सिर्फ अपना हित या अपने बचाव के लिए हर प्रकार के हथकंडे अपनाना जायज ठहराया जाता है। 'अपना-अपना भाग्य' कहानी भी इस संवेदना के क्षरण को मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत करती है। मध्यवर्गीय पात्रों की दिखावटी सहानुभूति, मानसिक द्वंद्व व स्वार्थी प्रवृत्ति का चित्रण यहाँ प्रमुख है। जिसके चलते एक बालक की निर्मम मौत प्रस्तुत कहानी में दिखाई गई है। इसके बावजूद भी यह दोनों मित्र इसका दोषी अपने आप को न मानकर बालक के भाग्य से जोड़ देते हैं। यह मानव के नितान्त संवेदनहीन होते जाने का लक्षण है।

प्रस्तुत कहानी में लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि एक बालक किस प्रकार गरीबी व शहरी लोगों की निष्ठुरता का शिकार होकर मौत का शिकार बन जाता है। पर यह मौत स्वाभाविक मौत न प्रतीत होकर हत्या नजर आती है। यानी कि बालक मरता नहीं बल्कि मार दिया जाता है। तथाकथित समाज के उन सभ्य लोगों द्वारा जो मानव को समान भाव से देखने का दंभ भरते हैं। 'अपना-अपना भाग्य' शीर्षक यहाँ एक प्रतीक के रूप में हे, जिसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य के साथ जो भी घटित होता है, वह उनके भाग्य पर निर्भर करता है। पर पूरी कहानी पढ़ने के बाद आप इस कथन को सहजता से अस्वीकार कर देंगे। कारण कि वर्तमान परिदृश्य में भाग्य जैसी बात बेमानी है। इस कहानी में तो इसकी निरर्थकता से आप बखूबी परिचित होंगे।

लेखक का मंतव्य यह है कि किसी अनाथ, गरीब की मौत को उसके भाग्य से जोड़ देना सभ्य समाज की निर्ममता है, जो यह कहकर अपने दायित्व से छुटकारा पा लेना चाहता है। समाज के प्रति उसके भी कुछ कर्त्तव्य हैं इस विचार से उन्हें कोसों दूर रखता है। 'अपना-अपना भाग्य' कहानी में बाल-मजदूर की अमानवीय स्थिति व मध्यवर्ग में व्याप्त संवेदनशीलता का उद्घाटित किया गया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रस्तुत कहानी अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल हैं

12.5.1 'अपना-अपना भाग्य' कहानी की पृष्ठभूमि

आपने कहानी को पढ़ने के दौरान यह महसूस किया होगा कि इसका वातावरण आजादी पूर्व का है। जब अंग्रेजों का शासन था और सारी सुख-सुविधाओं पर उनका अधिकार था। यहाँ पर तीन तरह के लोग हैं, एक तो अंग्रेज जो अपने को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, दूसरे पढ़े लिखे भारतीय जो अंग्रेजों के आगे नतमस्तक है, परन्तु गरीब भारतीयों का शोषण करना अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं, तीसरा वर्ग उनका है जिसका शोषण होता है। साथ ही लेखक ने अंग्रेज स्त्रियों और भारतीयों स्त्रियों के चित्रण के माध्यम से इन दोनों के बीच के अन्तर को भी रेखांकित किया है। यानी कि यहाँ महिला, पुरुष, बच्चे सब हैं। नैनीताल के इस वातावरण में कहीं अधिकार गर्व से तने और अकड़कर चलने वाले अंग्रेज, हैं तो वहीं अपने सम्मान और प्रतिष्ठा को भूलकर घोड़ों की बाग थामे चलने गरीब पहाड़ी भी है। कहीं भागते, हँसते, शरारत करते, लाल-लाल अंग्रेज बच्चे तो वहीं पीली-पीली आँखे फाड़े, पिता की ऊँगली थामकर चलने वाले भारतीय नौनिहाल भी हैं। अपने बच्चों के साथ हँसते-बिलखते व नौका विहार का आनन्द उठाते । अहंकारी अंग्रेज जोड़ों का खुलापन परतंत्र भारत की तस्वीर प्रस्तुत करता है। जहाँ, ''अंग्रेज-रमणियाँ थी जो धीरे-धीरे नहीं चलती थीं, - तेज चलती थीं। उन्हें न चलने में थकावट आती थी, न हँसने में मौत आती थी। कसरत के नाम पर घोड़े पर भी बैठा सकती थीं और घोड़े के साथ ही साथ जरा जी होते ही, किसी-किसी हिन्दुस्तानी पर कोड़े भी फटकार सकती थीं। वह दो-दो, तीन-तीन, चार-चार की टोलियों में निःशंक, निरापद इस प्रवाह में अपने स्थान को जानती हुई सड़क पर चली जा रही थी।''

उधर हमारी भारत की कुल-लक्ष्मी सड़क किनारे सहमी-सिमटी सी दामन बचाना चली जा रही है। इसके साथ ही रंग से भारतीय पर मानसिकता से अंग्रेज वर्ग का एक नमूना भी यहाँ लेखक द्वारा प्रस्तुत किया गया है जो अंग्रेजों जैसा होने की इच्छा पाले हुए है। अंग्रेजों का अंधानुकरण जिनका परम पुनीत कर्तव्य है और जो अंग्रेज वर्ग की हर प्रकार से सेवा करने को तत्पर है, पर अपने देशवासियों को वे उपेक्षा की नजर से देखते हैं। साथ ही उनके शोषण में अंग्रेजों के सहभागी भी हैं। प्रस्तुत कहानी में तत्कालीन सामजिक परिवेश साकार हो उठा है। आप इसे पढ़कर नैनीताल के स्वतंत्रता पूर्व वातावरण का सहज अन्दाजा लगा सकते हैं। साथ ही अंग्रेजों के समक्ष भारतीयों की स्थिति पर टिप्पणी कर सकते हैं। अशिक्षा एवं रुढ़ियों में जकड़े भारतीय समाज की जीवंत झाँकी लेखक ने कहानी के पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत की है।

12.6 'अपना-अपना भाग्य'कहानी की भाषा-शैली

'अपना-अपना भाग्य' जैनेन्द्र कुमार की महत्वपूर्ण कहानियों में से है। जिससे हमें उनकी कहानी-कला का परिचय प्राप्त होता है। आपने प्रेमचंद की कोई न कोई कहानी जरूर पढ़ी होगी। क्या आपको प्रेमचंद व जैनेन्द्र की कहानियों में कुछ अन्तर दिखाई देता है। आपने देखा होगा कि प्रेमचन्द की कहानी में जहाँ घटनाओं के चित्रण व वर्णन पर अधिक जोर है, वहीं जैनेन्द्र के यहाँ व्यक्ति मन की हलचलों को अभिव्यक्त किया गया है। इकाई के आरंभ में जैसा कि कहा गया कि जैनेन्द्र के यहाँ बौद्धिकता व मनोविश्लेषण की प्रधानता है। वे अपनी कहानियों में मनुष्य में निहित आन्तरिक प्रवृत्तियों को अध्ययन का विषय बनाते हैं।

'अपना-अपना भाग्य' कहानी भी उनकी प्रारम्भिक कहानी होने के बावजूद इन गुणों से युक्त है। प्रस्तुत कहानी में घटनाएँ उतनी महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि चरित्र चित्रण। चरित्र-चित्रण के दरम्यान जैनेन्द्र कुमार पात्रों के क्रियाकलाप का संक्षिप्त विवरण देते हैं, साथ ही उनके यहाँ शब्दों का कम-से-कम प्रयोग करने की सजगता भी दिखाई देती है। अपने महसूस किया होगा। खासतौर पर दोनों मित्रों व बालक के संवाद के दरम्यान कि संवाद छोटे-छोटे हैं। उदाहरण के लिए-

''वकील साहब!''

वकील लोग, होटल के ऊपर के कमरे से उतरकर आये। कश्मीरी दोशाला लपेटे थे, मोजे-चढ़े पैरों में चप्पल थी। स्वर में हल्की-सी झुंझलाहट थी, कुछ लापरवाही थी।

''आ-हा फिर आप! कहिये।''

''आपको नौका की जरूरत थी न? - देखिए यह लड़का है।''

''कहाँ से ले आये? - इसे आप जानते हैं?''

''जानता हूँ- यह बेईमान नहीं हो सकता।''

''अजी, ये पहाड़ी बड़े शैतान होते हैं। बच्चे-बच्चे में गुन छिपे रहते हैं। आप भी क्या अजीब हैं- उठा लायें कहीं से- लो जी, यह नौकर लो।''

''मानिए तो, यह लड़का अच्छा निकलेगा।''

''आप भी... जी, बस ख़ूब हैं। ऐरे-गैरे को नौकर बना लिया जाय और अगले दिन वह न जाने क्या-क्या लेकर चम्पत हो जाय।''

''आप मानते ही नहीं, मैं क्या करूँ।''

''मानें क्या खाक ? - आप भी... । जी अच्छा मजाक करते हैं..... अच्छा अब हम सोने जाते हैं।''

उपरोक्त संवाद संक्षिप्त होने के बावजूद सारी वस्तुस्थिति व मनोभावों का स्पष्ट कर देता है। जो कि मध्यवर्गीय शुद्ध मानसिकता को अभिव्यक्त करते हैं। ऐसा ही वार्तालाप बालक को कुछ रुपये देने के संदर्भ में दोनों मित्रों के बीच में भी आपने देखा होगा। इस कहानी में घटनाएँ बहुत ज्यादा नहीं हैं। एक बालक की ठंड में ठिठुरकर होने वाली मौत इसमें प्रमुख घटना है। पर इस घटना के पीछे की हकीकत को उजागर करना लेखक का प्रमुख उद्देश्य है। उनकी यह कहानी बाहरी घटनाओं का चित्रण नहीं करती जितना कि भीतरी दबावों का चित्रण करती है। पात्रानुकूल संवाद भी उनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है जो कि पात्रों की मनःस्थिति जानने में सहायक है।

प्रस्तुत कहानी में मानव मन में चलने वाले अंर्तद्वंद्व का कुशल अंकन हुआ है। बालक के हाव-भाव व कथन द्वारा उसकी मनःस्थिति का पता चलता है। दोनों मित्रों के मन में चलने वाले अंर्तद्वन्द्व इस कहानी की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। यह द्वंद्व की स्थिति बालक के चित्रण में भी हम देख सकते हैं।

भाषा के स्तर पर यह कहानी सहज व सरल है। सरल शब्द, छोटे-छोटे वाक्यों व संक्षिप्त संवाद व आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग यहाँ द्रष्टव्य है। यह भाषा और कहानी कहने का अंदाज सीधे पाठकों के मन में उतरता चला जाता है। कभी-कभी मुख्य अर्थ गौण होकर अन्य संदर्भों से हमारा साक्षात्कार करा देता है। यह अर्थ की बहुस्तरीयता जैनेन्द्र के गहरे पर्यवेक्षण, अनुभव व दर्शन की उपज है।

अपना-अपना भाग्य' कहानी का अंत भी कथा-कौशल की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कहानी का अंत पाठकों के समय एक प्रश्न उपस्थित कर देता है कि कैसा भाग्य, किसका भाग्य? इस प्रकार इस कहानी का यह आकस्मिक अंत इसे और रोचक बना देता है। साथ ही इसका आरंभ भी प्रभावोत्पादक है। कहानी की शुरुआत कहाँ से हो और उसका अंत किस बिन्दु पर हो यह कौशल किसी कहानीकार को महत्वपूर्ण बनाता है। जैनेन्द्र कुमार के यहाँ इस कौशल का बखूबी निर्वाह हुआ है।

प्रस्तुत कहानी के शीर्षक पर हम विचार करें तो पहली नजर में ही 'अपना-अपना भाग्य' शीर्षक पाठक में कौतुहल उत्पन्न करने वाला है। साथ ही यह शीर्षक पूरी कहानी के मर्म को भी उद्घाटित करता है। यहाँ पर शीर्षक एक सामान्य शब्द मात्र न होकर विशेष अर्थ ग्रहण कर लेता है। किसी की मौत व सुख-सुविधा को उसके भाग्य से जोड़ देना साधारण सी बात है। पर यह कहानी इस बात की पड़ताल करती है कि भाग्य की बात करना अनुचित ही नहीं अमानवीय भी है। साथ ही यह उद्घाटित भी कि ऐसे शब्दों का प्रयोग हम अपनी कमजोरियों एवं कमियों को

छुपाने के लिए ज्यादा करते हैं। एक गैरजिम्मेदारी का भाव यहाँ प्रमुख है जो सिर्फ अपनी सुख-सुविधा पर जोर देता है। शीर्षक दृष्टि से 'अपना-अपना भाग्य' उचित जान पड़ता है जो कि कहानीकार की महत्ता को रूपायित करता है।

12.7 सारांश

आपने जैनेन्द्र कुमार द्वारा लिखित कहानी 'अपना-अपना भाग्य' का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। आपने महसूस किया होगा कि यह कहानी अपने सीमित पात्रों के माध्यम से मानव चरित्र का विश्लेषण करती है। कहानी एक बाल मजदूर के ईर्द-गिर्द घूमती है, जो परिवार की घोर गरीबी के चलते नैनीताल आकर व एक दुकान पर मजदूरी करता है। किसी कारणवश मालिक इसे नौकरी से निकाल देता है। रात को अधनंगे अकेले भटकने के दौरान इसकी मुलाकात दो सैलानी मित्रों से होती है जो रात में नैनीताल की खूबसूरती का आनंद उठा रहे हैं। इस बालक से वे कई तरफ का सवाल पूछते हैं और उसकी सहायता के लिए उसे किसी दूसरे होटल में ठहरे अपने वकील मित्रों के पास ले जाते हैं। पर वहाँ से भी बालक को कोई मदद नहीं मिलती। अंत में दोनों मित्र खुद उसकी सहायता के लिए कुछ पैसे देना चाहते हैं। पर पास में खुले पैसे न होने के चलते वे बालक से कल मिलने का वादा करने अपने होटल में सोने चले जाते हैं इधर रात में ठंड से ठिठुरकर बालक की मौत हो जाती है। दोनों मित्रों को जब इसकी सूचना मिलती है तो वे यह कहकर अपने को सांत्वना देते हैं कि यही उसके भाग्य में लिखा था।

प्रस्तुत कहानी में घटनाएँ न के बराबर हैं, यहाँ चरित्र चित्रण पर ज्यादा जोर है। जैनेन्द्र कुमार यहाँ मानव मन के विश्लेषण में रत दिखाई देते हैं। आपने संवादों को पढ़ते समय यह ध्यान दिया होगा कि पात्रों की मनोस्थिति उनके कथनों से स्पष्ट होती है। प्रकारांतर में यह कहानी मानवीय संबंधों में आ रही गिरावट व संवेदनहीनता को उजागर करती है। मानवीय संवदेना से रचित मध्यमवर्गीय समझ की क्षुद्र मानसिकता को इस कहानी में उजागर किया गया है। यह समाज एक बालक की भूख, गरीबी से हुई मौत को भी 'अपना-अपना भाग्य' कहकर पल्ला झाड़ लेता है। भाग्य की निरर्थकता मनुष्य की निर्ममता का चित्रण इस कहानी का प्रमुख उद्देश्य है, जिससे यह कहानी सफल साबित होती है।

12.8 शब्दावली

निरुद्देश्य - बिना किसी उद्देश्य के।

पार्श्व - किनारा

सुरम्य - रमणीय, मनोहर

अनुपम - उपमारहित, सर्वोत्तम

सधैर्य - धैर्ययुक्त

एकनिष्ठ - एक से ही अनुराग रखने वाला।

प्रतिष्ठा - सम्मान, गौरव, मान-मर्यादा।
निःशंक - जिसे किसी प्रकार का भय न हो।
निरापाद - आपत्ति से रहित, सुरक्षित
परिवेष्टन - चारों ओर से घेरने की वस्तु
निठुराई - क्रूरता, दयाहीनता।

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 'अपना-अपना भाग्य' कथन प्रस्तुत कहानी में बालक की मौत पर दोनों मित्रों द्वारा कहा गया है।
2. 'अपना-अपना भाग्य' शीर्षक पूरी कहानी के मूल भाव को स्पष्ट करता है।
3. बालक की सहायता न कर पाने का प्रमुख कारण मित्रों की स्वार्थी मनोवृत्ति है।
4. घर के कलह व गरीबी के चलते बालक मजदूरी करने को विवश होता है।
5. गरीबी व मध्यवर्गीय संवेदनहीनता बालक की ही मौत के जिम्मेदार हैं।

12.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. जैन, सं० निर्मला, जैनेन्द्र रचनावली - प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली।
2. पाण्डेय, सं. योगेन्द्र नारायण, कथा भारती - प्रकाशक-राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद

12.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह, नामवर, कहानी: नयी कहानी -संस्करण-2002, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. यादव, राजेन्द्र, कहानी: अनुभव और अभिव्यक्ति- वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
3. मधुरेश, हिन्दी कहानी: अस्मिता की तलाश- आधार प्रकाशन, पंचकूला

12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 'अपना-अपना भाग्य' कहानी के प्रमुख पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए।
2. भाषा और संवाद की दृष्टि से 'अपना-अपना भाग्य' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।
3. 'अपना-अपना भाग्य' कहानी के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए शीर्षक की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।

इकाई 13 'मलबे का मालिक-मोहन राकेश: पाठ एवं विवेचन

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 'मलबे का मालिक': कहानी का मूल पाठ
13.4 नई कहानी और मोहन राकेश
13.5 मलबे का मालिक: विवेचन
13.6 सारांश
13.7 शब्दावली
13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.9 संन्दर्भ ग्रंथ सूची
13.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

मोहन राकेश हिंदी साहित्य के अत्यंत प्रतिष्ठित रचनाकार हैं। 'नई कहानी' के प्रवर्त्तकों में उनका नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। यद्यपि उन्हें सर्वाधिक प्रसिद्धि उनके नाटकों से मिली, पर नाटकों के अलावा साहित्य की अन्य विधाओं (कहानी, उपन्यास, निबंध, संस्मरण, जीवनी, रिपोर्ताज, डायरी आदि) में भी उन्होंने सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई। नई कहानी की वृहत्रयी का निर्माण उनके बिना अधूरा है। मोहन राकेश, कमलेश्वर व राजेन्द्र यादव इसके महत्त्वपूर्ण स्तंभ है। 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', व आधे-अधूरे' जैसे नाटक इनकी शोहरत को बुलंदी तक पहुँचाने का कार्य करते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मोहन राकेश एक बहुमुखी रचनाकार हैं जिन्होंने किसी एक विधा तक अपने को सीमित नहीं रखा।

मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी, 1925 को अमृतसर में एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ। इनका मूल नाम मदनमोहन गुगलानी था। पिता श्री करमचंद गुगलानी पेशे से वकील थे जिनमें साहित्य व संगीत के प्रति गहरा आकर्षण था, जिसका प्रभाव बचपन में ही मोहन राकेश पर भी पड़ा। इनका बचपन अमृतसर में जंडीवाली गली में संयुक्त परिवार में बीता, जहाँ का माहौल शोर-शराबे में भरा हुआ था। साथ ही घर में होने वाले कलह के चलते वचपन से ही ये

अंतर्मुखी प्रकृति के थे। अल्पायु में ही पिता की मृत्यु से इन पर पारिवारिक भरण-पोषण का उत्तरदायित्व भी आ पड़ा। माँ का प्यार इनके जीवन को हर मोड़ पर सहारा देता रहा जो कि अत्यंत सहनशील, निश्छल, सौम्य व स्नेह से युक्त थी। माँ का प्रभाव इन पर इतना गहरा था कि ये आजीवन हर औरत में अपनी माँ के चेहरे की तलाश करते रहे। माँ का विश्वास इनके लिए सबसे बड़ा सम्बल था। माँ ही उनके जीवन में एक ऐसी व्यक्ति थी जिससे वह पूर्णतः संतुष्ट रहे। माँ की मृत्यु (16 अगस्त 1972) के तीन महीने पश्चात् ही मोहन राकेश (3 दिसम्बर 1973) ने भी दुनिया को अलविदा कह दिया। मानों माँ के बिना उनकी जिंदगी का कोई मतलब ही न हो। मोहन राकेश के व्यक्तित्व पर माँ की गहरी छाप थी।

राकेश की आरंभिक शिक्षा अमृतसर के हिन्दू कॉलेज में हुई। आगे चलकर लाहौर के ओरियंटल कॉलेज से उन्होंने 1941 में 16 साल की उम्र में शास्त्री की उपाधि ग्रहण की। इसके बाद अंग्रेजी में बी.ए. व सत्रह साल की उम्र में संस्कृत में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की, जिसमें इन्हें स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ। भारत विभाजन के बाद जालंधर से इन्होंने हिंदी में एम.ए. किया जिसमें इन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया। पारिवारिक दुश्चिंताओं के बावजूद इन्होंने शिक्षा से अपना नाता नहीं तोड़ा। जीवनयापन के दौरान इन्होंने 1947 ई० में डी.ए.वी. कॉलेज जालन्धर में प्राध्यापक का कार्य किया। यहाँ से त्यागपत्र देने के बाद शिमला में 'विशप काटन स्कूल' में नौकरी की, पर यहाँ भी कुछ वर्ष रहने के उपरांत पुनः डी.ए.वी. कॉलेज, हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुए। फिर त्यागपत्र देने के बाद सन् 1962-93 में 'सारिका' पत्रिका के संपादक रहे। 1964 में यहाँ से भी इस्तीफा देने के बाद कुछ समय तक दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया। अंत में इन्होंने स्वतंत्र लेखन को चुना। आपने उपरोक्त विवरण के दरम्यान देखा कि मोहन राकेश ताउम्र इधर से उधर भटकते रहे, कहीं भी टिककर नहीं रह पाये। समझौता भाव इनकी प्रकृति के विपरीत था, जो भी व्यवस्था पसंद नहीं आयी, वहाँ से इस्तीफा देकर चल देते थे। त्यागपत्र मानों हमेशा उनकी जेब में रहता हो। वे ताउम्र एक घर की तलाश करते रहे। जहाँ सुकून के पल बिता सकें, उनकी इसी खोज ने उन्हें खानाबदोश की हैसियत में ला खड़ा कर दिया। उनके सम्पूर्ण साहित्य में घर की इस तलाश को देखा जा सकता है।

मित्रों का भरा-पूरा संसार अपने में समेटे मोहन राकेश का रचना संसार भी व्यापक फलक धारण किये हुए है। उन्होंने साहित्य की सभी विधाओं को अपनी कलम से साधा और बाँधा। अनुवाद, संपादन, शोध-कार्य और पत्रकारिता में महत्वपूर्ण योगदान दिया। नाटकों ने इनकी प्रसिद्धि में बेतहाशा वृद्धि की। साथ ही मोहन राकेश नई कहानी आन्दोलन के प्रवर्तकों में से एक थे। इस आन्दोलन ने हिन्दी कहानी को एक नई दिशा प्रदान की। 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', 'आधे-अधूरे' व 'पैर तले की जमीन' इनके बहुचर्चित नाटक है। 'अंडे के छिलके', 'सिपाही की माँ', 'प्यालियाँ टूटती हैं', 'बहुत बड़ा सवाल', 'शायद', 'रात बीतने तक', 'सुबह से पहले', 'उसकी रोटी', उनकी एकांकियों के नाम है। 'आखिरी चट्टान तक' इनका प्रसिद्ध यात्रा वृत्तांत है। इनके उपन्यास हैं 'अंधेरे बंद कमरे (1961), 'न आने वाला कल

(1968), और अंतराल (1972)। परिवेश (1967), 'बकलम खुद' (1974)। 'मोहन राकेश की साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि' (1975) इनके निबंधों का संग्रह है। डायरी व पत्र लेखन जैसी विधाओं पर भी इन्होंने साधिकार लिखा।

आपने उपरोक्त पंक्तियों में देखा कि मोहन राकेश की प्रसिद्धि का प्रमुख कारण उनके नाटक रहे। फिर भी तथ्य यह है कि वे कथा साहित्य और खासतौर पर नई कहानी के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। राकेश ने अपने लेखन की शुरुआत कहानी लेखन से की, जब सन् 1944 में 19 वर्ष की आयु में इन्होंने अपनी पहली कहानी 'नन्हीं' लिखी, जो मरणोपरांत प्रकाशित हुई। इनकी पहली प्रकाशित कहानी 'भिक्षु' (1946) को माना जता है। इनकी कहानियों का पहला संग्रह सन् 1956 में 'इन्सान के खंडहर' नाम से प्रकाशित हुआ। बहुचर्चित कहानियों में 'मिस पाल', 'आर्द्रा', 'दोराहा', 'छोटी सी चीज', 'धुँधला द्वीप', 'मरुस्थल', 'भूखे', 'फौलाद का आकाश', 'एक ठहरा हुआ चाकू', 'क्वार्टर', 'आदमी और दीवार', 'उर्मिल जीवन', 'सेफ्टी पिन', 'पाँचवे माले का फ्लैट', 'एक और जिंदगी', 'सोया हुआ शहर', 'परामात्मा का कुत्ता', 'फटा हुआ जूता', 'जानवर और जानवर', 'गुंझल', 'मवाली', 'बनिया बनाम इश्क', आदि ध्यातव्य हैं।

13.2 उद्देश्य

स्नातक प्रथम वर्ष के प्रथम प्रश्न पत्र 'हिन्दी कहानी (स्वतंत्रता पश्चात्)' पर आधारित चतुर्थ ब्लाक की यह 13वीं इकाई है। इस इकाई में आप बहुचर्चित कथाकार मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' का अध्ययन करेंगे। इस इकाई में दिये गये मूल पाठ को ध्यान से आप पढ़े, फिर इसी इकाई में प्रस्तुत कहानी के विवेचन के आधार पर कहानी को समझने का प्रयास कीजिए। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- 'मलबे का मालिक' कहानी के मूल पाठ को हृदयंगम कर सकेंगे।
- नई कहानी के उद्भव और विकास के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक कारणों की व्याख्या कर सकेंगे।
- नई कहानी में मोहन राकेश के योगदान पर चर्चा कर सकेंगे।
- 'मलबे का मालिक' कहानी का अपने शब्दों में विवेचन कर सकेंगे।
- मोहन राकेश के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाल सकेंगे।

13.3 'मलबे का मालिक' कहानी का मूल पाठ

साढ़े सात साल के बाद वे लोग लाहौर से अमृतसर आए थे। हाकी का मैच देखने का तो बहाना ही था, उन्हें ज्यादा चाव उन घरों और बाजारों को फिर से देखने का था, जो साढ़े सात साल पहले उनके लिए पराए हो गए थे। हर सड़क पर मुसलमानों की कोई न कोई टोली घूमती नजर आ जाती थी। उनकी आंखें इस आग्रह के साथ वहां की हर चीज को देख रही थीं, जैसे वह शहर साधारण शहर न होकर एक अच्छा-खासा आकर्षण-केंद्र हो।

तंग बाजारों में से गुजरते हुए थे एक-दूसरे को पुरानी चीजों की याद दिला रहे थे... देख-फतहदीना, मिसरी बाजार में अब मिसरी की दुकानें पहले से कितनी कम रह गई हैं!...उस नुक्कड़ पर सुक्खी भठियारिन की भट्टी थी, जहां अब यह पानवाला बैठा है।... यह नमक मंडी देख लो, खान साहब! यहां की एक-एक लालाइन वह नमकीन होती हैं कि बस...

बहुत दिनों के बाद बाजारों में तुर्रेदार और लाल तुरकी टोपियां नजर आ रही थीं। लाहौर से आए हुए मुलसमानों में काफी संख्या ऐसे लोगों की थी, जिन्हें विभाजन के समय मजबूर होकर अमृतसर छोड़कर जाना पड़ा था। साढ़े सात साल में आए अनिवार्य परिवर्तनों को देखकर कहीं उनकी आंखों में हैरानी भर जाती और कहीं अफसोस घिर आता-वल्लाह। कटरा जयमलसिंह इतना चौड़ा कैसे हो गया? क्या इस तरफ के सब के सब मकान जल गए?... यहां हकीम आसिफ अली की दुकान थी न? अब यहां के मोची ने कब्जा कर रखा है !

और कहीं-कहीं ऐसे भी वाक्य सुनाई दे जाते-वली, यह मस्जिद ज्यों की त्यों खड़ी है? इन लोगों ने इसका गुरुद्वारा नहीं बना दिया?

जिस रास्ते से भी पाकिस्तानियों की टोली गुजरती, शहर के लोग उत्सुकतापूर्वक उसकी ओर देखते रहते। कुछ लोग अब भी मुलसमानों को आते देखकर आशंकित-से रास्ते से हट जाते, जबकि दूसरे आगे बढ़कर उनसे बगलगीर होने लगते। ज्यादातर वे आगंतुकों से ऐसे-ऐसे सवाल पूछते कि आजकल लाहौर, का क्या हाल है? अनारकली में अब पहले जितनी रौनक होती है या नहीं! सुना है, शाहालमीगेट का बाजार पूरा नया बना है? कृष्णनगर में तो खास तब्दील नहीं आई? वहां का रिश्वतपुरा क्या वाकई रिश्वत के पैसे से बना है? कहते हैं, पाकिस्तान में अब बुर्का बिल्कुल उड़ गया है, यह ठीक है? इन सवालों में इतनी आत्मीयता झलकती थी कि लगता था, लाहौर एक शहर नहीं, हजारों लोगों का सगा-संबंधी है, जिसके हालात जानने के लिए वे उत्सुक हैं, लाहौर से आए हुए लोग उस दिन शहर भर के मेहमान थे, जिनसे मिलकर और बातें करके लोगों को खामखाह खुशी का अनुभव होता था।

बाजार बांसी अमृतसर का एक अपेक्षित-सा बाजार है, जो विभाजन के पहले गरीब मुसलमानों की बस्ती थी। वहां ज्यादातर बांस और शहतीरों की ही दुकानें थीं, जो सबकी सब

एक ही आग में जल गई थीं। बाजार बांसी की वह आग अमृतसर की सबसे भयानक आग थी, जिससे कुछ देर के लिए तो सारे शहर के जल जाने का अंदेशा पैदा हो गया था। बाजार बांसी के आस-पास के कई मुहल्लों को तो उस आग ने अपनी लपेट में ले ही लिया था। खैर, किसी तरह वह आग काबू में आ तो गई, पर उसमें से मुसलमानों के एक-एक घर के साथ हिंदुओं के भी चार-चार, छह-छह घर जलकर राख हो गए। अब साढ़े सात साल में उनमें से कई इमारतें तो फिर से खड़ी हो गई थीं, मगर जगह-जगह मलबे के ढेर अब भी मौजूद थे। नई इमारतों के बीच-बीच में मलबे के ढेर अजीब ही वातावरण प्रस्तुत करते थे।

बाजार बांसी में उस दिन भी चहल-पहल नहीं थी, क्योंकि उस बाजार के ज्यादातर बाशिंदे तो अपने मकानों के साथ ही शहीद हो गए थे और जो बचकर चले गए थे, उनमें से शायद किसी में भी लौटकर आने की हिम्मत बाकी नहीं रही थी। सिर्फ एक दुबला-पतला बुड्ढा मुसलमान ही उस वीरान बाजार में आया और वहां की नई और जली हुई इमारतों को देखकर जैसे भूलभुलैया में पड़ गया। बाएं हाथ को जाने वाली गली के पास पहुंचकर उसके कदम अंदर मुड़ने को हुए, मगर फिर वह हिचकिचाकर वहां बाहर ही खड़ा रह गया, जैसे उसे विश्वास नहीं हुआ कि वह वही गली है या नहीं, जिसमें वह जाना चाहता है। गली में एक तरफ कुछ बच्चे कीड़ी-कीड़ा खेल रहे थे और कुछ अंतर पर दो स्त्रियाँ ऊँची आवाज में चीखती हुई एक-दूसरी को गालियां दे रही थीं।

''सब कुछ बदल गया, मगर बोलियां नहीं बदलीं'', मुसलमान ने धीमें स्वर में अपने से कहा और छड़ी का सहारा लिए खड़ा रहा। उसके घुटने पाजामे से बाहर निकल रहे थे और घुटनों के थोड़ा ऊपर ही उसकी शेरवानी में तीन-चार पैबंद लगे थे। गली से एक बच्चा रोता हुआ बाहर को आ रहा था। उसने उसे पुचकारकर पुकारा, ''इधर आ, बेटे, आ इधर! देख, तुझे चिज्जी देंगे, आ!'' और वह अपनी जपनी जेब में हाथ डालकर उसे देने के लिए कोई चीज ढूंढने लगा। बच्चा क्षण भर के लिए चुप कर गया, लेकिन फिर उसने ओठ बिसोर लिए और रोने लगा। एक सोलह-सतरह बरस की लड़की गली के अंदर से दौड़ती हुई आई और बच्चे रोने के साथ-साथ अपनी बांह छुड़ाने के लिए मचलने लगा। लड़की ने उसे बाहों में उठाकर अपने साथ चिपका लिया और उसका मुंह चूमती हुई बोली, ''चुपकर, मेरा वीर! रोएगा तो मुझे वह मुसलमान पकड़कर ले जाएगा, मैं वारी जाऊं चुप कर!''

बुड्ढे मुलसमान ने बच्चे को देने के लिए जो पैसा निकाला था, वह वापस जेब में रख लिया। सिर से टोपी उतारकर उसने वहां थोड़ा खुजलाया और टोपी बगल में दबा ली। उसका गला खुश्क हो रहा था और घुटने जरा-जरा कांप रहे थे। उसने गली के बाहर की बंद दुकान के तख्ते का सहारा ले लिया और टोपी फिर से सिर पर लगा ली। गली के सामने जहां पहले ऊँचे-ऊँचे शहतीर रखे रहते थे, वहां अब एक तिमंजिला मकान खड़ा था। सामने बिजली के तार पर

दो मोटी-मोटी चीलें बिल्कुल जड़ होकर बैठी थीं। बिजली के खंभे के पास थोड़ी धूप थी। वह कई पल धूप में उड़ते हुए जरों को देखता रहा। फिर उसके मुंह कसे निकला, 'या मालिक!''

एक नवयुवक चाबियों का गुच्छा घुमाता हुआ गली की ओर आया और बुड्ढे को खड़े देखकर उसने रुककर पूछा, ''कहिए मियां जी, यहां किस तरह खड़े हैं?''

बुड्ढे मुसलमान को छाती और बाहों में हल्की-सी कंपकंपी हुई और उसने ओठों पर जबान फेरकर नवयुवक को ध्यान से देखते हुए पूछा, ''बेटे, तेरा नाम मनोरी नहीं है?''

नवयुवक ने चाबियों का गुच्छा हिलाना बंद करके मुट्ठी में ले लिया और आश्चर्य के साथ पूछा, ''आपको मेरा नाम कैसे पता है?''

''साढ़े सात साल पहले तू बेटे, इतना-सा था,'' कहकर बुड्ढे ने मुस्कराने की कोशिश की।

''आज आप पाकिस्तान से आए हैं?'' मनोरी ने पूछा।

''हां, मगर पहले हम इसी गली में रहते थे'' बुड्ढे ने कहा, ''मेरा लड़का चिरागदीन तुम लोगों का दर्जी था। तकसीम से छह महीने पहले हम लोगों ने यहां अपना नया मकान बनाया था।''

''ओ, गनी मियां!'' मनोरी ने पहचानकर कहा।

''हाँ, बेटे, मैं तुम लोगों का गनी मियां हूँ! चिराग और उसके बीवी-बच्चे तो नहीं मिल सकते, मगर मैंने कहा कि एक बार मकान की सूरत ही देख लू!'' और उसने टोपी उतारकर सिर पर हाथ फेरते हुए आंसुओं को बहने से रोक लिया।

''आप तो शायद काफी पहले ही यहां से चले गए थे,'' मनोरी ने स्वर में संवेदना लाकर कहा।

''हां, बेटे, यह मेरी बदबख्ती थी कि पहले अकेला निकलकर चला गया। यहां रहता, तो उनके साथ मैं भी...'' और कहते-कहते उसे अहसास हो आया कि उसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। उसने बात मुंह में रोक ली, मगर आंख में आए हुए आंसुओं को बह जाने दिया।

''छोड़े गनी मियां, अब बीती बातों को सोचने में क्या रखा है?'' मनोरी ने गनी की बांह पकड़कर कहा, ''चलो, तुम्हें तुम्हारा घर दिखा दूं?''

गली में खबर इस रूप में फैली थी कि गली के बाहर एक मुसलमान खड़ा है, जो रामदासी के लड़के को उठाने जा रहा था... उसकी बहन उसे पकड़कर घसीट लाई, नहीं तो मुसलमान उसे ले गया होता। यह खबर पाते ही जो स्त्रियों गली में पीढ़े बिछाकर बैठी थी, वह अपने-अपने पीढ़े उठाकर घरों के अंदर चली गई। गली में खेलते हुए बच्चों को भी उन स्त्रियों ने

पुकार-पुकारकर घरों में बुला लिया। मनोरी जब गनी को लेकर गली में आया, तो गली में एक फेरीवाला रह गया था या कुएं के साथ उस पीपल के नीचे रक्खा पहलवान बिखरकर सोया था। घरों की खिड़कियों में से और किवाड़ों के पीछे से अलबत्ता कई चेहरे झांक रहे थे। गनी को गली में आते देखकर उनमें हल्की-हल्की चेहमेगोइयां शुरू हो गईं दाढ़ी के सब बाल सफेद हो जाने के बावजूद लोगों ने चिरागदीन के बाप अब्दुल गनी को पहचान लिया था।

''वह था तुम्हारा मकान'', मनोरी ने दूर से एक मलबे की ओर संकेत किया। गनी पल भर के लिए ठिठककर फटी-फटी आंखों से उसकी ओर देखता रहा। चिराग और उसके बीवी-बच्चों की मौत को वह काफी अर्सा पहले स्वीकार कर चुका था, मगर अपने नए मकान को इस रूप में देखकर उसे जो झुनझूनी हुई, उसके लिए वह तैयार नहीं था। उसकी जबान पहले से ज्यादा खुश्क हो गई और घुटने भी और ज्यादा कांपने लगे।

''वह मलबा?'' उसने अविश्वास के स्वर में पूछा।

मनोरी ने उसके चेहरे का बदला हुआ रंग देखा। उसकी बांह को और सहारा देकर ठहरे हुए स्वर में उत्तर दिया, ''तुम्हारा मकान उन्हीं दिनों जल गया था।''

गनी छड़ी का सहारा लेता हुआ किसी तरह मलबे के पास पहुंच गया। मलबे में अब मिट्टी ही मिट्टी थी, जिसमें जहां-तहां टूटी और जली हूई ईंट फंसी थीं। लोहे और लकड़ी का सामान उसमें से न जाने कब का निकाल लिया गया था। केवल जले हुए दरवाजे का चौखट न जाने कैसे बचा रह गया था, जो जिनकी कालिख पर अब सफेदी की हल्की-हल्की तह उभर आई थी। मलबे को पास से देखकर गनी ने कहा, ''यह बाकी रह गया है,?'' और जैसे उसके घुटने जवाब दे गए और वह जले हुए चौखट को पकड़कर बैठ गया। क्षण भर बाद उसका सिर भी चौखट से जा लगा और उसके मुंह से बिलखने-की-सी आवाज निकली, 'हाय! ओए चिरागदीना!'

जले हुए किवाड़ का चौखट सात साल मलबे में से सिर निकाले खड़ा तो रहा था, मगर उसकी लकड़ी बुरी तरह भुरभुरा गई थी। गनी के सिर के छूने से उसके कई रेशे झड़कर बिखर गए। कुछ रेशे गनी की टोपी और बालों पर आ गिरे। लकड़ी के रेशों के साथ एक केंचुआ भी नीचे गिरा, जो गनी के पैर से छह-आठ इंच दूर नाली के साथ बनी ईंटों की पटरी पर सरसराने लगा। वह अपने लिए सुराख ढूंढता हुआ जरा-सा सिर उठाता, मगर दो-एक बार सिर पटककर और निराश होकर दूसरी ओर को मुड़ जाता।

खिड़कियों में से झांकने वाले चेहरों की संख्या अब पहले से कहीं बढ़ गई थी। उनमें चेहमेगोइयां चल रही थीं कि आज कुछ न कुछ जरूर होगा... चिरागदीन का बाप गनी आ गया है, इसलिए साढ़े सात साल पहले की सारी घटना आज खुल जाएगी। लोगों को लग रहा था,

जैसे वह मलबा ही गनी को सारी कहानी सुना देगा कि शाम के वक्त चिराग ऊपर के कमरे में खाना खा रहा था, जब रक्खे पहलवान ने उसे नीचे बुलाया कि वह एक मिनट आकर एक जरूरी बात सुन जाए... पहलवान उन दिनों गली का बादशाह था। हिंदुओं पर ही उसका काफी दबदबा था, चिराग तो खैर मुसलमान था। चिराग हाथ का कोर बीच में ही छोड़कर नीचे उतर आया। उसकी बीवी जुबैदा और दोनों लड़कियां, किश्वर और सुलताना खिड़कियों में से नीचे झांकने लगीं। चिराग ने ड्योढ़ी से बहर कदम रखा ही था कि पहलवान ने उसे कमीज के कालर से पकड़कर खींच लिया और गली में गिराकर उसकी छाती पर चढ बैठा। चिराग उसका छुरेवाला हाथ पकड़कर चिल्लाया, 'न, रक्खे पहलवान, मुझे मत मार् हाय! कोई मुझे बचाओ। जुबैदा! मुझे बचा!'' और ऊपर जुबैदा-किश्वर ओर सुलताना हताश स्वर में चिल्लाई। जुबैदा चीखती हुई नीचे ड्योढ़ी की तरफ भागी। रक्खे के एक शागिर्द ने चिराग को जद्दो-जहद करती हुई बाहें पकड़ लीं और रक्खा जांघों को घुटनों से दबाए हुए बोला, ''चीखता क्यों है, भैण के... तुझे पाकिस्तान दे रहा हूं, ले!'' और जुबैदा के नीचे पहुंचने से पहले ही चिराग को पाकिस्तान दे दिया।

आसपास के घरों की खिड़कियां बंद हो गईं। जो लोग दृश्य के साक्षी थे, उन्होंने दरवाजे बंद करके अपने को इस घटना के उत्तरदायित्व से मुक्त कर दिया। बंद किवाड़ों में भी उन्हें देर तक जुबैदा, किश्वर और सुलताना के चीखने की आवाजें सुनाई देती रहीं। रक्खे पहलवान और उसके साथियों ने उन्हें भी उसी रात पाकिस्तान देकर विदा कर दिया, मगर दूसरे तबील रास्ते से। उनकी लाशें चिराग के घर में न मिलकर बाद में नहर के पानी में पाई गई।

दो दिन तक चिराग के घर की छानबीन होती रही थी। जब उसका सारा सामान लूटा जा चुका, तो न जाने किसने उस घर को आग लगा दी। रक्खे पहलवान ने कसम खाई थी कि वह आग लगाने वाले को जिंदा जमींन में गाढ़ देगा, क्योंकि उसने उस मकान पर नजर रखकर ही चिराग को मारने का निश्चय किया था। उसने उस मकान को शुद्ध करने के लिए हवन-सामग्री भी खरीद रखी थी। मगर आग लगाने वाले का पता ही नहीं चल सका, उसे जिंदा गाड़ने की नौबत तो बाद में आती। साढ़े सात साल से रक्खा पहलवान उस मलबे को अपनी जागरी समझता आ रहा था, जहां न वह किसी को गाय-भैंस बांधने देता था और न खोचा लगाने देता था। उस मलबे से बिना उसकी अनुमति के कोई ईंट भी नहीं उठा सकता था।

लोग आशा कर रहे थे कि यह सारी कहानी जरूर किसी न किसी तरह गनी के कानों तक पहुंच जाएगी... जैसे मलबे को देखकर उसे अपने-आप ही सारी घटना का पता चल जाएगा। और गनी मलबे की मिट्टी नाखूनों से खोद-खोदकर अपने ऊपर डाल रहा था और दरवाजे के चौखट को बांह में लिए हुए रो रहा था, ''बोल, चिरागदीन, बोल! तू कहां चला गया, ओए? ओ किश्वर! ओ सुलताना! हाय मेरे बच्चे ओए ऽऽ! गनी को कहां छोड़ दिया, ओएऽऽऽ!''

और भुरभुरे किवाड़ से लकड़ी के रेशे झड़ते जा रहे थे। पीपल के नीचे सोए हुए रक्खे पहलवान को जाने किसी ने जगा दिया, या वह खुद ही जाग गया। यह जानकर कि पाकिस्तान से अब्दुलगनी आया है और अपने मकान के मलबे पर बैठा है, उसके गले में थोड़ा झाग उठ आया, जिससे उसे खांसी हो आई और उसे कुएं के फर्श पर थूक दिया। मलबे की ओर देखकर उसकी छाती से धौंकनी का-सा स्वर निकला और उसका निचला ओठ थोड़ा बाहर को फैल आया।

''गनी अपने मलबे पर बैठा है,'' उसके शगिर्द लच्छे पहलवान ने उसके पास आकर बैठते हुए कहा।

''मलबा उसका कैसे है? मलबा हमारा है!'' पहलवान ने झाग के कारण घबराती हुई आवाज में कहा।

''मगर वह वहां पर बैठा है,'' लच्छे ने आंखों में रहस्यमय संकेत लाकर कहा।

''बैठा है, बैठा रहे, तू चिलम ला!'' उसकी टांगे थोड़ी फैल गईं और उसने अपनी नंगी जांघों पर हाथ फेरा।

''मनोरी ने अगर उसे कुछ बताया तो... ''' लच्छे ने चिलम भरने के लिए उठते हुए उसी रहस्यपूर्ण दृष्टि से देखकर कहा।

''मनोरी की शामत आई है?''

लच्छा चला गया।

कुएं पर पीपल की कई पुरानी पत्तियां बिखरी थीं। रक्खा उन पत्तियों को उठा-उठाकर हाथों में मसलता रहा। जब लच्छे ने चिलम के नीचे कपड़ा लगाकर उसके हाथ में दिया, तो उसने कश खींचते हुए पूछा, ''और तो किसी से गनी की बात नहीं हुई?''

'नहीं।'

''ले'' और उसने खांसते हुए चिलम, लच्छे के हाथ में दे दी। लच्छे ने देखा कि मनोरी मलबे की तरफ से गनी की बांह पकड़े हुए आ रहा है। वह उकडूं होकर चिलम के लंबे-लंबे कश खींचने लगा। उसकी आंखें आधा क्षण रक्खे के चेहरे पर टिकतीं और आधा क्षण गनी की ओर लगी रहतीं।

मनोरी गनी की बांह पकड़े हुए उससे एक कदम आगे चल रहा था, जैसे उसकी कोशिश हो कि गनी कुएं के पास से बिना रक्खे पहलवान को देखे ही निकल जाए। मगर रक्खा जिस तरह

बिखरकर बैठा था, उससे गनी ने उसे दूर से ही देख लिया। कुएं के पास पहुंचते न पहुंचते उसकी दोनों बांहें फैल गई और उसने कहा, 'रक्खे पहलवान् !

रक्खे ने गरदन उठाकर और आखं जरा छोटी करके उसे देखा। उसके गले में अस्पष्ट सी घबराहट हुई, पर वह बोला कुछ नहीं।

''रक्खे पहलवान, मुझे पहचाना नहीं?'' गनी ने बांहें नीचे करके कहा, ''मैं गनी हूं, अब्दुल गनी, चिरागदीन का बाप!''

पहलवान ने संदेहपूर्ण दृष्टि से उसका ऊपर से नीचे तक जायजा लिया। अब्दुल गनी की आंखों में उसे देखकर चमक आ गई थी। सफेद दाढ़ी के नीचे उसके चेहरे की झुर्रियां जरा फैल गई थी। रक्खे का निचला ओठ फड़का, फिर उसकी छाती से भारी-सा स्वर निकला, 'सुना, गनिया!'

गनी की बाहें फिर फैलने को हुईं, परंतु पहलवान पर कोई प्रतिक्रिया न देखकर उसी तरह रह गई। वह पीपल के तने का सहारा लेकर कुएं की सिल पर बैठ गया।

ऊपर खिड़कियों में चेहमेगोइयां तेज हो गईं कि अब दोनों आमने-सामने आ गए हैं, तो बात जरूर खुलेगी... फिर हो सकता है, दोनों में गाली-गलौज भी हो... अब रक्खा गनी को कुछ नहीं कर सकता, अब वो दिन नहीं रहे... बड़ा मलबे का मालिक बनता था!... असल में मलबा न इसका है, न गनी का। मलबा तो सरकार की मलकियत है... मरदूद किसी को वहां गाय का खूंटा तक नहीं लगाने देता।... मनोरी भी डरपोक है। इसने गनी को बताया क्यों नहीं कि रक्खे ने ही चिराग और उसके बीवी-बच्चों को मारा है... रक्खा आदमी नहीं, सांड है। दिन-भर सांड की तरह गली में घूमता है.... गनी बेचारा कितना दुबला हो गया है? दाढ़ी के सारे बाल सफेद हो गए हैं।

गनी ने कुएं की सिल पर बैठकर कहा, ''देख रक्खे पहलवान, क्या से क्या हो गया है? भरा-पूरा घर छोड़कर गया था और आज यहां मिट्टी देखने आया हूं। बसे हुए घर की यह निशानी रह गई है। तू सच पूछे तो मेरा यह मिट्टी भी छोड़कर जाने को जी नहीं करता!'' और उसकी आंखें छलछला आई।

पहलवान ने अपनी फैली हुई टांगें समेट लीं और अंगोछा कुएं की मुंडेर से उठाकर कंधे पर डाल लिया। लच्छे ने चिलम उसकी तरफ बढ़ा दी और वह कश खींचने लगा।

''तू बता, रक्खे, यह सब हुआ किस तरह?'' गनी आंसू रोकता हुआ आग्रह के साथ बोला, ''तुम लोग उसके पास थे, सबमें भाई-भाई की सी मुहब्बत थी, अगर वह चाहता तो वह तुझमें से किसी के घर में नहीं छिप सकता था? उसे इतनी भी समझ नहीं आई?''

''ऐसा ही है,'' रक्खे को स्वयं लगा कि उसकी आवाज में कुछ अस्वाभाविक-सी गूंज है। उसके ओठ गाढ़े लार से चिपक गए थे। उसकी मूंछों के नीचे से पसीना उसके ओठों पर आ रहा था। उसके माथे पर किसी चीज का दबाव पड़ रहा था और उसकी रीढ़ की हड्डी सहारा चाह रही थी।

''पाकिस्तान का क्या हाल है?'' उसने वैसे ही स्वर में पूछा। उसके गले की नसों में तनाव आ गया था। उसने अंगोछे से बगलों का पसीना पोछा और गले का झाग मुंह में खींच-खींचकर गली में थूक दिया।

''मैं क्या हाल बताऊं, रक्खे,'' गनी दोनों हाथों से छड़ी पर जोर देकर झुकता हुआ बोला, ''मेरा हाल पूछे, तो वह मेरा खुदा ही जानता है। मेरा चिराग साथ होता, तो और बात थी...रक्खे, मैंने उसे कितना समझाया था कि मेरे साथ चला चल। मगर वह अड़ा रहा कि नया मकान छोड़कर कैसे जाऊं, यहां अपनी गली है, कोई खतरा नहीं है। भोले कबूतर ने यह नहीं सोचा कि गली में खतरा न सही, बाहर से तो खतरा आ सकता है? मकान की रखवाली के लिए चारों जनों ने जान दे दी!...रक्खे, उसे तेरा बहुत भरोसा था। कहता था कि रक्खे के रहते कोई मेरा दे दी!...रक्खे, उसे तेरा बहुत भरोसा था। कहता था कि रक्खे के रहते कोई मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मगर जब जान पर बन आई, तो रक्खे के रोके भी न रुक सकी।''

रक्खे ने सीधा होने की चेष्टा की, क्योंकि उसकी रीढ़ की हड्डी दर्द कर रही थी। उसे अपनी कमर और जांघों के जोड़ पर सख्त महसूस हो रहा था। पेट की अंतड़ियों के पास जैसे कोई चीज उसकी सांस को जकड़ रही थी। उसका सारा जिस्म पसीने से भीग गया था और उसके पैरों के तलुवों में चुनचुनाहट हो रही थी। बीच-बीच में नीली फुलझड़ियां-सी ऊपर से उतरतीं और उसकी आंखों के सामने तैरती हुई निकल जातीं। उसे अपनी जबान ओर ओठों के बीच का अंतर कुछ ज्यादा महसूस हो रहा था। उसने अंगोछे से ओठों के कोनों को साथ किया और उसके मुंह से निकला, ''हे प्रभु सच्चिआ, तू ही है, तू ही है, तू ही है''

गनी ने लक्षित किया कि पहलवान के ओठ सूख रहे हैं और उसकी आंखों के इर्द-गिर्द दायरे गहरे हो आए हैं, तो वह उसके कंधे पर हाथ रखकर बोला, ''जी हल्का न कर, रक्खिआ! जो होनी, सो हो गई। उसे कोई लौटा थोड़े ही सकता है? खुदा नेक की नेकी रखे और बद की बदी माफ करे! मेरे लिए चिराग नहीं, तो तुम लोग तो हो। मुझे आकर इनती ही तसल्ली हुई कि उस जमाने के कोई तो यादगार है। मैंने तुमको देख लिया, तो चिराग को देख लिया। अल्लाह तुम लोगों को सेहतमंद रखे! चलते हुए उसने फिर कहा, ''रक्खे पहलवान, याद रखना!''

रक्खे के गले से स्वीकृति की मद्धम-सी आवाज निकली। अंगोछा बीच में लिए हुए उसके दोनों हाथ जुड़ गए। गनी गली के वातावरण को हसरत-भरी नजर से देखता हुआ धीरे-धीरे गली से बाहर चला गया।

ऊपर खिड़कियों में थोड़ी चेहमेगोइयां चलती रहीं कि मनोरी ने गली के बाहर निकलकर जरूर गनी को सब कुछ बता दिया होगा... गनी के सामने रक्खे का तालू किस तरह खुश्क हो गया था?...रक्खा अब कि मुंह से लोगों को मलबे पर गाय बांधने से रोकेगा?...बेचारी जुबैदा! बेचारी कितनी अच्छी थी। कभी किसी से मंदा बोल नहीं बोली...रक्खे मरदूद का घर, न घाट, इसे किस मां-बहन का लिहाज था?

और थोड़ी से देर में स्त्रियां घरों से गली में उतर आई। बच्चे गली में गुल्ली-डंडा खेलने लगे और बारह-तेरह बरस की लड़कियां किसी बात पर एक दूसरी से गुत्थम-गुत्था हो गई।

रक्खा गहरी शाम तक कुएं पर बैठा खंखारता और चिलम फूंकता रहा। कई लोगों ने वहां से गुजरते हुए उससे पूछा, ''रक्खे शाह, सुना है, आज गनी पाकिस्तान से आया था?''

''हां, आया था,'' रक्खे ने हर बार एक ही उत्तर दिया।

''फिर?''

''फिर कुछ नहीं, चला गया।''

रात होने पर रक्खा रोज की तरह गली के बाहर बाईं ओर की दुकान के तख्ते पर आ बैठा। रोज अक्सर वह रास्ते से गुजरने वाले परिचित लोगों को आवाज देकर बुला लेता था और नन्हें सट्टे के गुर और सेहत के नुस्खे बताया करता था। मगर उस दिन वह लच्छे को अपनी वैष्णों देवी की उस यात्रा का विवरण सुनाता रहा, जो उसने पंद्रह साल पहले की थी। लच्छे को विदा करके वह गली में आया, तो मलबे के पास लोकू पंडित की भैंस को खड़ी देखकर वह रोज की आदत के मुताबिक उसे धक्के दे-देकर हटाने लगा-तत्-तत्-तत्...तत्-तत्...

और भैंस को हटाकर वह सुस्ताने के लिए मलबे के चौखट पर बैठ गया। गली उस समय बिल्कुल सुनसान थी। कमेटी की कोई बत्ती न होने से वहां शाम से ही अंधेरा हो जाता था। मलबे के नीचे नाली का पानी हल्की आवाज करता हुआ बह रहा था। रात की खामोशी के साथ मिली हुई कई तरह की हल्की-हल्की आवाजें मलबे की मिट्टी में से निकल रही थी... च्यु च्यु च्यु... चिक्-चिक्-चिक्... चिर्र्-इर्र् री री री री री-चिर्र्...एक भटका हुआ कौआ न जाने कहां से उड़कर लकड़ी के चौखट पर आ बैठा। उससे लकड़ी के रेशे इधर-उधर छितरा गए। कौवे के वहां बैठते न बैठते मलबे के एक कोने में लेटा हुआ कुत्ता गुर्राकर उठा और जोर-जोर से भौंकने लगा, वऊ-अऊ-अऊ-वऊ् कौआ कुछ देर सहमा-सा चौखट पर बैठा रहा, फिर वह पंख फड़फड़ाता हुआ उड़कर कुएं के पीपल पर चला गया। कौए के उड़ जाने पर कुत्ता और नीचे उतर आया और पहलवान की ओर मुंह करके भौंकने लगा। पहलवान उसे हटाने के लिए भारी आवाज में बोला-दुर् दुर् दुर्... दुरे!

मगर कुत्ता और पास आकर भौंकने लगा...वउ.अउ.वउ.वउ.वउ.वउ...

-हट-हट, दुर्र् दुरे!...

...वउ-अउ-वउ-वउ-वउ-वउ...

पहलवान ने एक ढेला उठाकर कुत्ते की ओर फेंका। कुत्ता थोड़ा पीछे हट गया, पर उसका भौंकना बंद नहीं हुआ। पहलवान मुंह की मुंह कुत्ते को मां की गाली देकर वहां से उठ खड़ा हुआ और कुत्त धीरे-धीरे जाकर कुएं की ओर मुंह करके भौंकने लगा। काफी देर भौंककर जब गली में उसे कोई प्राणी चलता-फिरता दिखाई नहीं दिया, तो वह एक बार कान झटककर मलबे पर लौट आया और वहां कोने में बैठकर गुर्राने लगा।

13.4 नई कहानी और मोहन राकेश

कहानी के क्षेत्र में मोहन राकेश का सबसे बड़ा योगदान यह रहा कि इन्होंने कहानी को नयी दिशा दी। आपने देखा कि इन्होंने अपनी पहली रचना 19 वर्ष की उम्र में 'नन्हीं' नामक कहानी के रूप में की। यह कहानी उनके मरणोपरांत प्रकाशित हुई। इनका नियमित लेखन आजादी के बाद आरंभ होता है। आजादी के बाद आये बदलावों ने साहित्य को भी प्रभावित किया। बहुत जल्दी उन सपनों से आम जनता का मोहभंग होने लगा जो स्वाधीनता आन्दोलन के दरम्यान उन्होंने देखा। आपको यह मालूम होगा कि हमारा देश 15 अगस्त 1947 को अंग्रेजों के शासन से मुक्त हुआ। साथ ही देश का विभाजन भी हुआ। जिसने अनगिनत को मर्माहत किया। यह विभाजन मानवीय संवेदनहीनता का क्रूरतम अध्याय है। ''युगों की पराधीनता के बाद किसी देश का स्वतन्त्र होना ही अपने आप में बड़ी घटना है। फिर अपने यहाँ तो इस घटना के साथ ही देश का विभाजन भी जुड़ा है।.... शरणार्थियों और विस्थापितों के वे काफिले जुड़े हैं जो भूखे-प्यासे, खून से लथपथ एक देश से दूसरे देश में आये, वे सारी हत्याएँ नृशंसताएँ भी जुड़ी हैं जो दोनों देशों के लोगों को भुगतनी पड़ी. लाखों लोगों के अतीत की जलती चिताएँ जुड़ी हैं, जहाँ पिछला सब कुछ, सभी कुछ भस्म हो गया... अच्छा भी और बुरा भी... तेजी से विघटित होते जीवन मूल्यों के भूकम्प जुड़े हैं।'' (एक दुनिया: समानान्तर - सं० राजेन्द्र यादव, भूमिका-पृ०-19)

कहानी के धरातल पर भी इस बनते-बिगड़ते आजाद भारतीय वातावरण का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। बहुत जल्दी मोहभंग की शुरुआत भी हो गई। दूसरे विश्वयुद्ध, विभाजन की त्रासदी व असमानता के प्रसार आदि जनता के मोहभंग में सहायक हुए। यही वह दौर था जब कहानीकारों को पारम्परिक लहजे में कहना व लिखना अस्वाभाविक प्रतीत होने लगा और अपने अनुभव क्षेत्र में आये संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए नए-नए उपकरणों की तलाश की

जाने लगी। प्रेमचन्द के पुत्र श्रीपत राय के संपादन में निकलने वाली 'कहानी' पत्रिका के माध्यम से इस अकुलाहट को स्वर देने हेतु मंच प्राप्त हुआ। विभाजन की त्रासदी और सामाजिक विसंगतियों का यथार्थ चित्रण इस दौर की कहानियों में प्रमुख रूप से हुआ। अनुभव की प्रामाणिकता इस दौर की कहानियों का प्रमुख स्वर है। आगे चलकर इस प्रकार की कहानी को 'नई कहानी' नाम दिया गया। ''कहानी के कथ्य और प्रस्तुतीकरण की शैली की नवीनता को पहचानकर कवि दुष्यंत कुमार ने 'कल्पना' पत्रिका के जनवरी 1955 के अंक में इसे 'नई कहानी' नाम दिया। डॉ॰ धर्मवीर ने 'धर्मयुग' में कहानी के बदलते हुए स्वरूप को रेखांकित करते हुए नए कहानीकारों- मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेन्द्र यादव का त्रिकोण स्थापित कर दिया।'' (स्वातंत्योत्तर हिन्दी कहानियाँ- कमलेश्वर पृ. 10)

कहानी के 'नई कहानी' में परिवर्तित होने का प्रमुख कारण मूल्यों का विघटन था जिसे इस दौर के कहानीकारों ने महसूस और अभिव्यक्त किया। मोहन राकेश इन कहानीकारों में प्रमुख हैं। यह वह समय था, जब संदेह, अविश्वास, मोहभंग, भय और आशंका के व्यापार ने सुखद कल्पनाओं पर आघात किया। नई कहानी ने संयुक्त परिवार के ह्रास, नौकरी पेशा, महत्वाकांक्षी नए मध्यवर्ग का उदय, शहरीकरण, पूंजी के बढ़ते दबाव व बढ़ती सामाजिक-आर्थिक विषमता को खासतौर पर रेखांकित किया। 'नई कहानी' ने अपनी काव्य व शिल्प की नवीनता के चलते अपार लोकप्रियता भी प्राप्त की जिसके चलते पाठकों की संख्या में जबरदस्त वृद्धि हुई।

आपने देखा कि किस प्रकार अपने कथ्य व शिल्प की नवीनता के चलते मोहन राकेश की गिनती 'नई कहानी' के प्रमुख कहानीकारों में होती है। यहाँ पर कथा चेतना पर परिवेश का प्रभाव है जो आस-पास घटने वाले यथार्थ चित्रण से जुड़ी हुई है। मोहन राकेश की कहानियाँ समकालीन परिवेश की कहानियाँ हैं।

यही कारण है कि इनकी कहानियों में चित्रित वातावरण कहानी की मूल संवेदना से जुड़ा हुआ है, साथ ही पात्रों की मनोवृत्ति का भी विश्लेषण करता है। 'मलवे का मालिक' के अध्ययन के दौरान आप इसे महसूस करेंगे। मोहन राकेश ने अपनी कहानियों में परिवेशजन्य परिस्थितियों एवं युगीन समस्याओं की अभिव्यक्ति प्रदान की है। जीवन के आस-पास घटने वाली छोटी-से-छोटी घटनाओं को आधार बनाकर इन्होंने कहानियाँ लिखी जो कहानी के रूप में असाधारण प्रतीत होती है। हमें इन कहानियों को पढ़कर प्रतीत होता है कि ऐसी घटना तो हमारे आस-पास भी किसी-न-किसी रूप में घट चुकी हैं या घट रही हैं। पर इन छोटी घटनाओं को लेकर कहानी का शिल्प रचने में मोहन राकेश जैसे कथाकारों की उर्जावान रचनादृष्टि ही सक्षम है। उनकी पैनी दृष्टि अपने आस-पास की हर घटना में कहानी ढूँढ लेने की क्षमता रखती है।

मोहन राकेश ने बड़े नजदीक से जिंदगी की जद्दोहजद को देखा और महसूस किया है। परिवार का अशांत वातावरण, जीवन-यापन हेतु निरंतर किया जाने वाला संघर्ष, विभाजन की त्रासदी व बदलते परिवेश के दबाव से उत्पन्न बनते-बिगड़ते मानवीय संबंधों का उनके रचनाकर्म

पर गहरा प्रभाव पड़ा है। ''नई कहानी'' परिवेशगत यथार्थ को अपने अनुभव से जोड़कर प्रस्तुत करती है। इसी के चलते यहाँ आप संवेदनाओं में प्रामाणिकता और विविधता का साक्षात्कार करेंगे। वैसे भी परिवेश से अलगाकर रची जाने वाली रचना पाठकों के मन पर स्थायी छाप नहीं छोड़ती। मोहन राकेश जिस परिवेश में अपने को पाते हैं, जिन सुख-दुःखों का अनुभव किया, उनकी अभिव्यक्ति अपनी कहानियों में की है। 'मलबे का मालिक' कहानी मोहन राकेश की बहुचर्चित और बहुपठित कहानियों में से है जो देश विभाजन के दरम्यान होने वाली अमानवीयता को केंद्र में रखकर लिखी गई है। किस कदर आपस में मिल-जुलकर रहने वाले पास-पड़ोस के लोग साम्प्रदायिकता की आग में झुलसकर एक-दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं। इसका मार्मिक अंकन प्रस्तुत कहानी में किया गया है, जिस पर हम आगे विचार करेंगे। मोहन राकेश ने विभाजन की त्रासदी को बहुत नजदीक से देखा और भोगा है। इसलिए अनुभव की प्रामाणिकता व परिवेश का यथार्थ चित्रण इस कहानी को पाठकों के हृदय में सीधे उकेर देता है।

13.5 'मलबे का मालिक' कहानी: एक विवेचन

लोकप्रियता के स्तर पर 'मलबे का मालिक' का स्थान महत्वपूर्ण है। भारत-विभाजन की घटना पर आधारित यह कहानी साम्प्रदायिक दंगों की हकीकत बयां करती है, जिसमें आजादी के बाद के जातीय दंगों के विकृत रूप को दर्शाया गया है। अपने समय को उसके यथार्थ को अभिव्यक्त करने वाली यह महत्वपूर्ण रचना है। इस कहानी में देश-विभाजन की त्रासदी और उससे उत्पन्न दुर्दशा का निरूपण किया गया है। भारत-पाकिस्तान का विभाजन व उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न बनते-मिटते मानवीय संबंधों का कुशल अंकन प्रस्तुत कहानी में हुआ है। विभाजन की इस त्रासदी ने कैसे बरसों से आपस में मिलजुल कर रहने वाले पड़ोसियों को एक-दूसरे का शत्रु बना दिया था। इसका मार्मिक अंकन हुआ है। ''मोहन राकेश की यह कहानी विभाजन की त्रासदी और दंगे के कहर को सबसे अलग रूप में पेश करती है। आजादी के बाद का एक बहुत बड़ा तबका आज भी उस दर्द से उबर नहीं पाया है और गाहे-बगाहे वह टीस उग्र रूप धारण कर लेती है।'' (स्वात्र्योत्तर हिंदी कहानियाँ- सं० कमलेश्वर)।

प्रस्तुत कहानी में उस समय का चित्रण किया गया है जब साम्प्रदायिक दंगों से उत्पन्न द्वेष की धूल को समय ने कम कर दिया और पाकिस्तान से हाकी का मैच देखने के बहाने कुछ मुसलमान अमृतसर आये। अब्दुल गनी उर्फ गनी मियाँ और रम्खे पहलवान इस कहानी के प्रमुख पात्र हैं। इन्हीं के इर्द-गिर्द कहानी घूमती है। इन्हीं गनी मियाँ का पुत्र चिरागदीन, उसकी पत्नी और दो बेटियाँ दंगे के दरम्यान हिन्दुओं द्वारा कत्ल कर दिये गये। यह चिरागदीन अपने मुहल्ले के हिन्दुओं पर विश्वास के चलते पाकिस्तान नहीं जाता है। जिस रक्खे पहलवान पर उसे ज्यादा विश्वास था उसी के द्वारा उसका कत्ल भी किया जाता है। जो इस बात का प्रतीक है कि किस प्रकार सामाजिक परिवर्तन मानवीय संबंधों में भी परिवर्तन ला देते हैं। सदियों से साथ रहने

वाले साम्प्रदायिकता की आग में जलकर एक-दूसरे का खून बहाने की तत्पर हो जाते हैं। यह कहानी आपके सामने उस हकीकत को बयाँ करती है जो दंगों के दरम्यान हुए। जिसमें लाखों लोग मारे गये व घर से बेघर हुए। हर जगह जले हुए घरों के चलते मलबे के ढेर दिखाई पड़ते हैं। प्रस्तुत कहानी का शीर्षक 'मलबे का मालिक' प्रतीकात्मक है जिसमें मलबे इंसान की हैवानियत भरी लिप्सा है जिसने मानवीय संवेदना को जलाकर राख कर डाला है।

अमृतसर आने पर गनी मियां अपना घर देखने उस गली में जाते हैं जहाँ अपनी जिंदगी का बहुत बड़ा हिस्सा उन्होंने बिताया था। जब एक छोटे बच्चे को रोता देखकर पैसा निकालने लगे तो बच्चे की बच्चे की बहन उसे उठाकर ले जाती है। सारी गली में यह चर्चा फैल जाती है कि एक बूढ़ा मुसलमान रामदासी के लड़के को उठाकर ले जा रहा था। बाद में मनेरी के मिलने पर उसे पता चलता है विभाजन में हुए दंगों में उसका घर जला दिया गया व उसी में उसका परिवार भी मारा गया। इसके बाद गनी मियां की मुलाकात रक्खे पहलवान से होती है जिसने चिरागदीन व उसके परिवार को मारा था। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि चिरागदीन को मारने का कारण साम्प्रदायिक दंगे तो थे ही साथ ही रक्खे पहलवान उसके घर पर भी कब्जा करना चाहता था। जो कि बाद में किसी द्वारा आग लगा दिये गये पर मलबे के ढेर में तब्दील को जाता है। इसे ढेर को भी रक्खे पहलवान अपनी सम्पत्ति मानता चला आ रहा है। गनी मियाँ को रक्खेपहलवान की इस हैवानियत का पता नहीं और वह उसी से पूछता है कि यह सब कैसे हुआ। वह भी रक्खे पहलवान के रहते। चिरागदीन भी हमेशा कहा करता था कि रक्खे के रहते मेरा कोई कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता। रक्खे को इस बात पर आत्मग्लानि भी होती है।

'मलबे का मालिक' उस सामाजिक परिवेश की कहानी है जो देश विभाजन के परिणामस्वरूप उत्पन्न स्थिति से हमारा साक्षात्कार कराती है। यह विडम्बना ही कही जाएगी कि जिस घर के लालच में रक्खे पहलवान ने विश्वास का गला घोंटकर चिरागदीन व उसके परिवार की निर्मम हत्या की, वह मकान मलबे का ढेर होकर उसके हाथ लगा। कहीं-न-कहीं यह स्थिति देश के संदर्भ में भी लागू होती है कि जिसके चलते देश को दो टुकड़ों में विभाजित किया गया, वह आज भी एक ख्वाब ही बना हुआ है। इस कहानी के अंत में जिस मलबे पर रक्खे अपना हक समझता रहा था उस पर एक कुत्ते ने अधिकार कर लिया। प्रस्तुत कहानी टूटते-बिखरते मानवीय मूल्य का कारुणिक चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। चूंकि मोहन राकेश ने स्वयं विभाजन की पीड़ा को झेला था, इसलिए यह उनका भोगा हुआ यथार्थ भी है। किस प्रकार विभाजन और सांप्रदायिक दंगों की चोट ने मानवीय मूल्यों को ध्वस्त कर दिया, बर्बरता, मारकाट और निर्मम हत्याओं ने किस प्रकार मानवता को शर्मसार किया, इसका प्रस्तुतीकरण 'मलबे का मालिक' में बखूबी किया है। जिसका विश्लेषण हम अगली ईकाई में करेंगे।

13.6 सारांश

आपने मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' पढ़ ली है। इसके माध्यम से आप साम्प्रदायिक दंगों की भयावहता एवं संवेदनहीनता से रूबरू हुए होंगे। किस प्रकार चंद लोगों की करतूत के चलते सदियों से एकसूत्र में बंधा देश विभाजित हुआ, इसका यथार्थ अंकन प्रस्तुत कहानी में किया गया है। यहाँ ध्यातव्य है कि मोहन राकेश ने स्वयं विभाजन की इस त्रासदी को नजदीक से देखा एवं भोगा है। जिसके चलते यह कहानी पाठकों के मर्म को छूती है। विभाजन की निरर्थकता, मानवीय मूल्यों के पतन व विभाजन की त्रासदी को उजागर करने वाली यह कहानी स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। प्रस्तुत इकाई में आपने मोहन राकेश का परिचय भी प्राप्त किया, साथ ही यह भी देखा कि उनका रचना-संसार भी उनके व्यक्तित्व की तरह विस्तृत फलक लिए हुए हैं। 'नई कहानी' आन्दोलन के श्रेष्ठ कहानीकार मोहन राकेश ने जीवन-बोध, युग-बोध, कथ्य, शिल्प, एवं भाषा को साहित्य में एक नयी अर्थवत्ता प्रदान की। इनकी रचनाएँ यथार्थ परिवेश के प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ पाठकों को रसमग्न करने में भी सक्षम है। जहाँ अपने समय का यथार्थ एवं लेखक का खुद का भोगा हुआ यथार्थ मिलकर अविस्मरणीय संसार को निर्मित करते हैं। साहित्य सामाजिक हलचलों से बेखबर नहीं होता, यानी उसका जुड़ाव अपने चारों ओर के परिवेश, घटना, वस्तु एवं व्यक्तियों से गहरे जुड़ा होता है। मोहन राकेश की रचनाएँ इसका प्रमाण है।

13.7 शब्दावली

साम्प्रदायिक	-	धार्मिक विद्वेष की भावना
शारगिर्द	-	शिष्य
खानाबदोश	-	घर-परिवार विहीन जिन्दगी

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मोहन राकेश के नाटकों में 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' व 'आधे-अधूरे' प्रमुख हैं।
2. मोहन राकेश के बचपन का नाम मदनमोहन गुगलानी था।
3. 'भिक्षु' कहानी को मोहन राकेश की पहली प्रकाशित कहानी मानी जाता है।
4. 'अँधेरे बंद कमरे', 'न आने वाला कल' मोहन राकेश के बहुचर्चित उपन्यास है।
5. चिरागदीन एवं उसके परिवार की हत्या रक्खे पहलवान व उसके साथियों द्वारा की जाती है।

6. अब्दुल गनी भारत हाकी का मैच देखने के लिए आए थे, जिसके पीछे अपने छूट गये घर को फिर से देख पाने का भाव भी छिपा है।

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सं. कमलेश्वर, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियाँ - नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया।
2. यादव, सं. राजेन्द्र, एक-दुनियां: समानान्तर-, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
3. जैन, मनोज कुमार, साहित्कार मोहन राकेश -श्री नटराजन प्रकाशन, दिल्ली।

13.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह, नामवर, कहानी: नयी कहानी:लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. अवस्थी, सं.-देवीशंकर, नयी कहानी: संदर्भ प्रकृति- राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
3. मधुरेश, नई कहानी का अंतःसंघर्ष: एक विमर्श- नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
4. यादव, राजेन्द्र, कहानी: अनुभव और अभिव्यक्ति- वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

13.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. आधुनिक हिंदी कहानी में मोहन राकेश का स्थान निर्धारित कीजिए।
2. विभाजन के परिणामस्वरूप उत्पन्न विसंगतियों पर प्रकाश डालिए।

इकाई 14 'मलबे का मालिक'- विश्लेषण एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 'मलबे का मालिक' : देश विभाजन का यथार्थ

14.3.1 देश विभाजन से उत्पन्न मानवीय मूल्यों की त्रासदी

14.3.2 मानवीय मूल्यों के पतन का चित्रण

14.4 बेघर होने की पीड़ा का अनुभव

14.5 'मलबे का मालिक' कहानी का आशय

14.6 सारांश

14.7 शब्दावली

14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

14.11 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

'नई कहानी' के सशक्त हस्ताक्षर मोहन राकेश अपनी प्रयोगधर्मिता के चलते कथा साहित्य व नाट्य लेखन के क्षेत्र में एक अलग व महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनकी कहानियों में भोगे हुए यथार्थ का सम्यक् चित्रण मिलता है। कहानी, उपन्यास, एकांकी नाटक, निबन्ध में इनकी रचनात्मक सक्रियता एक साथ दिखाई देती है। इनके लेखन की शुरुआत 'नन्हीं' नाम कहानी से होती है जो इन्होंने 19 वर्ष की आयु में लिखी थी। सन् 1956 में कहानी संग्रह 'नए बादल' के प्रकाशन से वे कहानीकार के रूप में अपनी सशक्त उपस्थिति हिन्दी कथा साहित्य में दर्ज कराते हैं। उनकी सम्पूर्ण कहानियों का संकलन सन् 1996 में 'मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ; शीर्षक से राजपाल एंड संस से प्रकाशित हुआ। पिछली इकाई में आपने पढ़ा कि बचपन से पारिवारिक परिवेश के फलस्वरूप ये अंतर्मुखी प्रकृति के थे। अपने रचना कर्म के माध्यम से वे ताउम्र सुकून की तलाश करते रहे। किसी अनचाही वस्तु, विचार से समझौता न करने की उनकी आदत ने उन्हें कभी एक जगह टिकने नहीं दिया। उनकी घुमक्कड़ी ने उनके अनुभव संसार को व्यापकता प्रदान की, जिसके चलते उन्होंने विपुल साहित्य की रचना की।

मोहन राकेश ने जब नियमित लिखना शुरू किया तो उस समय भारतीय उपमहाद्वीप में उथल-पुथल का दौर था। चीजें तेजी से बदल रही थीं। साथ ही सामाजिक मूल्य भी और इनका प्रभाव उनके लेखन पर भी पड़ा। कहानी के संदर्भ में बात करें तो साठ का दशक 'नई कहानी' का दौर रहा। जिसमें अनुभव की प्रामाणिकता पर ज्यादा जोर था। साथ ही कहानी के दायरे में वे अछूते विषय भी ग्रहण किये गये जो अब तक ओझल थे। 'नई कहानी' के कहानीकारों ने कहानी लेखन के लिए स्वयं नये प्रतिमान तैयार किये। इन कहानीकारों में मोहन राकेश प्रमुख हैं जिन्होंने भाषा व कथ्य के धरातल पर सार्थक प्रयोगधर्मिता को बढ़ावा दिया। 'मलबे का मालिक' कहानी को आपने पढ़ लिया होगा, जो कि भारत-पाक विभाजन की विनाशलीला पर आधारित है। आपने यह भी देखा कि किस प्रकार दंगों के चलते मानव मूल्यों का पतन होता है। इस इकाई में हम इस पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

14.2 उद्देश्य

स्नातक प्रथम वर्ष के प्रथम प्रश्नपत्र 'हिन्दी कहानी' (स्वतंत्रता पश्चात् कहानी) पर आधारित चतुर्थ खण्ड की यह 14वीं इकाई आपके सामने प्रस्तुत है। यह इकाई मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' कहानी पर आधारित है। इस कहानी में देश विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न मानवीय मूल्यों के क्षरण व दंगों के समय हुए नरसंहार की मार्मिक प्रस्तुति की गयी है। देश के बंटवारे का दर्द किस प्रकार विस्थापित होने वाले लोगों पर प्रभाव डालता है। इसका अंकन इस कहानी में किया गया है। साथ ही स्वार्थ व हैवानियत जैसी कुप्रवृत्तियों पर भी प्रकाश डाला गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- 'मलबे का मालिक' कहानी में प्रस्तुत देश के बंटवारे के दर्द और अपने देश से बेघर हुए लोगों का दर्द समझ सकेंगे।
- मानवीय मूल्यों के पतन और जातीय हिंसा के कारण उत्पन्न स्थिति को स्पष्ट कर सकेंगे।
- देश का विभाजन किस प्रकार की यातना लोगों के सामने उपस्थित करता है, इसका विवेचन आप कर सकेंगे।
- मनुष्य की स्वार्थी व निर्मम प्रवृत्ति के कारणों पर चर्चा कर सकेंगे।
- मलबे के ढेर में तब्दील होती मानवता की व्याख्या कर सकेंगे।

14.3 'मलबे का मालिक' : देश विभाजन का यथार्थ

सन् 1947 में देश के विभाजन से उत्पन्न स्थितियों का अंकन करने वाली कहानियों में 'मलबे का मालिक' कहानी का स्थान महत्वपूर्ण है। जिसमें देश के विभाजन की पीड़ा व

आपसी विश्वास में आयी पतनशीलता का चित्रण किया गया है। आपने पूरी कहानी पढ़ ली होगी, इस कहानी का आरंभ विभाजन के सात साल बाद अमृतसर हाकी मैच देखने आए कुछ मुसलमानों के चित्रण से होता है जिनके मन में ललक है कि क्या अमृतसर अब भी वैसा है जैसा कि विभाजन से पहले था। वे घूम-घूमकर अमृतसर की गलियों में अपनी परिचित जगहों व लोगों को तलाश रहे हैं।

''साढ़े सात साल बाद वे लोग लाहौर से अमृतसर आए थे। हाकी का मैच देखने का तो बहाना ही था, उन्हें ज्यादा चाव उन घरों और बाजारों को फिर से देखने का था, जो साढ़े सात साल पहले उनके लिए पराए हो गए थे। हर सड़क पर मुसलमानों की कोई न कोई टोली घूमती नजर आ जाती थी। उनकी आंखे इस आग्रह के साथ वहां की हर चीज को देख रही थीं, जैसे वह शहर साधारण शहर न होकर एक अच्छा-खासा आकर्षण केन्द्र हो।''

यह वर्णन ऐसा प्रतीत होता है मानों कोई अपने घर से परदेश गया हो और बहुत दिनों बाद लौटा हो और बड़ी ललक के साथ अपने घर को निहार रहा हो। वहाँ की गलियों, बाजारों को देख रहा हो। पर यहाँ स्थिति दूसरी है, क्योंकि वे जानते हैं कि यह अब उनका देश नहीं रह गया। अब वे सिर्फ इस देखभर सकते हैं, रह नहीं सकते। इस छोटे समय में हुए परिवर्तनों को देखकर ये अफसोस व हैरानी के भाव से घिर जाते। क्योंकि अमृतसर को जैसा छोड़कर वह गये थे वह अब वैसा नहीं रहा-

''वल्लाह। कटरा जयमलसिंह इतना चौड़ा कैसे हो गया? क्या इस तरफ से सब के सब मकान जल गए?

... यहाँ हकीम आसिफ अली की दुकान थी न? अब यहाँ मोची ने कब्जा कर रखा है!

और कहीं-कहीं ऐसे भी वाक्य सुनाई दे जाते- वली, यह मस्जिद ज्यों की त्यों खड़ी है? इन लोगों ने इसका गुरुद्वारा नहीं बना दिया?''

कुछ लोग पाकिस्तान से आए आगंतुकों को उत्सुकता से देख रहे हैं तो कुछ आशंका से घिरे हैं। साथ ही कुछ लोगों की उत्सुकता पाकिस्तान का हाल जानने में है जो कि उसे छोड़कर भारत आ गए थे। इन सवालों से हमें यह भी पता चलता है कि मानवीय संवेदना लोगों में विभाजन के बाद भी बची हुई है। ये ऐसे लोग हैं जो आपसी भाईचारे में विश्वास करते हैं जिन्हें कुछ स्वार्थी व सम्प्रदाय के आधार पर राजनीति करने के चलते अपने घर से मजबूरन अलग होना पड़ा।

पाकिस्तान से आयी हुई टोली में एक वृद्ध मुसलमान भी है जो इस भीड़ से अलग अमृतसर के उपेक्षित से बाजार बांसी नामक मुहल्ले में अकेले घूम रहा है। आजादी के पहले यहाँ बाँस और शहतीर से बनी दुकानें थी जो दंगे में जलकर खाक हो गयीं थी। बूढ़ा इसे देखकर

विश्वास नहीं कर पाता कि यह वही बाजार है। पर उसे यह भी लगता है कि 'सब कुछ बदल गया, मगर बोलियां नहीं बदली'। यानी अब भी कुछ बचा है जिसे नष्ट नहीं किया जा सका। इसी दरम्यान एक रोते हुए बच्चों को देखकर यह बूढ़ा आदमी उसे कुछ देना चाहता है। पर एक लड़की बाहर निकल कर आती है और बच्चे को पकड़कर ले जाती है। बच्चे से कहती है अगर रोयेगा तो वह मुसलमान तूझे पकड़कर ले जाएगा। इस पर मुसलमान बुजुर्ग अपने को बच्चे को कुछ देने से रोक लेता है। उसे महसूस होता है कि एक अविश्वास का भाव अब भी वहाँ के वातावरण में व्याप्त है। जिसके चलते हिन्दू-मुस्लिम परस्पर एक-दूसरे को शंका की निगाह से देख रहे हैं।

इस बूढ़े मुसलमान का नाम अब्दुल गनी है जो सारे मुहल्ले में गनी मियाँ के नाम से जाना जाता है। इन गनी मियाँ की मुलाकात मनोरी नामक युवक से होती है। जिसके द्वारा उसे पता चलता है कि दंगे में बेटे चिरागदीन और उसके परिवार की हत्या कर दी गयी। मकान भी जलाकर खाक कर दिया गया। मनोरी जब उसे उसका मकान दिखाता है तो वह उसकी इस हालत पर विश्वास नहीं कर पाता जो कि मलबे में तब्दील हो गया था-

''वह था तुम्हारा मकान,'' मनोरी ने दूर से एक मलबे की ओर संकेत किया। गनी पल भर के लिए ठिठक कर फटी-फटी आँखों से उसकी ओर देखता रहा। चिराग और उसके बीबी-बच्चों की मौत को वह काफी अर्सा पहले स्वीकार कर चुका था, मगर अपने इस नए मकान को इस रूप में देखकर उसे जो झुनझुनी हुई, उसके लिए वह तैयार नहीं था। उसकी जबान पहल से ज्यादा खुश्क हो गई और घुटने भी और ज्यादा कांपने लगे।'' अपने घर की इस हालत में देखकर गनी मियां का दुःख उन विस्थापितों के दुःख को उजागर करता है, जिन्होंने बड़े अरमान से अपने घर को बनाने में खून-पसीना लगाया था। वही घर आज मलबे के ढेर में तब्दील होकर रह गया है। इसी क्रम में गनी मियां की मुलाकात रक्खे पहलवान से होती है जो मुहल्ले का दादा है। इसी रक्खे पहलवान ने दंगों के दौरान उसके बेटे और परिवार की निर्मम हत्या की थी। यह रक्खे उसके बेटे चिरागदीन का मित्र था, जिस पर चिरागदीन जान से भी ज्यादा भरोसा करता था। उसके विश्वास का कत्ल रक्खे ने उसके घर लालच में आकर किया। इसी रक्खे से गनी मियाँ द्वारा कहा यह कथन ध्यान देने योग्य है- ''देख रक्खे पहलवान, क्या से क्या हो गया है? भरा-पूरा घर छोड़कर गया था और आज यहाँ मिट्टी देखने आया हूँ। बसे हुए घर की यही निशानी रह गई है। तू सच पूछे रक्खे, तो मेरा यह मिट्टी भी छोड़कर जाने को जी नहीं करता।'' गनी मियां की पीड़ा उन सारे लोगों की पीड़ा है जो अपनी जड़ों से बिछड़कर मजबूरन दूसरे देश चले गये। मिट्टी का लगाव बहुत गहरा होता है, देश अलग हो जाने के बावजूद अपने जड़ों की चाह कायम रहती है। सहनशीलता का अभाव किस प्रकार मर्यादा व मानवीय मूल्यों की सारी सरहदें तोड़ देता है, प्रस्तुत कहानी इसका मार्मिक चित्रण करती है।

रक्खे पहलवान गनी मियां के इस सवाल का जवाब नहीं दे पाता कि जब चिरागदीन उस पर इतना भरोसा करता था तो यह सब क्यों हुआ? कहीं-न-कहीं रक्खे पहलवान के मन में अपने इस कुकृत्य के लिए गलानि भाव भी है। यह तब और गाढ़ा हो जाता है जब गनी मियां का निश्छल व्यवहार रक्खे को ईश्वर का नाम लेने पर मजबूर कर देता है। कहानी का अंत उस मलबे पर कुत्ते के कब्जे से होता है जिसे रक्खे पहलवान अब तक अपनी जागीर समझता आया था। जिस घर के लालच में रक्खे पहलवान ने चिरागदीन उसकी बीबी और बच्चियों की हत्या की वह मलबे के ढेर से तब्दील हो चुका है। यह मलबा ध्वस्त जीवन मूल्यों की राख का प्रतीक है, जहाँ सहृदयता, मानवीयता और मानवीय संवेदना के भाव लुप्त हो गये हैं।

मोहन राकेश की यह कहानी आजादी के इतने दिन व्यतीत हो जाने के बाद भी उस सच को हमारे सामने उजागर करती हैं जिसका दंश लोगों ने विभाजन के दौरान झेला था। जहाँ साम्प्रदायिकता के चलते हिन्दू-मुसलमान, जो अब तक एक-दूसरे का साथ निभाते आ रहे थे, वही एक-दूसरे की जान की दुश्मन हो जाते हैं। सारे भाईचारे व मानव मूल्यों को स्वार्थ के चलते भुला दिया जाता है। गनी मियाँ के व्यक्तित्व में देश विभाजन का दर्द साकार हो उठा है।

अभ्यास प्रश्न

(1) रक्खे पहलवान ने किस कारण से चिरागदीन व उसके परिवार की हत्या की?

(2) गनी मियां का पूरा नाम क्या था?

(3) पाकिस्तान से अमृतसर मुसलमानों के आगमन का कारण क्या था?

14.3.1 देश विभाजन से उत्पन्न मानवीय मूल्यों की त्रासदी

'मलबे का मालिक' कहानी का आधार देश में विभाजन से उत्पन्न विसंगतियाँ हैं। आपको मालूम होगा कि हमारा देश 15 अगस्त सन् 1947 को आजाद हुआ। देश के आजादी की कीमत देश को दो टुकड़ों में बाँटकर चुकानी पड़ी। अब तक जो हिन्दू-मुसलमान हमेशा से आपस में मिलजुल कर रहते आये थे, वही अब एक-दूसरे की जान के दुश्मन बन जाते हैं। क्या आपने सोचा है कि आखिर ऐसी क्या बात थी कि लोगों ने आपसी भाई-चारा भूलाकर एक-दूसरे का खून बहाना शुरू कर दिया। जिसके चलते लाखों लोग मारे गये और बेघर हुए। प्रस्तुत कहानी इन घटनाओं का मुकम्मल बयान है। विभाजन की आकस्मिक चोट ने तरह-तरह की समस्याएँ पैदा की। साम्प्रदायिकता के चलते मानवीय संबंध, आदर्श, बन्धुत्व आदि भाव लुप्त से हो गए। इसके साथ-साथ राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं ने विस्थापित लोगों के दुःख-दर्द को और बढ़ाया। अब तक विभिन्न वर्ग के लोग अपने-अपने धर्म व रीति-रिवाज का निर्वाह करते हुए भाईचारे के साथ एक-दूसरे का सहयोग करते हुए जीवनयापन कर रहे थे। सम्प्रदाय के आधार पर होने वाले विभाजन ने इस पर गहरी चोट की जिसके चलते लाखों-करोड़ों लोगों की

जिंदगी तबाह हुई। क्या आपने महसूस किया है कि जहाँ आप रहते हैं, अचानक कहा जाय कि यह घर आपका नहीं, यह देश आपका नहीं, आपको कैसा प्रतीत होगा?

यहाँ पर हमें इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि सभी हिन्दू-मुसलमान विभाजन के जिम्मेदार नहीं, यह कुछ राजनीतिक व स्वार्थी लोगों का षडयंत्र था जिसके चलते उन्होंने एक-दूसरे की पहचान को धर्म से जोड़कर एक-दूसरे के खिलाफ भड़काने का काम किया। आखिर क्या कारण थे कि जो हिंदू-मुसलमान सदियों से एक स्थान पर रहते हुए सामाजिक और भावनात्मक स्तर पर एक-दूसरे से जुड़े हुए थे, एक ही धरती पर रह रहे थे, वही साम्प्रदायिक कटुता के चलते अलग होने को मजबूर कर दिये गये। आपने यह कहानी पढ़ी, इसमें गनी मियां जब अपने घर को मलबे में तब्दील देखता है तो उसकी रुह काँप जाती है। उसे अपने देश की मिट्टी से इतना लगाव है कि उसका मन उन मलबे को भी छोड़कर जाने का नहीं करता। पर वह जानता है कि साढ़े सात साल पहले जो उसका अपना था उसे उसके अपनों ने ही खाक कर दिया। अब वह चाहकर भी वहां नहीं रह सकता जहां अपनी सारी उम्र उसने गुजार दी थी। वैसे पाकिस्तान का बनना अचानक नहीं था, इसके लिए वातावरण पहले से ही बनाया जा रहा था। वह भी उन लोगों के द्वारा जिन पर सारी समरसता की जिम्मेदारी थी, पर स्वार्थ के चलते उन्होंने इस देश को बांटने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई। ऐसे लोगों में हिन्दू-मुसलमान दोनों थे। पाकिस्तान के समर्थक लोगों को यह बात पता थी इतनी आसानी से हिन्दू-मुस्लिम एकता को नहीं तोड़ा जा सकता, जिसे बनने में सैकड़ों वर्ष लगे हैं। धार्मिक एवं राजनीतिक रूप से अक्षम कुछ लोगों द्वारा सम्प्रदाय को आधार बनाकर हिन्दू-मुसलमान के हित को अलग बताया गया। जिसके चलते हालात इस कदर बदतर होते गये कि देश विभाजन ही एकमात्र विकल्प बचा। पर यह विभाजन भयानक नरसंहार व मानवीय मूल्यों के क्षरण से जुड़ा है। प्रस्तुत कहानी में गनी मियां का चित्र उस स्थिति को बयां करता है कि साधारण लोगों में से कोई नहीं चाहता था कि वह पाकिस्तान या भारत के विकल्प को चुनें। विश्व के नक्शे पर एक लकीर खींच दी गयी और अब तक जो भारत था वह दो देशों में विभाजित हुआ। यह विश्व के सबसे निर्मम व संवेदनहीन घटनाओं में प्रमुखतम है। इस विभाजन की पीड़ा का साक्षात्कार हम प्रस्तुत कहानी में करते हैं।

'मलबे का मालिक' कहानी देश बंटवारे के बावजूद बची मानवीयता को भी रेखांकित करता है। अभी भी बहुत कुछ है जिसका बंटवारा नहीं किया जा सका या यूँ कहें कि कर नहीं पाये। विभाजन की लकीर तो खींच दी गयी पर एक देश के लोगों का दूसरे देश के लोगों के प्रति लगाव अब भी कायम है। हाँ यह जरूर है कि कुछ स्वार्थी तत्व यह नहीं चाहते कि लोगों में भाईचार पनपे और उनकी गन्दी राजनीति का दिवाला निकल जाये। कहानी में आपने देखा कि पाकिस्तान में आई मुस्लिमों की टोली अमृतसर ने बाजारों में घूम रही है तो लोग बड़ी उत्सुकता से लाहौर के बारे में पूछ रहे हैं। साथ ही मनोरी को जब यह पता चलता है कि अब्दुल गनी उसके बचपन के गनी मियां है तो वह उनकी बाँह पकड़कर अपने साथ ले जाता है और गनी मिंया की

हालत यह है कि सब कुछ लुट जाने के बावजूद वतन की मिट्टी की खुशबू उनका पीछा नहीं छोड़ रही है। रक्खे जैसे निर्मम व विश्वासघाती व्यक्ति पर भी वह अपना स्नेह बरसाता है- ''जी हल्का न कर, रक्खिआ! जो होनी थी, सो हो गई। उसे कोई लौटा थोड़े ही सकता है? खुदा नेक की नेकी रखे और बद की बदी माफ करे। मेरे लिए चिराग नहीं, तो तुम लोग तो हो। मुझे आकर इतनी ही तसल्ली हुई कि उस जमाने की कोई तो यादगार है। मैने तुमको देख लिया, तो चिराग को देख लिया। अल्लाह तुम लोगों को सेहतमंद रखे। जीते रहो और खुशियां देखो।'' गनी से मुलाकात के दरम्यान रक्खे को ऐसा महसूस होता है कि उसके शरीर में कुछ बचा ही न हो, एक अजीब सी बेचैनी उसे घेर लेती हैं। यह ग्लानि की स्थिति है, उस भावावेश का नतीजा है जिसके चलते उसने लोगों की निर्मम हत्याएँ की, घर जलाये। बाद में तूफान के शांत होने पर प्रतीत होता है कि हमने अपने ही लोगों के साथ इतना बदतर सलूक किया। चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान सबने अपने-अपने ईश्वर को बाँट लिया और इस ईश्वर के नाम पर एक-दूसरे का खून बहाया। लाखों लोग भारत से पाकिस्तान और पाकिस्तान से भारत आने के दरम्यान मारे गये, करोड़ो बेघर हुए। मानवीयता शर्मसार हुई। प्रस्तुत कहानी विभाजन के बाद की हकीकत को बयां करती है, साथ ही विभाजन के दरम्यान होने वाली अमानवीयता से हमारा परिचय कराती है।

14.3.2 मानवीय मूल्यों के पतन का चित्रण

'मलबे का मालिक' कहानी में इस तथ्य को रेखांकित किया गया है। किस प्रकार साम्प्रदायिक दंगों के दरम्यान मानवीयता की भावना को तिलांजली दे दी गई। अपने ही बेगाने लगने लगे, वह भी इस कारण कि उनका मजहब दूसरा है। धर्म के नाम तरह-तरह के घिनौने कार्य किये गये। कुछ लोगों के उकसावे में आकर सैकड़ों सालों में बनी साझी विरासत व भाईचारे की भावना को छिन्न-भिन्न कर दिया गया। यह कहानी आपके सामने इस हकीकत को उजागर करती है। गनी मियां के बेटे चिरागदीन उसकी पत्नी जुबैदा और दो बच्चियों किश्वर और सुल्ताना की निर्मम हत्या इस स्थिति से हमारा साक्षात्कार कराती है जो लाखों की संख्या में हुए। मानवीय मूल्यों का इस कदर पतन हुआ कि लोगों को इंसानियत पर से भरोसा डगमगाने लगा। रक्खे पहलवान जो कि अपने मुहल्ले का गुंडा है, उसका अपने दोस्त के प्रति किया निर्मम अत्याचार पाठकों को भीतर तक झकझोर देता है। शाम को खाना खाने के वक्त वह चिरागदीन को उसके घरे से बुलाता है, उसके बुलाने पर चिरागदीन अपना खाना बीच में ही छोड़कर छत से नीचे आता है।

''चिराग ने ड्योढ़ी से बाहर कदम रखा ही था कि पहलवान ने उसे कमीज के कालर से पकड़कर खींच लिया और गली में गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठा। चिराग उसका छूरेवाला हाथ पकड़कर चिल्लाया, 'न रक्खे पहलवान, मुझे मत मार! हाय! कोई मुझे बचाओ। जुबैदा! मुझे बचा।'' और ऊपर जुबैदा-किश्वर और सुल्ताना हताश स्वर में चिल्लाई। जुबैदा चीखती हुई नीचे ड्यौढ़ी की तरफ भागी। रक्खे के एक शागिर्द ने चिराग की जद्दो-जेहद करती हुई बाहें पकड़

ली और रक्खा उसकी जांघों को घुटनों से दबाए हुए बोला, ''चीखता क्यों है, भैण के... तुझे पाकिस्तान दे रहा हूँ, ले! और जुबैदा के नीचे पहुँचने से पहले ही चिराग को पाकिस्तान दे दिया।''

आपने कहानी पढ़ी है, यह वही रक्खे पहलवान है जिस पर चिरागदीन को सबसे अधिक भरोसा था, अपनी जान से भी ज्यादा। चिरागदीन के भरोसे का कत्ल समूची मानवता का कत्ल है जो कि रक्खे पहलवान ने उसके घर के चलते किया। यह स्थिति तब और मार्मिक हो उठती है जब रक्खे के इस नृशंस व्यवहार से अनजान गनी उससे पूछता है-

''तू बता, रक्खे, यह सब हुआ किस तरह?'' गनी आंसू रोकता हुआ आग्रह के साथ बोला, ''तुम लोग उसके पास थे, सबमें भाई-भाई की सी मुहब्बत थी, अगर वह चाहता तो वह तुममें किसी के घर में नहीं छिप सकता था? उसे इतनी भी समझ नहीं आई?''

चिरागदीन रक्खे पर इतना विश्वास करता है कि वह अपने पिता के साथ पाकिस्तान नहीं जाता। उसे लगता था कि रक्खे के रहते उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। रक्खे ने चिरागदीन की हत्या तो की ही, उसकी बीबी, दोनों बच्चियों को भी नहीं छोड़ा। अमानवीयता की हद तब हो जाती है जब चिरागदीन और उसके परिवार को बचाने कोई नहीं आता। गली के सब लोग अपने खिड़की-दरवाजे बन्द कर लेते हैं, सिर्फ चींखे उन्हें सुनाई देती है-

''आस-पास के घरों की खिड़कियां बंद हो गईं जो लोग दृश्य के साक्षी थे उन्होंने दरवाजे बंद करते, अपने को इस घटना के उत्तरदायित्व से मुक्त कर दिया। बंद किवाड़ों में भी उन्हें देर तक जुबैदा, किश्वर और सुल्ताना के चीखने की आवाजें सुनाई देती रहीं। रक्खे पहलवान और उसके साथियों ने उन्हें भी पाकिस्तान देकर विदा कर दिया, मगर दूसरे तबील रास्ते से। उनकी लाशों चिराग के घर में न मिलकर बाद में नहर के पानी में पाई गईं।

मोहन राकेश ने इस घटना का वर्णन इतना जीवंत किया है कि उस दरम्यान की सारी हैवानियत सामने दिखाई देती प्रतीत होती है। जहाँ धर्म की आड़ में पुरुषों का कत्ल किया गया, बहू-बेटियों की इज्जत नीलाम की गई। इस बर्बरता का प्रस्तुत कहानी में साक्षात्कार पाठकों को झकझोर देता है। साथ ही यह टीस भी उठती है कि जब कोई किसी पर भष्टाचार कर रहा है तो सब लोग चुप क्यों हैं? रातोंरात कोई इस कदर बेगाना कैसे हो गया कि उसकी मौत का लोग तमाशा देख रहे हैं। वह भी इसलिए कि अब धर्म के नाम पर देश बंट चुका है। अब यहाँ मुसलमानों को रहने का कोई हक नही। यह सोच मानवीय मूल्यों के पतन व संवेदनहीनता का सूचक है। चिरागदीन की हत्या रक्खे पहलवान ने उसके घर पर कब्जा करने की नियत से भी की थी। यही घर लूट-खसोट के बाद जला दिया जाता है और रक्खे पहलवान की सारी इच्छा 'मलबे के ढेर' में तब्दील हो जाती है। अन्त में उसे मलबा ही मिलता है जिसका कोई अर्थ नहीं। यह मलबा इंसान की इंसानियत के नष्ट हो जाने का प्रतीक है। कहानी में रक्खे मलबे पर भी

अपना अधिकार मानता आया है कि किसी को वहाँ जाने नहीं देता। पर अंत में उस पर एक कुत्ते का अधिकार हो जाता है जो रक्खे को भी पास नहीं फटकने देता। दंगों में इंसानों की कब्जा नहीं हुई। मानवता की हत्या हुई जिसके फलस्वरूप कुछ भी नहीं बचा। सब कुछ नष्ट होकर मलबे के ढेर में तब्दील हो गया। प्रस्तुत कहानी मानवीय मूल्यों के पतन का मार्मिक अंकन करती है जो पाठकों को उस स्थिति से रूबरू कराती है जो साठ साल पहले विभाजन के दरम्यान लोगों ने भोगा व महसूस किया।

अभ्यास प्रश्न

(1) प्रस्तुत कहानी के आधार पर रक्खे पहलवान के चरित्र पर प्रकाश डालिये।
(2) देश के विभाजन के लिए जिम्मेदार कारणों को स्पष्ट कीजिए।
(3) साम्प्रदायिकता से आप क्या समझते हैं?
(4) चिरागदीन की पत्नी व उसकी दोनों बेटियों का नाम क्या था?

14.4 बेघर होने की पीड़ा होने का अनुभव

आप जानते हैं कि सन् 1947 में हमारा देश आजाद हुआ, पर साथ ही दो भागों में बंट गया। यह अलगाव सिर्फ भौगोलिक धरातल पर ही नहीं घटित हुआ वरन् इसने समाज के हर अंग को प्रभावित किया। सारे मानवीय मूल्य, आशाएँ, आकांक्षाएं धूल में मिल गयीं। जिस आजादी के सपनों को लेकर लोगों ने कंधों से कंधा मिलकर स्वाधीनता संघर्ष में योगदान दिया उसकी चरम परिणति देश के हृदयविदारक बंटवारे के रूप में हुई। मजहबी आधार पर होने वाले दंगों ने न जाने कितनों को मौत की नींद सुला दी और कितनों को बेघर कर दिया। 'मलबे का मालिक' कहानी का पात्र अब्दुल गनी अपने घर से दूर होने की मर्मांतक पीड़ा को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। 'घर' सिर्फ रहने के लिए नहीं होता, घर से मानव मन की आकांक्षाएं, सपने जुड़े होते हैं। मजहबी व जातिवादी हिंसा किस प्रकार लोगों के अरमानों पर पानी फेर देती है, इसका आख्यान है यह कहानी। जिसमें विभाजन के दर्द व त्रासदी को अपनी पूरी संवेदना के साथ लेखक ने प्रस्तुत किया है। आप ने महसूस किया है कि घर किससे बनता है? क्या वह सिर्फ ईंट-मिट्टी से बनी हुई दीवार भर है? क्या कारण है कि हर किसी को अपने घर से लगाव होता है, वहाँ की मिट्टी से जुड़ाव होता है। यह घर और अपनी मिट्टी का जुड़ाव ही उसे प्रकारांतर से समाज और देश के प्रति भी लगाव उत्पन्न कर देता है। कहानी में गनी मियां के माध्यम से अपनी जमीन से उखड़ने की पीड़ा साकार हो उठी है। यह दुःख तब और घना हो जाता है जब हम यह महसूस करते हैं कि देश में विभाजन से पूर्व जो अपने थे, वह झटके में ही साम्प्रदायिक आंधी में बेगाने हो जाते हैं। सारे मानवीय मूल्य निरर्थक हो जाते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर कथाकारों की रचनाओं में देश के विभाजन का दर्द गहरे रूप में चित्रित किया गया है। यशपाल का 'झूठा सच', भीष्म साहनी का 'तमस' जैसे उपन्यास विभाजन की विभीषिका को व्यापक व गहन स्तर पर रूपायित करते हैं। कृष्णा सोबती की कहानी 'सिक्का बदल गया' इस विभाजन की हकीकत को मार्मिक रूप में प्रस्तुत करती है। यह विभाजन इतना अप्रत्याशित था कि इसने लोगों को भावनात्मक, वैचारिक एवं मनोवैज्ञानिक स्तर पर तोड़ के रख दिया। अमानवीयता का कहत इस तरह लोगों पर टूटा कि बच्चे, औरतों के साथ जघन्य अत्याचार हुए। बलात्कार व अपहरण जैसे कुकृत्य समूची मानवता पर बहुत बड़ा दाग है। 'मलबे का मालिक' कहानी में चिरागदीन की पत्नी और लड़कियों के साथ रक्खे पहलवान और उसके साथियों द्वारा किया गया कुकर्म उस हकीकत रूप से हमें रूबरू करता है जो स्त्रियों को विभाजन के दौरान झेलना पड़ा। अपमान और हैवानियत की सारी हदें धार्मिक उन्माद के नाम पर की गई, जो इतिहास का काला अध्याय है।

गनी मियां के परिवार के साथ इतना कुछ होने के बाद भी गनी मियां का जले हुए घर के मलबे से लगाव संवेदनशील मन को झकझोर देता है। उसका मन उसे भी छोड़कर वापस पाकिस्तान जाने का नहीं करता। मनोरी जब उसका जला हुआ मकान दिखाता है तो पहले तो उसे विश्वास ही नहीं होता कि ऐसा हो सकता है। ''गनी छड़ी का सहारा लेता हुआ किसी तरह मलबे के पास पहुँच गया। मलबे में अब मिट्टी ही मिट्टी थी, जिसमें जहाँ-तहाँ टूटी और जली हुई ईंटें फंसी थी। लोहे और लकड़ी का सामान उसमें से न जाने कब का निकला लिया गया था। केवल जले हुए दरवाजे का चौखट न जाने कैसे बचा रह गया था, जो मलबे में से बाहर को निकला हुआ था। पीछे की ओर दो आलमारियां थी, जिनकी कालिख पर अब सफेदी की हल्की-हल्की तक उभर आई थी। मलबे को पास से देखकर गनी ने कहा, ''यह बाकी रह गया है?''

जिस घर को अपने खून-पसीने से सींचकर गनी ने तैयार किया, अब उसकी यह हालत देखकर उसकी हिम्मत जवाब दे जाती है। यह कहानी गनी के माध्यम से विस्थापन के उन दर्द से हमें रूबरू कराती है जिसे लाखों-करोड़ों लोगों ने भोगा और महसूस किया। विभाजन की त्रासदी ने इन्हें घर से बेघर कर शरणार्थी बनकर रहने पर मजबूर कर दिया। सामाजिक और आर्थिक दुश्चिंताओं का भारी-भरकम बोझ सर पर लाद दिया। गनी को मजबूर होकर पाकिस्तान जाना तो पड़ता है, पर वहाँ उसकी अहमियत शरणार्थी से ज्यादा नहीं। इसका पता हमें तब चलता है जब रक्खे पहलवान द्वारा पाकिस्तान का हाल पूछा जाता है। जिसके जवाब में वह कहता है कि वह तो मेरा खुदा ही जानता है। इस प्रकार 'मलबे का मालिक' कहानी विभाजन के दौरान बेघर होने वालों की पीड़ा से भी हमारा साक्षात्कार कराती है।

14.5 'मलबे का मालिक' कहानी का आशय

सर्वप्रथम हम शीर्षक की दृष्टि से विचार को तो 'मलबे का मालिक' शीर्षक प्रतीकात्मक है। यहाँ मलबा सिर्फ राख और मिट्टी का ढेर भर नहीं है, वरन् यह उन मानवीय मूल्यों व संवेदनाओं की राख भी है जिसे विभाजन के दरम्यान हुए साम्प्रदायिक वैमनस्य के चलते दरकिनार कर दिया गया। रक्खे पहलवान द्वारा चिरागदीन की हत्या के पीछे धार्मिक उन्माद तो है ही साथ ही वह घर भी है जिसमें चिरागदीन अपने परिवार के साथ रहता है। यही घर कुछ लोगों द्वारा लूटने के बाद आग के हवाले कर दिया जाता है। रक्खे पहलवान ने जिस स्वार्थलिप्सा के चलते चिराग की हत्या की, वह अब उसे मलबे के रूप में प्राप्त होता है। अन्त में इस मलबे का मालिक वह न रहकर एक कुत्ता हो जाता है जो कि विभाजन की त्रासदी के समक्ष प्रश्नचिह्न खड़ा कर देता है। सम्प्रदाय के नाम पर देश के विभाजन की वास्तविकता यही हुई कि जिसको पाने के लिए इतने अमानवीय कृत्य किये गये उसकी अहमियत उस मलबे के ढेर से अधिक नहीं, जिस पर कुत्ते जैसे प्राणी का अधिकार हो गया। साम्प्रदायिक विभीषिका की त्रासदी की निरर्थकता का परिचय हमें इन पंक्तियों से मिलता है, जब मलबे के ढेर पर ''एक भटका हुआ कौवा न जाने कहां से उड़कर लकड़ी की चौखट पर आ बैठा। उससे लकड़ी के रेशे इधर-उधर छितरा गए। कौवे के वहां बैठते-न-बैठते मलबे के एक कोने में लेटा हुआ कुत्ता गुर्राकर उठा और जोर-जोर से भौंकने लगा, वऊ-अऊ-अऊ-वऊ। कौआ कुछ देर सहमा-सा चौखट पर बैठा रहा, फिर वह पंख फड़फड़ता हुआ उड़कर कुएं के पीपल पर चला गया। कौए के उड़ जाने पर कुत्ता और नीचे उतर आया और पहलवान की ओर मुँह करके भौंकने लगा। पहलवान उसे हटाने के लिए भारी आवाज में बोला- दुर्-दुर्-दुर्...दुरे।

मगर कुत्ता और पास आकर भौंकने लगा... वउ-अउ-वउ-वउ-वउ-वउ...

हट-हट, दुर्र् दुरे।

...वउ-अउ-वउ-वउ-वउ-वउ

पहलवान ने एक ढेला उठाकर कुत्ते की ओर फेंका। कुत्ता थोड़ा पीछे हट गया, पर उसका भौंकना बंद नहीं हुआ। पहलवान मुंह ही मुंह कुत्ते को मां की गाली देकर वहां से उठ खड़ा हुआ और कुत्ता धीरे-धीरे जाकर कुएं की ओर मुंह करके भौंकने लगा। काफी देर भौंककर जब गली में उसे कोई प्राणी चलता-फिरता दिखाई नहीं दिया, तो वह एक बार कान पटककर मलबे पर लौट आया और वहां कोने में बैठकर गुर्राने लगा।''

मलबे पर अधिकार को लेकर रक्खे पहलवान व कुत्ते की कशमकश प्रतीकात्मक एवं सारगर्भित है। अंत में मलबे का मालिक कुत्ता बन बैठता है। यह चरम परिणति है उस त्रासदी की जो मजहबी जुनून व स्वार्थ के चलते देश को विभाजित कर लोगों को अकारण अपनों से बेगाना

कर देती है। विभाजन के दरम्यान हुई हिंसा से किसी को कुछ नहीं मिलता, अगर मिला है तो मानवीय मूल्यों के पतन की राख। यह कहानी बहुत सधे अंदाज में विभाजन की त्रासदी को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। साथ ही यह भी विश्वास देती है कि इतना सब कुछ हो जाने के बाद भी सब कुछ नष्ट नहीं हुआ हैं गनी मियां की निश्छलता व स्वदेश प्रेम की भावना, रक्खे पहलवान की ग्लानि इसका परिचायक है, जो यह स्पष्ट करती है कि जातीय व मजहबी आधार पर किये जाने वाले अपराध निरर्थक है, इससे किसी को कुछ हासिल होने वाला। सबसे ऊपर मानव धर्म है जिसकी उपेक्षा मानव अस्तित्व को संकट में डालती है।

मोहन राकेश की कहानियों में भोगे हुए यथार्थ का चित्रण प्राप्त होता हैं 'मलबे का मालिक' कहानी के दृश्य इतने प्रभावशाली है कि पाठक के सामने वह दृश्य मूर्तिमान हो उठता है। संवेदना के धरातल पर वह उस घटना का साक्षी बन जाता है। आपने पूरी कहानी पढ़ ली है, आपने देखा कि किस प्रकार यह कहानी देश के विभाजन के दरम्यान होने वाली अमानवीयता स्वार्थ को उजागर करती है, जहाँ एक ओर गनी मियां का निश्छल व्यवहार अपनी मिट्टी के प्रति लगाव आपको प्रभावित करता है, वहीं रक्खे पहलवान की हैवानियत मन में क्षोभ भी उत्पन्न करती है। यह कहानी उस यथार्थ से हमें रूबरू कराती है जो साम्प्रदायिक दंगों के दरम्यान हुए, जिनसे मानवता शर्मसार हुई। हिंसा और विस्थापन की प्रक्रिया न सब कुछ जलाकर खाक कर डाला।

'मलबे का मालिक' कहानी में गनी मियां का चरित्र विभाजन से अपने घर समाज में विस्थापित उन लोगों के दर्द से हमें परिचित कराता है जो अपना सब कुछ देने के बावजूद शरणार्थी बनने पर मजबूर कर दिये गए। साथ ही उस स्थिति का भी हमें पता चलता है कि किस प्रकार सारे भाईचारे को भुलाकर लोग एक-दूसरे का खून बहाने को तत्पर हो जाते हैं। साम्प्रदायिक दंगों की भयावहता और उसके फलस्वरूप होने वाली मारकाट, आगजनी, बलात्कार, विस्थापन जैसी घटनाएँ संवेदनहीनता की परिचायक हैं। घर के लालच में अपने मित्र चिरागदीन और उसके परिवार की रक्खे पहलवान और उसके साथियों के द्वारा की गई हत्या इस कहानी में विचारणीय बिन्दु है। यह कुछ ऐसा ही है कि जैसे किसी साधारण सी चीज के लिए हम सारे विश्वासों व मूल्यों का गला घोंट रहे हों। गनी मियां द्वारा रक्खे पहलवान से चिरागदीन के बारे में पूछे जाने पर रक्खे को अपने भीतर कुछ टूटता सा जान पड़ता है। यह टूटना इस बात को रेखांकित करता है कि जिसकी चाह में रक्खा ने चिराग को मारा वह तो उसे नहीं ही मिला पर एक अनमोल दोस्त व मानवीय संवेदना को उसने खो जरूर दिया, इस विभाजन की विभिषिका में हमने पाया कम, खोया ज्यादा। यह कहानी उसका मुकम्मल बयान प्रस्तुत करती है।

14.7 सारांश

आपने 'मलबे का मालिक' कहानी पर आधारित प्रस्तुत इकाई अध्ययन कर लिया है। देश विभाजन की पृष्ठभूमि पर स्थित इस कहानी में आपने देखा कि किस प्रकार कुछ लोगों के स्वार्थ व मजहबी जुनून के चलते देश का बंटवारा हुआ। करोड़ों लोग गनी मियां की तरह अपने बसे-बसाये घर से बेघर होने पर मजबूर कर दिये गये। लाखों लोगों की हत्या, बलात्कार और अमानवीय यातनाओं से रूबरू होना।

हिन्दू-मुसलमान दोनों द्वारा मानवता को शर्मसार करने वाले कार्य हुए। यह विभाजन एक ऐसे तूफान की तरह था जो अचानक प्रकट हुआ और सारे भाईचारे और मानवीय मूल्यों को अपने साथ उड़ा ले गया। पूरा देश सामाजिक और आर्थिक समस्याओं से इस कदर घिर गया कि निकलने का कोई रास्ता ही नहीं सूझ पड़ता था। हमारे देश का विभाजन राजनीतिक स्तर पर जरूर हुआ, पर उसका खामियाजा भयंकर नरसंहार के रूप में उस आम जनता को भुगतना पड़ा जिसका इससे कुछ लेना-देना नहीं था। उनकी हत्या इसलिए की गई कि उनमें से एक मुसलमान था तो एक हिन्दू। 'मलबे का मालिक' कहानी इस सारी वस्तुस्थिति को संवेदना के धरातल पर चित्रित करती है।

नक्शे पर कुछ लोगों द्वारा खीचीं लकीर किस प्रकार जन-जीवन को अस्त-व्यस्त करके रख देती है, उसका दस्तावेज है यह कहानी। गनी मियां का अपने घर से दूर जाने का दुःख सिर्फ उनका दुःख न होकर उन सभी का है जो विभाजन के दरम्यान हुए साम्प्रदायिक दंगे व असहिष्णुता के चलते अपने घर से बेघर होकर शरणार्थी बनने पर मजबूर हुए। विश्वास का टूटना व मानवीय मूल्यों का पतन जैसी त्रासदी की यथार्थ अभिव्यक्ति कहानी को महत्वपूर्ण बनाती है। गनी मियां का रक्खे पहलवान से यह कहानी कि- ''मेरा हाल पूछे, तो वह मेरा खुदा ही जानता है। मेरा चिराग साथ होता, तो और बात थी... रक्खे, मैंने उसे कितना समझाया था कि मेरे साथ चला चल। मगर वह अड़ा रहा कि नया मकान छोड़कर कैसे जाऊँ, यहाँ अपनी गली में है, कोई खतरा नहीं है। भोले कबूतर ने यह नहीं सोचा कि गली में खतरा न सही, बाहर से तो खतरा आ सकता है? मकान की रखवाली के लिए चारों जनों ने जान दे दी।... रक्खे, उसे तेरा बहुत भरोसा था। कहता था कि रक्खे के रहते कोई मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मगर जब जान पर बन आई तो रक्खे के रोके भी न रुक सकी।''

आपको ध्यान होगा कि गनी मियां के घर के चिराग और उसके परिवार की हत्या इसी रक्खे पहलवान द्वारा की गई। कहानी में चिरागदीन की हत्या इंसानियत व विश्वास की हत्या है जिसे यह कहानी मार्मिक रूप से प्रस्तुत करती है। यह कहानी हमें भारत विभाजन की गंभीरता और उसके फलस्वरूप हुई विनाशलीला तथा नरसंहार के यथार्थ को हमारे समक्ष उद्घाटित करती है। इस कहानी के माध्यम से मोहन राकेश ने सामाजिक मनोवैज्ञानिक स्तर पर मनुष्य की

कुवृत्तियों एवं सीधे-साधे लोगों की विवशताओं का जैसा चित्रण किया है वह मानवीय संवेदना को झकझोर देता है। साम्प्रदायिकता की आग में जलते हुए समाज में जाति और व्यक्ति के सम्बन्धों की हत्या का यथार्थ चित्रण समूची मानवता के सामने प्रश्नचिह्न खड़ी कर देता है। ऐसे मौकों का स्वार्थी लोगों द्वारा किस प्रकार गलत फायदा उठाया जाता है, इसका अंकन भी प्रस्तुत कहानी में किया गया है। एक घर का मलबे में तब्दील होना मानव मूल्यों की पतनशीलता का द्योतक है।

इस इकाई में आपने मोहन राकेश की देश विभाजन पर आधारित कहानी 'मलबे का मालिक' पर विचार किया है। इस कहानी में गनी मियां व रक्खे पहलवान के चरित्र के माध्यम से विभाजन की पीड़ा व अमानवीयता को उकेरा गया है। साथ ही विस्थापन, हत्या, शरणार्थी होने के दर्द, स्वार्थलिप्सा व व्यक्ति का व्यक्ति से अलगाव का बखूबी चित्रण किया गया है। यह खासियत इस कहानी को कालजयी कहानियों में स्थान दिलाती है।

14.8 शब्दावली

- अंतर्मुखी - मन की निगूढ़ भावना में रहने वाला व्यक्तित्व
- टोली - समूह
- मलबा - ढ़ेर, कूड़ा
- सहृदयता - किसी के प्रति सम्मानजनक भावना
- समरसता - भाई-चारे का माहौल
- अमानवीयता - मनुष्यता के प्रति आचरण करना।

14.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) चिरागदीन और उसके परिवार की हत्या का प्रमुख कारण रक्खे पहलवान द्वारा उसके घर पर अधिकार करने की स्वार्थ लिप्सा, धार्मिक उन्माद है।

(2) गनी मियां का पूरा नाम अब्दुल गनी था।

(3) पाकिस्तान से भारत मुस्लमों के आगमन का प्रमुख कारण हाकी मैच का आयोजन था।

(4) चिरागदीन की पत्नी का नाम जुबैदा व दोनों बेटियों का किश्वर और सुल्ताना था।

14.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) सं० कमलेश्वर, स्वातंत्रोत्तर हिन्दी कहानियां- नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया।

(2) यादव, राजेन्द्र, (सं०) एक दुनिया: समानान्तर - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

(3) सिंह, नामवर, कहानी: नयी कहानी - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

14.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

(1) अवस्थी, देवीशंकर, (सं०) नयी कहानी: संदर्भ प्रकृति - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

(2) मधुरेश, नई कहानी का अंतःसंघर्ष: एक विमर्श- नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

(3) यादव, राजेन्द्र, कहानी: अनुभव और अभिव्यक्ति - वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

14.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.'मलबे का मालिक' कहानी की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।

2. 'मलबे की कहानी' के आधार पर गनी मियां का चरित्र-चित्रण कीजिए।

इकाई 15 स्त्री सुबोधिनी :पाठ एवं विवेचन

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 लेखिका का परिचय
15.4 कहानी का पाठ (वाचन)
15.5 कहानी का सार
15.6 कहानी की सप्रसंग व्याख्या
15.7 सारांश
15.8 शब्दावली
15.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
15.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री
15.12 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाइयों में आप हिन्दी कहानी और स्वतंत्रता पूर्व की कहानियों का विस्तृत अध्ययन कर चुके हैं। आप जानते ही हैं कि आधुनिक भारतीय जीवन पद्धति ,परिवेश और परिस्थितियों में आ रहे बदलाव को कथा साहित्य ने प्रमुखता से उभारा है। कहानी साहित्य में इस बदलाव को इसकी सम्पूर्णता में व्यक्त किया गया है। आप यह भी अच्छी तरह से समझते हैं कि स्वतंत्रता एक ऐसी घटना है जिसने भारतीय जीवन मूल्यों को बदला है। स्वतंत्रता से पहले के आदर्शवाद को बदली हुई स्थितियों ने अप्रासंगिक कर दिया है। जीवन के ठोस यथार्थ ने रिश्तों और मानवीय संवेदनाओं में व्यापक फेर बदल किया है। पिछली इकाई में व्याख्यायित कहानी मलबे का मालिक के अध्ययन के बाद स्वतंत्रता के साथ जुड़ी विभाजन की त्रासदी को आप अनुभूत कर सकते हैं।

इस इकाई में आप हिन्दी की प्रख्यात लेखिका मन्नू भण्डारी की सुप्रसिद्ध कहानी स्त्री सुबोधिनी का वाचन और विश्लेषण करेंगे। यह कहानी स्त्री की परम्परागत छवि में आये बदलाव तथा नये जीवनमूल्यों की कहानी है। इसके अध्ययन के बाद आप स्वतंत्रता के बाद के

भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में आये बदलाव को व्याख्यायित और विश्लेषित कर सकेंगे।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :-

- मन्नू भण्डारी जीवन से परिचित हो सकेंगे।
- स्त्री सुबोधिनी की कथा की विवेचना कर सकेंगे।
- कहानी में व्यक्त भावों की व्याख्या कर सकेंगे।
- पात्रों के मनोविज्ञान को समझकर व्यावहारिक जीवन में उनके व्यवहार का औचित्य निर्धारण कर सकेंगे।
- नये जीवन मूल्यों का विश्लेषण करने में सक्षम होंगे।

15.3 लेखिका परिचय

हिन्दी की सुप्रसिद्ध कहानीकार मन्नू भण्डारी का जन्म 3 अपैल, 1931 को मध्य प्रदेश के मंदसौर जिले के मानपुरा गाँव में हुआ। इनका नाम महेन्द्र कुमारी था, लिखने के लिए इन्होने मन्नू नाम रखा। एम. ए. तक शिक्षा पाने के बाद आपने दिल्ली के मीरांडा हाउस में अध्यापन का कार्य किया। आप विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन में प्रेमचन्द सृजनपीठ की अध्यक्षा भी रहीं। धर्मयुग में धारावाहिक रूप में तथा बाद में पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित आपका उपन्यास आपका बंटी बहुत चर्चित हुआ था। आपने उपन्यास और कहानियाँ दोनों लिखे हैं। आपके उपन्यास महाभोज पर आधारित नाटक बहुत लोकप्रिय हुआ। आपकी कहानी यही सच है पर निर्मित फिल्म रजनीगंधा भी अत्यंत लोकप्रिय हुई थी, जिसे 1974 की सर्वश्रेष्ठ फिल्म का पुरस्कार भी मिला । इसके अतिरिक्त इन्हें हिन्दी अकादमी, दिल्ली का शिखर सम्मान, बिहार सरकार, भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी,व्यास सम्मान तथा उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा भी पुरस्कृत किया गया।

आधुनिक जीवन में आये बदलावों से बदलते सामाजिक मूल्यों को आपने अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। स्त्री-पुरुष के सम्बंधों में आये बदलाव और उससे समाज और परिवार के बदले रूपों को आपने अपनी कहानियों में व्यक्त किया है।

प्रकाशित कृतियाँ

कहानी-संग्रह :- एक प्लेट सैलाब, मैं हार गई, तीन निगाहों की एक तस्वीर, यही सच है, त्रिशंकु, श्रेष्ठ कहानियाँ, आँखों देखा झूठ, नायक खलनायक विदूषक।
उपन्यास :- आपका बंटी, महाभोज, स्वामी, एक इंच मुस्कान और कलवा, एक कहानी यह भी
पटकथाएँ :- रजनी, निर्मला, स्वामी, दर्पण।
नाटक :- बिना दीवारों का घर।

15.4 कहानी का पाठ (वाचन)

स्त्री सुबोधिनी

प्यारी बहनो,

न तो मैं कोई विचारक हूँ, न प्रचारक, न लेखक, न शिक्षक। मैं तो एक बड़ी मामूली-सी पेशेवर घरेलू औरत हूँ, जो अपनी उम्र के बयालीस साल पार कर चुकी है। लेकिन इस उम्र तक आते-आते जिन स्थितियों से मैं गुजरी हूँ, जैसा अहम् अनुभव मैंने पाया......चाहती हूँ, बिना किसी लाग-लपेट के उसे आपके सामने रखूँ और आपको बहुत सारे खतरों से आगाह कर दूँ, मैं जानती हूँ कि अपने जीवन के निहायत ही निजी अनुभवों को यों सरेआम कहकर मैं खुद अपने लिए बहुत बड़ा खतरा मोल लूँगी। मेरे मात्र पाँच साल के अल्पकालीन विवाहित जीवन पर भी संकट आ सकता है। पर क्या करूँ, मेरा नैतिक दायित्व मुझे ललकार रहा है कि अपनी हजार-हजार मासूम किशोरी बहिनों को.......जो या तो ऐसी ही स्थिति में पड़ी हैं, या कि कभी भी पड़ सकती हैं....अपने अनुभव से कुछ नसीहत दूँ, बरबादी की ओर जाने से बचा लूँ, खतरा उठाकर भी यदि मैं दो-चार बहिनों की.........

कहानी लेखन की विविध शैलियाँ होती हैं, उन्हीं में से एक पत्र लेखन शैली भी है।इस कहानी में लेखिका ने इसी पत्र लेखन शैली का प्रयोग किया है। लेकिन यह किसी एक को सम्बोधित न होकर सभी नौकरीपेशा महिलाओं को सम्बोधित किया गया है। इससे कहानी में रोचकता और औत्सुक्य का भाव आया है।

क्या कहा, आपकी दिलचस्पी बेकार की लफ्फाजी में नहीं है ! आप असली बात जानना चाहती हैं ! बहुत अच्छे ! लफ्फाजी के प्रति यदि आपके मन में अरुचि है, तो यह शुभ लक्षण है। बहुत शुभ। आप शर्तिया बहुत सारे खतरों से बची रहेंगी। साँप काटा और बातों का मारा व्यक्ति बेचारा उठ ही नहीं पाता। मुझे ही देखिए, मेरी जो दुर्दशा हुई थी, उसका कारण....

अच्छा–अच्छा, अब एक भी बेकार की बात नहीं। बिना किसी लाग-लपेट से सीधी बात सुनिए। सीधी और सच्ची!

चुटीली और मुहावरेदार भाषा का प्रयोग है। साँप काटा और बातों का मारा मुहावरा है।

अभ्यास प्रश्न

---

1. लेखिका यह पत्र इसलिए लिख रही है? क्योकि-

क) वह प्रचारक है।

ख) अपने अनुभव से अन्य किशोरियों को नसीहत देना चाहती है।

ग)उनके विवाहित जीवन पर संकट आ सकता है।

2. *साँप काटा और बातों का मारा* मुहावरे का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

मेरा अपने बॉस से प्रेम हो गया। वाह! आपके चेहरों पर तो चमक आ गयी! आप भी क्या करें, प्रेम कम्बख्त है ही ऐसी चीज। चाहे कितनी ही पुरानी और घिसी-पिटी क्यों न हो जाये.....एक बार तो दिल फड़क ही उठता है......चेहरे चमचमाने ही लगते हैं ! खैर, तो यह कोई अनहोनी बात नहीं थी। डाक्टरों का नर्सों से, प्रोफेसरों का अपनी छात्राओं से, अफसरों का अपनी स्टैनो-सेक्रेटरी से प्रेम हो जाने का हमारे यहाँ आम रिवाज है। यह बात बिलकुल अलग है कि उनकी ओर से इसमें प्रेम कम और शगल ज्यादा रहता है। पर यह बात तो मुझे बहुत बाद में समझ में आयी। मैंने तो अपनी ओर से पूरी ईमानदारी के साथ ही शुरू किया था। ईमानदारी और समर्पण के साथ।

3. निम्नलिखित में मेल कीजिए

डॉक्टर	स्टैनो-सेक्रेटरी
प्रोफेसर	नर्स
अफसर	छात्रा

बेबाक तरीके से समाज में चल रहे सम्बन्धों की ओर इशारा किया गया है।

शिन्दे नये-नये तबादला होकर हमारे विभाग में आये थे। बेहद खुशमिजाज और खूबसूरत। आँखों में ऐसी गहराई कि जिसे देख लें, वह गोते ही लगाता रह जाये। बड़ा शायराना अन्दाज था उनका और जल्दी ही मालूम पड़ गया कि वे कविताएँ भी लिखते हैं। पत्र-पत्रिकाओं में वे धड़ाधड़ छपती भी रहती हैं और इस क्षेत्र में उनका अच्छा खासा नाम है। आयकर विभाग की अफसरी और कविताएँ, है न कुछ बेमेल सी बात। पर यह उनके जीवन की हकीकत थी।

शिन्दे का चरित्र उभरता है।

मैं स्थितियों और उम्र के उस दौर से गुजर रही थी, लड़कियों में प्रेम के लिए एक विशेष प्रकार का लपलप भाव रहता है। बूढ़ी माँ तीनों छोटे भाई-बहिनों को लेकर गाँव में रहती थी और मैं इस महानगरी में कामकाजी महिलाओं के एक होस्टल में। न घर का कोई अंकुश था और न इस बात की सम्भावना कि कहीं मेरा ठौर-ठिकाना लगा देंगे। मेरा ठिकाना वे लगाते भी क्या, उनकी जिन्दगियाँ ठिकाने लगी रहें, और घर की मशीन जैसे-तैसे चलती रहे, इसके लिए मुझे ही हर महिने मनीआर्डर में तेल डालकर भेजना पड़ता था। सब ओर से असुरक्षित और असहाय होकर ही मैंने जिन्दगी के सत्ताईस साल पूरे कर लिये और एकाएक ही मुझे लगने लगा कि नहीं, इस तरह अब और नहीं चलेगा। हर रोज हजार-हजार इच्छाएँ मुँह बाये खड़ी रहतीं और मैं उनके सामने ढेर हो जाती। आखिर मैंने अपनी नाक और आँखों को कुछ अधिक सजग और तेज कर लिया। बस, ऐसा करते ही मुझे हर नौजवान की नजरों में अपने लिए विशेष संकेत दिखने लगे और उनकी बातों में विशेष अर्थ और आमन्त्रण की गन्ध आने लगी। तभी भिड़ गया शिन्दे। उसके तो संकेत भी बहुत साफ थे......निमन्त्रण भी बहुत खुला। लगा, किस्मत ने छप्पन पकवानों से भरी थाली मुझ भुक्कड़ के आगे परोसकर रख दी है। सो मैंने न उसका आगा-पीछा जानने की कोशिश की और न अपना आगा-पीछा सोचने की। बरबस, आँख मूँदी और प्रेम की डगर पर चल पड़ी।

सामान्य रूप से प्रेम, सुरक्षा और स्थायित्व की भावना का वर्णन है, जो स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में आकर्षण का एक बड़ा महत्वपूर्ण कारण है।

हर प्रेम की शुरूआत करीब-करीब एक-सी ही होती है। प्रेमियों की वे सारी बातें चाहे जितनी रोमांचकारी और गुदगुदानेवाली लगें, देखने-सुननेवालो को बड़ी उबाउ और सपाट लगती हैं। घबराइये नहीं, मैं आपको उन बातों से कतई बोर करने नहीं जा रही। बस, इतना ही समझ लीजिये कि शामें हमारी किसी रेस्तराँ के नीम-अँधेरे कोने में बीततीं, तो कभी बाग के झुरमुट के बीच। कभी हम आपस में उँगलियाँ उलझाये रहते, तो कभी वह मेरी लटों से खिलवाड़ करता रहता। एक बार उसने कविता में मेरे बालों की उपमा बदली से दे दी। बस, फिर क्या था, मैं जब-जब गोदी में रखे उसके सिर पर झुककर बदली छितरा देती और वह उचककर.........

5. शिन्दे कैसे व्यक्ति थे चार पंक्तियों में लिखिए।

....
....
....
....

यह क्या, आपकी आँखों में तो अविश्वास उभर आया। मैं समझ गयी। एक ...सीनियर अधिकारी और ऐसी छिछोरी फिल्मी हरकतें। पर सच मानिए, अब भी मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि यहाँ के हर पुरुष के भीतर एक ऐसा ही फिल्मी हीरो आसन मारे बैठा रहता है और जब तक वह पूरी तरह तृप्त न हो जाये, मरता नहीं। उम्र के किसी भी दौर पर, उस समय चाहे वह छह बच्चों का बाप ही क्यों न हो.......जरा-सा मौका मिलते ही भड़भड़ाकर जाग उठता है और पूरी तरह अपनी गिरफ्त में जकड़ लेता है। फिर तो बड़ी-बड़ी तोपें तक ऐसी बचकाना और बेवकूफाना हरकतें करती हैं कि बस तौबा! न कोई शर्म न, उम्र का लिहाज। आजकल की लड़कियों ने इस राज को अच्छी तरह समझ लिया है, इसलिए वे शादी करते ही हनीमून की जान को लग जाती है। फिर किसी पहाड़ी जगह में, सारे नाज-नखरों के साथ, फिल्मी अदाकारी की तर्ज पर प्रेम के ऐसे-ऐसे दिलकश दाव-पेंच दिखाती हैं कि हीरो सहाब पूरी तरह ढेर! कम से कम आगे के दस साल तो सुरक्षित। पर हनीमून की नौबत तो शादी के बाद ही आती है न ! मैं तो उन बहिनों को सावधान करना चाहती हूँ, जो शादी में पहले ही हीरो के चुंगल में आकर अपने को चौपट कर लेती है।

अपने और शिन्दे की प्रेमसम्बन्धी घटनाओं का वर्णन करने के पीछे लेखिका का मन्तव्य यह है कि हर प्रेमी-प्रेमिका के बीच ऐसा ही होता है, लेकिन हर लड़की ऐसी स्थिति में अपने को विशेष मानती है। और इसी भ्रम में आकर अपनी ज़िन्दगी बर्बाद कर लेती हैं।

माफ करिए, फिर बहक गयी! क्या करूँ चाहती हूँ इस प्रसंग की एक-एक बारीकी आपको समझा दूँ। वरना इस चक्कर में फँसने के बाद तो समझ एकदम भोंथरी हो जाती है, जैसे मेरी हो गयी थी। हाँ, तो मेरा और शिन्दे का प्रेम चल निकला। एक बात साफ कर दूँ, बहुत जरूरी है। आप कहीं यह न समझ लें कि मैं शिन्दे से इसलिए प्रेम करने लगी थी कि वह मेरा बाँस था और उसके प्रेम के प्रकाश में मुझे अपना कैरियर दिपदिपाता हुआ दिखायी देता। नहीं, प्रेम जैसी पवित्र चीज़ को मैं घटिया किस्म के स्वार्थों से अलग करके ही देखती थी। तभी तो पूरे आठ साल तक शिन्दे के प्रेम की अखण्ड जोत जलाये अपने को होम करती रही।

लीजिए, आप हँस रही हैं ! क्या करूँ, मुश्किल यह है कि टुच्चे लोगों ने प्रेम में निहायत ही घटिया किस्म की घालमेल करके उसे इतना हल्का, झूठा और बाजारू बना दिया है कि

उसके असली रूप की बात करते ही लोग हँसने लगते हैं। पर आप मेरी बात का यकीन मानिए.........

मेरा प्रेम कतई-कतई कैरियर-ओरिएण्टेड नहीं था। बड़ी मुश्किल से पाये हुए अपने इस विवाहित जीवन को दाँव पर लगाकर, अपनी जो यह दुखभरी गाथा सुना रही हूँ, वह भी केवल उन्हीं बहिनों के लिए, जो प्रेम को मीराबाई के भाव से ग्रहण करती है।

..

अभ्यास प्रश्न

---

6. निम्नलिखित पंक्तियों का अर्थ स्पष्ट कीजिए-

1) मेरा प्रेम कतई-कतई कैरियर-ओरिएण्टेड नहीं था।

..
..
..

2) उन्हीं बहिनों के लिए, जो प्रेम को मीराबाई के भाव से ग्रहण करती है।
..
..
..

हाँ तो मैं पूरी तरह शिन्देमयी हो गयी, पर तभी एक भयंकर झटका लगा। बल्कि कहूँ कि जो लगा, उसके लिए झटका शब्द हल्का ही है। मालूम पड़ा कि शिन्दे के एक अदद बीवी है, जो पहली बार पुत्रवती बनकर पाँच महीने बाद आपने मैके से लौटी है। यानी एक अदद बीवी और एक अदद बच्चा। मुझे तो सारी दुनिया ही लड़खड़ाती नजर आने लगी। लगा, मैं बहुत बड़ा धोखा खा गयी हूँ। मेरे भीतर गुस्सा बुरी तरह बलबलाने लगा। इसने यह बात बतायी क्यों नहीं और बीवी-बच्चे के रहते मेरी ओर प्रेम का हाथ बढ़ाने का मतलब मैंने जब भी उससे घर और घरवालों के बारे में पूछा, वह तीन-चार शेर दोहरा दिया करता था, जिनका शाब्दिक अर्थ होता था, 'मेरा न कोई घर है न दर, न कोई अपना न पराया। इस जमीन और आसमान के बीच मैं अकेला हूँ, बिलकुल अकेला', पर मेरे लिए इन शेरों का सीधा-सादा अर्थ था- हरी झण्डी, लाइन क्लीयर। सो, मैं सपाटे से चल पड़ी। बल्कि चलने में थोड़ी फुर्ती भी की। आप तो जानती ही होंगी कि इस उम्र तक शादी न होने पर लड़कियों में खास तरह की हड़बड़ाहट आ जाती है। चाहती हैं जैसे भी हो, जल्दी से जल्दी प्रेमी को पूरी तरह कब्जे में करके, पति बनाकर अपनी टेंट

में खोंस लें। झूठ नहीं बोलूँगी। मैं भी इसी नेक इरादे से लपक रही थी कि बीच में ही औंधे मुँह गिरी।

पर गिरने नहीं दिया शिन्दे ने। हाथोंहाथ झेल लिया। गुस्से से मैं पगला रही थी और आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी हुई थी । मन हो रहा था, सामने बैठे इस आदमी की चिंदिया बिखेरकर रख दूँ और फिर कभी इसकी सूरत नहीं देखूँ। पर उसने बिना किसी बात का मौका दिये मुझे बाँहों में भर लिया और धुआँधार रोने लगा......पिता के दबाव में आकर की हुई शादी मेरे जीवन की सबसे बड़ी ट्रेजेडी बन गयी....बीवी के रहते भी मैं कितना अकेला हूँ.......दो अजनबियों की तरह एक छत के नीचे रहने की यातना.......ऐसी-ऐसी बातों के न जाने कितने टुकड़े आँसुओं में भीग-भीगकर टपक रहे थे। मेरा विवेक मुझसे संकल्प करवा रहा था कि लौट जाओ, इस दिशा में अब एक कदम भी आगे मत बढ़ो। मैं रो-रोकर अपना दुख दोहरा रहा था।

इसी बीच नायिका को पता चलता है कि शिन्दे विवाहित है,उसे आघात लगता है। शिन्दे उसे यह कहकर फुसला लेता है,कि विवाह मज़बूरी में किया है और उसका वैवाहिक जीवन बहुत बुरा है। शिन्दे का दोहरा चरित्र उभरता है।

इसी तरह हम दो-तीन बार और मिले। वही बातें, वही रोना। मैंने सोचा था कि आँसुओं के साथ मैं अपना सारा प्रेम और गम भी वहाँ और हमेशा के लिए अलविदा कहकर लौट जाऊँगी। पर हुआ एकदम उल्टा। आँसुओं के जल से सिंचकर प्रेम की बेल तो और जयादा लहलहा उठी। अब देखिए न, मीरा का पद- 'अँसुवन जल सींच-सींच....'बचपन से पढ़ा था। पर हम सबकी ट्रेजेडी यही है कि स्कूली शिक्षा को जीवन में गुनते नहीं। शिक्षा एक तरफ, जीवन एक तरफ और इसीलिए ठोकर खाते हैं। यही हुआ। उसका दुखी और दयनीय चेहरा देखकर मेरे मन में प्रेम का ज्वार उमड़ने लगा। उसके आँसुओं ने प्रेम को इतना गीला और रपटीला बना दिया कि वापस मुड़ने को तैयार मेरा पैर, अपने-आपको स्वाहा करने के लिए आगे बढ़ गया।

वैसे ईमानदारी की बात तो यह है कि उसके दुख में मुझे अपने लिए काफी सम्भावनाएँ दिखने लगी थी। इसलिए मैं जब-तब उसके दुख को ताजा करने के प्रसंग छेड़ बैठती। यह क्या, आपकी आँखों में ऐसी हिकारत क्यों ? नहीं.....नहीं.....गलत मत समझिए, यह सही है कि स्थिति की नजाकत के कारण मेरे अब तक के सीधे-सरल प्रेम में थोड़ी-सी चालाकी का पुट आ गया था, पर विश्वास कीजिए, इस चालाकी से मैं उसे ठगना नहीं चाहती थी, सिर्फ उसे पाना चाहती थी। अपने प्रेमी को पाना तो कोई गुनाह नहीं है न ?

नायिका को यह गलतफ़हमी हो रही है कि शिन्दे दुखी है और वह उसका सहारा बन रही है। वह अपने को मज़बूत स्थिति में समझने का भ्रम पाल लेती है।

पर इतना सब करने के बावजूद मेरी आँखों में जब-तब सन्देह और आशंका के डोरे उभर आते। मेरी पकड़ में पहले जैसी मजबूती नहीं रह गयी, शिन्दे इस मैदान का पक्का खिलाड़ी

था। मेरे असमंजस और दुविधा को चट भाँप गया। केवल भाँप ही नहीं गया, वरन उसने यह भी महसूस कर लिया कि बीवी की उपस्थिति में हमारे प्रेम में आपातकालीन स्थिति पैदा हो गयी है। अब यदि इसे बचाकर रखना है, तो प्रेम करने के तरीके में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना होगा। बिना उसके मामला चलनेवाला नजर नहीं आ रहा था। रेस्तराँ और बाग-बगीचों के बीच तो यह परिवर्तन आ नहीं सकता था, इसलिए बड़ी शिद्दत के साथ एक कमरे की तलब महसूस होने लगी। वैसे पहले भी कई बार वह इस अपनी तरह की इच्छा और जरूरत का इजहार कर चुका था, पर मैंने हमेशा दो-टूक जवाब पकड़ा दिया। आप विश्वास करें या न करें, पर निश्चय ही मैं पहले बड़े संस्कारों वाली लड़की थी। हर तरह की मर्यादा में मेरा पूरा विश्वास था। उस तरह के आमन्त्रण को मैं स्वीकार कर ही नहीं सकती थी। पर स्थिति ने मुझे हिसाबी-किताबी बना दिया था। मन ही मन मैंने जोड़-बाकी लगाकर देख लिया कि यदि पूरी तरह पाना है तो अपने को पूरी तरह देना भी पड़ेगा। रिस्क तो था ही, पर आप ही सोचिए, बिना रिस्क के आज कुछ मिलता भी तो नहीं।

तीन-चार कमरा-मुलाकातों में ही मैंने समझ लिया कि इन मुलाकातों के कारण उसके भीतर किसी तरह का अपराध-बोध, या कुछ गलत करने का भाव लेशमात्र भी नहीं है। वह काफी तृप्त और छका हुआ लगता था। मुझे समझते देर नहीं लगी कि शरीर के स्तर पर भी मैंने अपने को उसके लिए अनिवार्य बना लिया है। मुझे पक्का विश्वास हो गया कि मेरा यह समर्पण तुरुप के इक्के की तरह कारगर सिद्ध होगा और बाजी मेरे हाथ।

निश्चय ही इन मुलाकातों ने मेरे प्रेम को बड़ी मजबूत बैसाखियाँ थमा दीं और मेरे लड़खड़ाते कदम फिर जम गये।

वह मेरे साथ भविष्य की योजनाएँ बनाता, पर उन्हें अमल में लायें, तब तक के लिए एक मौन समझौता हम लोगों के बीच हो गया। अपना शरीर, अपनी भावनाएँ उसने मेरे जिम्मे कर दीं और घर, बच्चा, बूढ़ा बाप और सारी पारिवारिक खिचखिच बीवी के जिम्मे। इस विभाजन से मैं कुछ समय के लिए परम प्रसन्न। यों भी इस उम्र में आदमी को सबसे ज्यादा भरोसा अपने शरीर पर ही होता है। शरीर पा लिया, समझो दुनिया-जहान हथिया लिया। ऊपर से मुझे वह कभी बातों से, तो कभी कविताओं से समझाता रहता कि मन और शरीर की पवित्र भूमि पर ही असली प्रेम पनपता है। घर की चहारदीवारी के बीच निरन्तर होने वाली खिचखिच में तो वह मरता ही है। मैं समझती रहती और अपने को बहुत पुख्ता जमीन पर महसूस करती। वह बातें ही ऐसी करता कि सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ता। मुझे पूरा विश्वास था कि एक दिन वह खूँटे से उखड़कर मेरी गिरफ्त में आ जायेगा।

बीवी की याद और बात से ही शिन्दे अपना चेहरा एकदम मायूस बना लेता और बिना कहे ही मेरे दिमाग में यह बिठाने की कोशिश करता कि बीवी बनते ही औरत बहुत उबाऊ और त्रासदायक बन जाती है.......कि रिश्तों में बँधते ही प्रेम नीरस और बेजान हो जाता है.........कि

सच्चे प्रेमियों को तो हमेशा मुक्त ही रहना चाहिए। मैं इन सब बातों को सुनती-समझती तो सही, पर गले नहीं उतार पाती, क्योंकि बीवी बनने की ललक जब-तब मेरे भीतर जोर मारती रहती थी। सच बात है, मुझे तो घर भी चाहिए था, पति भी और बच्चे भी। पर उसे तो जैसे बीवी नाम से ही चिढ़ हो गयी थी। कभी-कभी तो वह अपनी बीवी के कर्कश स्वभाव और तुनक-मिजाजी की बात करते-करते रो तक पड़ता। तब मैं लपककर उसे बाँहों में भरती, अपने होंठों से उसके आँसू पोंछती और उसे हौसला बँधाती कि जल्दी ही हम कुछ ऐसा करेंगे कि वह इस दुख से मुक्त हो.......कि मैं उसे एक सही, सुखद जिन्दगी दूँगी। यह आश्वासन उसके लिए कम, मेरे लिए ज्यादा होता था।

दिन सरकते जा रहे थे और अपने प्रेम करने के तरीके में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के बावजूद स्थति जहाँ-की-तहाँ थी, यानी कि मैं अपने हॉस्टल के कमरे में बन्द, शिन्दे अपनी बीवी की मुट्ठी में। साल-भर पहले का जागा आत्मविश्वास फिर डगमगाने लगा और मुझे लगा कि अब कोई धाँसू कार्यक्रम अपनाना पड़ेगा। मैंने सोचा कि उसकी बीवी को हमारी प्रेम-प्रसंग की जानकारी तो अवश्य होगी.....वह काफी दुखी भी होगी....क्यों न मैं जब-तब वहाँ उपस्थित होकर उसके त्रास को इतना बढ़ा दूँ कि वह खुद ही इस अपमानजनक स्थिति को नकार कर अलग हो जाये। रकीब को सामने देखकर अच्छों-अच्छों के हौसले पस्त हो जाते हैं, फिर अपमान और उपेक्षा की आग में झुलसी इस औरत का हौसला ही क्या होगा ! और यही सोचकर आखिर मैं एक दिन शिन्दे के घर जा धमकी।

एक सुहागिन औरत की सारी नियामतों यानी कि बूढ़े ससुर के वरदहस्त की छत्र-छाया और बच्चे के पोतड़ों की बन्दनवार के बीच, दूधों नहाई, पूतों फली भाव से वह कुर्सी पर विराजमान थी। मुझे देखकर उसके चेहरे पर किसी तरह का कोई विकार नहीं आया। बस, सहजता में लिपटा एक प्रश्नवाचक उभरा और 'हरखू' इन्हें बिठाओं और साहब से बोलो, कोई मिलने आया है' के साथ बिला गया । विकार तो मुझे देखकर शिन्दे के चेहरे पर आया, जिसे उसने थोड़ी-सी कोशिश करके अफसरी नकाब के नीचे ढक लिया। दफ्तरी भाषा में दफ्तरी बातें करके उसने मुझे चलता किया। पर बाहर निकलते समय हाथ दबाकर लाड़ में लिपटी हल्की-सी फटकार के साथ शाम को कमरे पर आने का निमन्त्रण भी दे दिया।

मैं उसकी बीवी को त्रस्त करने गयी थी, पर खुद त्रस्त और पस्त होकर लौटी। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि यह औरत है या मांस का लौंदा ? इसका आदमी तीन साल से एक दूसरी लड़की के साथ मस्ती मार रहा है और इसे न कोई तकलीफ न कष्ट। मैं इसकी जगह होऊँ, तो शायद एक दिन भी इस तरह की अपमानजनक स्थिति को बर्दाश्त न करूँ। इसके शरीर पर चमड़ी लिपटी है, या गेंडे की खाल ? यह तो मुझे बहुत बाद में अपने अनुभव ने सिखाया कि अधिकतर शादी-शुदा औरतें ऐसी होती हैं, जिन्हें अपने घर की दीवारों से बेशुमार लगाव होता है। इतना ज्यादा कि धीरे-धीरे उन दीवारों को ही अपने शरीर के चारों ओर लपेट लेती हैं। फिर

मान-अपमान के सारे हमले उनसे टकराकर बाहर ही ढेर हो जाते हैं और वे उनसे बेअसर सती-साध्वी-सी भीतर सुरक्षित बैठी रहती हैं।

शाम को शिन्दे मुझ पर एकदम बरस पड़ा कि मैंने उसके घर जाने की मूखर्ता क्यों की ? कितना चौकस रहना पड़ता है उसे हर समय, जिससे उसकी बीवी को इस प्रसंग की हवा भी न लग सके। वरना तो वह शूर्पनखा की तरह ऑफिस, परिवार और सारे शहर में हड़बौंग मचाकर रख देगी।

शिन्दे बड़ी एहतियात से अपनी और मेरी जिन्दगी का नक्शा बदलने की जो योजनाएँ बना रहा है......सब बीच में ही ध्वस्त हो जायेंगी। और उसने मुझे सचमुच ही जल्दबाजी करने की अपनी मूर्खता पर शर्मिन्दा कर दिया।

मैं जब-जब बहुत अधीर होती, वह समझाता कि सहजीवन का मधुरतम पक्ष तो हम भोग ही रहे हैं, मैं क्यों बेकार में शादी-ब्याह और घर में जकड़कर इस मधुर सम्बन्ध का गला घोंटना चाहती हूँ। और इसी चक्कर में वह मधु उँड़ेलती हुई तीन-चार फड़कती कविताएँ मेरे नाम ठोंक देता। मीठी-मीठी पिप्पयों के बीच बड़ी ऊँची-ऊँची बातें मेरे जहन में बिठा देता। कुछ समय के लिए मुझे लगने लगता कि मैं आम औरत से कुछ अलग, कुछ विशिष्ट, कुछ ऊँची हूँ। मेरे कन्धों पर स्त्री-पुरूष के सम्बन्धों को एक नयी दिशा देने का दायित्व है। अगली पीढ़ी अधिक स्वस्थ, अधिक मुक्त जिन्दगी जी सके, इसके लिए हमें पहल करनी होगी, एक उदाहरण रखना होगा- चाहे उसके लिए हमें खाद ही क्यों न बनना पड़े। पर अपने कमरे की दीवारों के बीच बन्द होते ही ये आसमानी ऊँचाइयाँ छू-मन्तर हो जाती और मेरे भीतर बैठी आम औरत टसुए बहाने लगती।

अभ्यास प्रश्न

7. शिन्दे ने अपने विवाह की बात खुल जाने पर कथानायिका से क्या कहा ?

शिन्दे तो ये बातें झाड़कर मजे से अपनी बीवी का बगलगीर हो जाता और मैं असली अर्थों में खाद बनी अपने कमरे में सड़ती रहती। थोड़े ही दिनों में प्रेम की कविताओं और महज लफ्फाजी से लिपटी इन ऊँची-ऊँची बातों से मेरा मन बुरी तरह ऊब गया और मैं चाहने लगी कि अब कुछ हो। साफ शब्दों में कहूँ, तो मैं चाहने लगी कि वह बीवी को छोड़े।

पर उसने बीवी को तो नहीं छोड़ा, हाँ, उसके शहर छोड़ने की स्थिति जरूर आ गयी। उसका तबादला हो गया। मैं एक बार फिर डगमगा गयी। मुझे लगा कि बस, अब यह मेरी जिन्दगी से निकला। रो-रोकर मेरा बुरा हाल था, पर फिर उसने मुझे हाथों-हाथ झेल लिया। एक नयी योजना से मेरे आँसू पोंछ दिये। तय हुआ कि नयी जगह अभी वह अकेला ही जायेगा और उसके जाने के तीन-चार दिन बाद ही मेडिकल लीव लेकर मैं उसके पास पहुँच जाऊँगी। उसने

मुझे बताया कि उसने यह तबादला करवाया ही इसलिए है कि शहरी तबादला उसकी जिन्दगी के तबादले की भूमिका बन जाये। यह तो मुझे बाद में मालूम पड़ा कि शिन्दे ने तबादला इसलिए करवाया था कि हमारे सम्बन्धों की सुरसुराहट उसकी बीवी के कानों तक पहुँचने लगी थी। बात पूरी तरह खुले, उसके पहले ही वह शहर छोड़ देना चाहता था। पर मैं तो यह समझकर कि केवल मेरी खातिर शिन्दे ने बड़े शहर की बड़ी सम्भावनाओं को छोड़ छोटी जगह चुनी है, एकदम निहाल हो गयी और उसकी बातों के जादू में बँधी-बँधी एक सप्ताह बाद ही उसके पास पहुँच गयी।

आपको बहुत गलत लग रहा है न ? लगना ही चाहिए। अब तो मुझे भी लगता है। पर उस समय तो बस, शिन्दे में ही मेरे प्राण बसते थे.....लगता था, उसके बिना जी नहीं सकूँगी। गलत-सही की समझ ही कहाँ रह गयी थी ! मैं उसे पाना चाहती थी और वह मुझे खोना नहीं चाहता था।

उसके साथ होटल में गुजारे वे दिन! मैं तो भूल ही गयी कि हम दोनों के बीच कोई तीसरा भी है। तबीयत एकदम लहलहा उठी। इस बार उसने बाकायदा योजना बनायी की पत्नी को अब यहाँ न बुलाकर उसे पिता के घर भेज देगा और धीरे-धीरे उसे कानूनी कार्रवाई करने के लिए राजी कर लेगा....यदि नहीं हुई, तो मजबूर करेगा।

पंखों पर सवार होकर ही मैं लौटी थी। आँखों में उसने ढेर सारे सपने आँज दिये थे और उठते-बैठते मुझे अपना स्वीट होम ही दिखायी देता। मैंने उसे एक फड़कता हुआ प्रेम-पत्र लिखा। बातों का तो वह बादशाह था ही, पत्र लिखने में भी उसे कमाल हिसाल था। शरीरों में जो दूरी आ गयी थी, उसे वह पत्रों की भाषा से पाटता रहता। पत्रों में मुझे वह 'दिव्य-प्रेम' का दर्शन समझाता। मेरे जन्म-दिन पर अपने इसी दिव्य–प्रेम में डुबोकर उसने एक खूबसूरत-सा तोहफा मेरे लिए भेजा। कभी वह चाँदनी रात के गीत लिखकर भेजता, तो कभी साथ बिताये मधुर क्षणों की याद को ताजा करनेवाली कविताएँ।

लेकिन प्रेम बरसाते उसके पत्रों में मैं हमेशा यह ढूँढने का प्रयास करती कि पत्नी को छोड़ने की दिशा में वह क्या कर रहा है ? मैंने पूछा, तो कभी कानूनी अड़चन और कभी बूढ़े पिता के सदमे के नीरस तर्कों को प्रेम के रस में घोलकर मुझ तक पहुँचा दिया। पर वह अच्छी तरह जानता था कि इन बातों से मुझे तसल्ली नहीं होगी, इसलिए तसल्ली देने के लिए वह खुद सशरीर आ पहुँचा। ऑफिस का काम निकालकर वह जब-तब आ ही जाया करता था। उसने आँखों में सचमुच के आँसू भरकर कहा कि मैं ही शिन्दे की प्राण हूँ, शिन्दे की प्रेरणा हूँ। घर-परिवार के अतिरिक्त शिन्दे का जो कुछ भी है-और वही तो असली शिन्दे है-वह उसने मुझे, पूरी तरह सौंप रखा है। और तुरन्त उसने अपनी बात का प्रमाण पेश कर दिया-मुझे समर्पित किया हुआ अपना नया कविता-संग्रह। हाथ से लिखा हुआ था- 'प्राण को'।

उसकी प्रेरणा और प्राण बनने का हश्र यह हुआ कि वह तो दिन दूना, रात-चौगुना फलता-फूलता रहा। धन-यश, सफलता, मान-सम्मान-सभी का मालिक और मैं भीतर-ही-भीतर झुलसकर काठ का कुन्दा हो गयी। सब ओर से मरी, मुरझायी, टूटी और पस्त मैं समझ गयी कि मैं बुरी तरह ठगी गयी हूँ!

अब आप सोचिए, दूसरों के द्वारा लिये गये हमारी जिन्दगी के निर्णय यदि गलत हो जाते हैं, तो दूसरों को कोस-कोसकर हम अपना आधा दुख तो हल्का कर सकते हैं। पर आजकल, 'अपने निर्णय खुद लेने' या कि 'अपने रास्ते खुद चुनने' का जो मर्ज बढ़ गया है, वह ऐसी स्थिति में बहुत भारी पड़ जाता है। अपने अनुभव से मैं तो यही कहूँगी कि अपने महत्वपूर्ण निर्णय आप दूसरों को ही लेने दीजिए। गोटी ठीक बैठ गयी, तो पौ-बारह; नहीं बैठी तो आधा दुख बॉटने के लिए जिम्मेदार लोग हैं ही। पर अब तो मैं आप लोगों को ही नसीहत दे सकती हूँ, मेरी अपनी जिन्दगी की तो फजीहत हो ही चुकी थी।

अभ्यास प्रश्न

8. कथानायिका को कब लगा कि शिन्दे ने उसे छला है।

धीरे-धीरे उम्र की बढ़ोत्तरी और ऑफिस और दुनियादारी की निरन्तर बढ़ती जिम्मेदारियों के बीच शिन्दे की रोमानी जरूरत घटती चली गयी। परिणाम यह हुआ कि हमारे बीच चलनेवाले पत्रों की संख्या कम और मजमून मौसम के सर्द-गर्म होने पर आकर टिक गया। और फिर एक दिन उसके पास से गृह-प्रवेश का निमन्त्रण-पत्र मिला। जाने का कोई तुक नहीं था, फिर भी मैं चली गयी; महज सारी स्थिति का जायजा लेने के लिए।

लम्बा-चौड़ा आधुनिक ढंग का बना हुआ मकान। लकदक फर्नीचर। बीवी निकलकर आयी, तो लगा, यह कोई दूसरी ही औरत है। शरीर पर चर्बी की तीन-चार परतें चढ़ी हुई परम तृप्ति का एक डकार भाव सारे चेहरे पर पुता हुआ। आठ साल का एक सुन्दर-सा बच्चा भी निकल कर आया। लगा, जैसे शिन्दे ने ही अपने को पूरी तरह उड़ेल दिया हो उसमें। हू-ब-हू शिन्दे।

और मेरा मन हो रहा था कि शिन्दे के दोनों कन्धे झकझोरकर पूछूँ 'राम धुन की तरह तुम मेरी हो, तुम मेरी हो' की रट लगानेवाले शिन्दे साहब, बताइए तो, आपकी जिन्दगी के इस सारे तामझाम में मैं कहाँ हँ.....मैं कितनी हूँ ?

पर पूछकर अब होना ही क्या था ? मैं लौट आयी, इस अहसास के साथ कि प्रेम के इस खेल में वह एक सधे हुए खिलाड़ी की तरह खेला और मैं निहायत अनाड़ी की तरह। आठ साल तक चलनेवाला यह प्रेम-प्रसंग महज एक खिलवाड़ था, जिसकी बाजी बड़ी होशियारी से शिन्दे

ने बाँटी। भ्रमजाल के कटते ही नजर साफ हुई, तो बाजी में बँटे हुए पत्तों का यह नक्शा रह-रहकर मेरी आँखों में उभरने लगा-

तुरुप का इक्का यानी घर........उसके पास

तुरुप का बादशाह यानी बच्चा....उसके पास

तुरुप की बेगम यानी बीवी और

प्रेम करने के लिए एक प्रेमिका.....उसके पास

तुरुप का गुलाम यानी नौकर-चाकर-

गाड़ी-बंगला...............उसके पास

लब्बो–लुबाब यह कि तुरुप के सारे पत्ते उसके पास और मुझे मिले उसके दिये हुए छक्के–पंजे, यानी टोटके की तरह पुड़िया में बँधे, दार्शनिक लफ्फाजी में लिपटे हवाई प्यार के चन्द जुमले। इन टटपूँजिया पत्तों के सहारे मैं ज्यादा-से ज्यादा इतना ही कर सकती थी कि जिन्दगी-भर उसकी पूँछ पकड़े रहती और उसे ही अपनी उपलब्धि समझ-समझकर सन्तोष करती। मन बहुत घबराता, तो उसी पूँछ से हवा करके उसके साथ बिताये मधुर-क्षणों पर जमी समय की धूल उड़ाकर कुछ समय के लिए अपना खालीपन भर लेती।

पर भला बताइए, इससे कहीं जिन्दगी चल सकती थी ? निहायत हवाई बातें पल्ले से बाँधे-बाँधे मैंने अपनी जिन्दगी को बरबादी के कगार पर ला पटका था। अब चाहती हूँ, ठेठ दुनियादारी की बातें अपनी हजार-हजार मासूम किशोरी बहिनोंल के पल्ले से बाँध दूँ, जिससे वे मेरी तरह भटकने से बच जायें।

- इस देश में प्रेम के बीज मन और शरीर की 'पवित्र भूमि' में नहीं, ठेठ घर-परिवार की उपजाऊ-भूमि में ही फलता-फूलता है।
- भूलकर भी शादीशुदा आदमी के प्रेम में मत पड़िए। 'दिव्य' और 'महान प्रेम' की खातिर बीवी-बच्चों को दाँव पर लगानेवाले प्रेमवीरों की यहाँ पैदावार ही नहीं होती। दो नावों पर पैर रखकर चलने वाले 'शूरवीर' जरूर सरेआम मिल जायेंगे।

हाँ, शादीशुदा औरतें चाहें, जो भले ही शादीशुदा आदमी से प्रेम कर लें। जब तक चाहा प्रेम किया, मन भर गया, तो लौटकर अपने खूँटे पर। न कोई डर, न घोटाला, जब प्रेम में लगा हो शादी का ताला !

अभ्यास प्रश्न

9. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

क) दिव्य' और 'महान प्रेम' की खातिर बीवी-बच्चों को दाँव पर लगानेवाले .... की यहाँ पैदावार ही नहीं होती। (शूरवीरों / प्रेमवीरों)

ख) न कोई डर, न घोटाला, जब प्रेम में लगा हो शादी का.........................। (ताला / जाला)

15.5 कहानी का सार

कथानायिका एक कामकाजी महिला है वह घर से दूर एक शहर में नौकरी करती है।। विवाह नहीं हुआ हैं। पारिवारिक स्थिति भी बहुत मजबूत नहीं है, इसलिये विवाह तय किये जाने की दिशा में कोई प्रयास भी नहीं किया जा रहा है। इसलिए जब ऑफिस में आकर्षक व्यक्तित्व और शायराना मिज़ाज़ के अधिकारी शिन्दे आते हैं, कथानायिका उनकी ओर आकर्षित हो जाती है। शिन्दे के व्यवहार से पूरी तरह प्रभावित नायिका उनके प्रेमजाल में फँस जाती है। जब उसे पता चलता है कि शिन्दे विवाहित है तब वह अपने को ठगा हुआ सा महसूस करती है। इस पर शिन्दे रोना रोता है कि पिता के कहने पर उसने मजबूरी में यह विवाह किया है और उसका पारिवारिक जीवन संतोषदायी नहीं है और यह भी कि वह सच्चा प्यार तो कथानायिका से ही करता है। यही नहीं वह तरह-तरह से कथानायिका को झाँसा भी देता रहता है कि मौका मिलते ही वह उससे विवाह कर लेगा। यही नहीं वह उसे यह भी समझाने की कोशिश भी करता है कि शादी के बंधन में क्या रखा है। सच्चा प्रेम तो सहजीवन में ही है। वह अपनी शायरी का भी बख़ूबी इस्तेमाल करता है। एक बार वह अपना काव्यसंग्रह भी उसे समर्पित करता है जिसमें लिखा होता है मेरे प्राण को। इन सब बातों से वह फूली नहीं समाई रहती। शिन्दे की पत्नी को देखने और उससे मिलने के बाद असुरक्षा की भावना के कारण शिन्दे को पाने के लिए वह समर्पण भी करती है और शिन्दे पर विवाह के लिए दबाव भी बनाती है। लेकिन कोई सकारात्मक परिणाम नहीं निकलता। शिन्दे की बदली दूसरे शहर में हो जाती है। प्रेम में डूबी हुई कथानायिका शिन्दे के बुलाने पर वहाँ भी चली जाती है। आगे भी शिन्दे प्रेमपत्रों के माध्यम से इस सम्बंध में बाँधे रखता है। लेकिन धीरे धीरे इसमें शिथिलता आती जाती है। पत्र औपचारिक होते जाते हैं और मुलाकातें बन्द। शिन्दे के गृहप्रवेश में उसके पुत्र, पत्नी, घर और ठाठदार घर देखकर कथानायिका को अपनी वास्तविक स्थिति का भान होता है। उसे अहसास हो जाता हे कि आठ साल तक चलने वाला यह प्रेम-प्रसंग महज़ एक खिलवाड़ था। कहानी के आरम्भ में ही लेखिका ने संकेत दिया था कि बॉस के साथ इस तरह के प्रेम-प्रसंग आजकल कैरियर बनाने का एक साधन भी है, इन्हें गम्भीरता से लिया जाना भावुकता मात्र है। ऐसा ही इस प्रेम सम्बंध में

होता है। कहानी के अंत में कथानायिका अपनी आपबीती से ऐसी अन्य लड़कियों को ऐसे सम्बंधों से सावधान रहने का संदेश देती है और व्यावहारिकता सिखाते हुए कहती है कि -

हाँ, शादीशुदा औरतें चाहें, जो भले ही शादीशुदा आदमी से प्रेम कर लें। जब तक चाहा प्रेम किया, मन भर गया, तो लौटकर अपने खूँटे पर।

अभ्यास प्रश्न

10. निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइए।

क) शिन्दे ने मजबूरी में विवाह किया था। ( )

ख) बॉस के साथ इस तरह के प्रेम-प्रसंग आजकल कैरियर बनाने का एक साधन भी है, इन्हें गम्भीरता से लिया जाना भावुकता मात्र है। ( )

ग) कथानायिका अपनी आपबीती से ऐसी अन्य लड़कियों को ऐसे सम्बंधों से सावधान रहने का संदेश देती है ( )

15.6 कहानी की सप्रसंग व्याख्या

उद्धरण :1 माफ करिए, फिर बहक गयी! क्या करूँ चाहती हूँ इस प्रसंग की एक-एक बारीकी आपको समझा दूँ। वरना इस चक्कर में फँसने के बाद तो समझ एकदम भोंथरी हो जाती है, जैसे मेरी हो गयी थी। हॉं, तो मेरा और शिन्दे का प्रेम चल निकला। एक बात साफ कर दूँ, बहुत जरूरी है। आप कहीं यह न समझ लें कि मैं शिन्दे से इसलिए प्रेम करने लगी थी कि वह मेरा बॉस था और उसके प्रेम के प्रकाश में मुझे अपना कैरियर दिपदिपाता हुआ दिखायी देता। नहीं, प्रेम जैसी पवित्र चीज़ को मैं घटिया किस्म के स्वार्थों से अलग करके ही देखती थी। तभी तो पूरे आठ साल तक शिन्दे के प्रेम की अखण्ड जोत जलाये अपने को होम करती रही।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ 'स्त्री सुबोधिनी' कहानी से ली गई हैं। इस कहानी की लेखिका श्रीमती 'मन्नू भण्डारी' हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत अंश में कथानायिका अपने प्रेम का प्रारम्भिक अनुभव बताते हुए उसका विश्लेषण भी कर रही है।

व्याख्या : लेखिका पाठकों को सम्बोधित करते हुए कहती है- माफ करिए फिर बहक गई लेकिन वह किसी ग़लती के लिए माफ़ी नहीं माँग रही है वरन् बातचीत की शैली में अपने भाव और विचार प्रस्तुत कर रही है। लेखिका कहती है वह अपने प्रेम-प्रसंग की छोटी से छोटी बात वह इसलिए समझाना चाहती है क्योकि जो इसमें पड़ जाता है उसकी समझने की शक्ति कुन्द हो जाती है, जेसा कि ख़ुद लेखिका के साथ हुआ। वह अपने प्रेम की शुरूआत की बात बताते हुए यह भी स्पष्ट करती है कि यह न समझा जाये कि वह शिन्दे से इसलिए प्रेम करने लगी थी कि शिन्दे उसका बॉस था और उससे प्रेम करने पर कथानायिका को अपने कैरियर में लाभ पहुँचेगा। वह कहती हैं कि वह प्रेम को उदात्त, पवित्र और नि:स्वार्थ मानती थी। वह शिन्दे से सच्चा प्रेम कर रही थी। अपने प्रेम के इसी सच्चे भाव के कारण वह पूरे आठ वर्षों तक शिन्दे के प्रति एकनिष्ठ भाव से उसी प्रकार अपने को होम करती रही है जैसे साधक ईश्वर की उपासना करते हुए अपने को न्यौछावर कर देती है।

विशेष :

- लेखिका वर्तमान समय में आये बदलावों के कारण स्त्री-पुरुष सम्बधों में आये बदलावों की बात कर रही है। जहाँ प्रेम के चिरस्थाई भावों में बदलाव आ रहा हे। एकनिष्ठ प्रेम का स्थान अवसरवादिता ने ले लिया है।
- लेखिका इस बात की ओर संकेत करती है कि ऐसे प्रेम-प्रसंग बेहद वास्तविक लगते हैं, लेखिका ने सच्चा और एकनिष्ठ प्यार किया।
- पत्रशैली में 'मैं' शैली का प्रयोग किया गया है, इससे कहानी में विश्वसनीयता का भाव आ गया है। इससे लगता है हम किसी के वास्तविक अनुभव जान रहे हैं।
- भाषा खड़ी बोली हिन्दी है। कैरियर, बॉस, बोर, सीनियर, कैरियर-ओरिएण्टेड आदि अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग मिलता है।
- भाषा सहज, सरल, सुबोध है। इसमें आम बोलचाल की मुहावरेदार भाषा का प्रयोग मिलता है- प्रेम की अखण्ड जोत जलाये अपने को होम करती रही में अखण्ड जोत जलाना और होम करना मुहावरों का प्रयोग है।
- प्रेम के प्रकाश में मुझे अपना कैरियर दिपदिपाता हुआ दिखायी देता। तभी तो पूरे आठ साल तक शिन्दे के प्रेम की अखण्ड जोत जलाये अपने को होम करती रही। आदि वाक्यों में लक्षणा शब्दशक्ति का प्रयोग है।

उद्धरण :2 मैं जब-जब बहुत अधीर होती, वह समझाता कि सहजीवन का मधुरतम पक्ष तो हम भोग ही रहे हैं, मैं क्यों बेकार में शादी-ब्याह और घर में जकड़कर इस मधुर सम्बन्ध का गला

घोंटना चाहती हूँ। और इसी चक्कर में वह मधु उँड़ेलती हुई तीन-चार फड़कती कविताएँ मेरे नाम ठोंक देता। मीठी-मीठी पिप्पयों के बीच बड़ी ऊँची-ऊँची बातें मेरे जहन में बिठा देता। कुछ समय के लिए मुझे लगने लगता कि मैं आम औरत से कुछ अलग, कुछ विशिष्ट, कुछ ऊँची हूँ। मेरे कन्धों पर स्त्री-पुरूष के सम्बन्धों को एक नयी दिशा देने का दायित्व है। अगली पीढ़ी अधिक स्वस्थ, अधिक मुक्त जिन्दगी जी सके, इसके लिए हमें पहल करनी होगी, एक उदाहरण रखना होगा- चाहे उसके लिए हमें खाद ही क्यों न बनना पड़े। पर अपने कमरे की दीवारों के बीच बन्द होते ही ये आसमानी ऊँचाइयॉ छू-मन्तर हो जाती और मेरे भीतर बैठी आम औरत टसुए बहाने लगती।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ श्रीमती 'मन्नू भण्डारी' द्वारा रचित कहानी 'स्त्री सुबोधिनी' से ली गई हैं।

प्रसंग : कथानायिका को यह बात पता चन जाने पर कि शिन्दे विवाहित है जब वह सवाल उठाती है तब शिन्दे पहले तो उसे अपनी पत्नी को तलाक़ देकर विवाह करने का आश्वासन देता है जब वह अपनी स्थिति सुरक्षित करने की इच्छा से विवाह के लिए दबाव बलाती है, तब शिन्दे उसे सहजीवन का पाठ पढ़ाने लगता है।

व्याख्या कथानायिका कहती है कि जब भी वह अपनी स्थिति को लेकर परेशान होती शिन्दे उसे समझाने लगता कि साथ साथ रहने का सुख तो वह भोग ही रहे हैं। शिन्दे उसे यह समझाता है कि वह जीवन को सबसे सुन्दर ढंग से जी रहे हैं। वह विवाह बंधन में बँधकर इसके सुन्दर रूप को खो देगी। विवाह करके क्या हासिल होना है, विवाह करने के बाद तो घर के बंधनों में बँधना होगा, जिससे इस रिश्ते की मिठास खत्म हो जाएगी । इसके साथ ही वह ही वह माधुर्य में लिपटी कवितायें नायिका के नाम पर सुना देता और अपने हावभावों से प्रेम प्रदर्शित करते हुए सहजीवन के सम्बंध में कुछ इस तरह की बातें करता कि नायिका को लगने लगता कि वह आम महिलाओं से अलग है और स्त्रीपुरुष सम्बंधों को नई भूमिका देने में उसका विशिष्ट योगदान है। उसे लगने लगता कि वह एक मिसाल बनेगी, नई पीढ़ी की मार्गदर्शी बनेगी। लेखिका कहती है उसे लगता कि अगली पीढ़ी परम्परामुक्त और अधिक स्वस्थ्य जीवन जी सके इसके लिए उन्हें अपने को उदाहरण बनाना होगा। वह सोचती चाहे इसके लिए उन्हें अपने को पौधों में दी जाने वाली खाद ही क्यों न बनना पड़े । अपने इस रिश्ते के प्रति वह विशिष्टता बोध का अनुभव करती। लेकिन यह सब तब तक ही होता जब तक वह शिन्दे के साथ होती, जैसे ही वह अपने कमरे में अकेले होती वैसे ही वह इन हवाई बातों से नीचे उतर आती और सामान्य महिलाओं की भाँति स्वयं को असुरक्षित महसूस करती हुई अपनी दशा पर दुखी होने लगती।

विशेष :

- वर्तमान समय में विभिन्न कारणों से स्त्री-पुरुष सम्बंधों में बदलाव आ रहे हैं। महानगरीय सभ्यता में पति-पत्नी की तरह साथ रहते हुए भी विवाह न करने की परम्परा

चल पड़ी है जिसे सहजीवन का नाम दिया गया है। इसे विवाह व्यवस्था का विकल्प माना गया है, लेकिन शिन्दे विवाहित है और वह नायिका को केवल फुसला रहा है। इस अंश में एक ओर नयिका की स्थिति और उसके अकेलेपन को उजागर किया गया है साथ ही सहजीवन के विचार को भी गलत ठहराया गया है। सहजीवन की अवधारणा जहाँ रिश्तों को बदल देती है वहीं असुरक्षा की भावना को भी बढ़ाती है। इस सम्बन्ध में स्त्री ही छली जाती है। स्त्री पुरुष सम्बन्धों से इतर अन्य रिश्ते भी इसमें खो जाते हैं, जिससे व्यक्ति का अकेलापन बढ़ता है।

- **भाषा :** खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग है। भाषा परिमार्जित और भावानुकूल है। आसमानी ऊँचाइयाँ छू-मन्तर हो जाती, मधु उँड़ेलती हुई, टसुए बहाने लगती आदि वाक्य भाषा को आलंकारिक बना देते हैं।
- **शैली :** सम्बोधन शैली का प्रयोग हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है जेसे वह सीधे सीधे अपना अनुभव बता रही है। **चाहे उसके लिए हमें खाद ही क्यों न बनना पड़े** उक्ति में व्यञ्जना शब्दशक्ति है।

उद्धरण :3- लब्बो–लुबाब यह कि तुरुप के सारे पत्ते उसके पास और मुझे मिले उसके दिये हुए छक्के–पंजे, यानी टोटके की तरह पुड़िया में बँधे, दार्शनिक लफ्फाजी में लिपटे हवाई प्यार के चन्द जुमले। इन टटपूँजिया पत्तों के सहारे मैं ज्यादा से ज्यादा इतना ही कर सकती थी कि जिन्दगी-भर उसकी पूँछ पकड़े रहती और उसे ही अपनी उपलब्धि समझ-समझकर सन्तोष करती। मन बहुत घबराता, तो उसी पूँछ से हवा करके उसके साथ बिताये मधुर-क्षणों पर जमी समय की धूल उड़ाकर कुछ समय के लिए अपना खालीपन भर लेती।

संदर्भ : (कहानी और लेखक के नाम का उल्लेख)

प्रसंग : कथानायिका जब पाती है कि इस प्रेम प्रसंग में वह ठगी गई है

....
....

व्याख्या : (कथानायिका को हार का अहसास होना)।

....
....
....
....

विशेष : (शिन्दे और नायिका के संदर्भ में उक्त कथन का अभिप्राय)

....

....

भाषा

....

....

शैली

....

....

15.7 सारांश

इस इकाई में आपने कथा लेखिका 'मन्नू भण्डारी' के व्यक्तित्व और कृतित्व की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त की तथा उनकी कहानी 'स्त्री सुबोधिनी' का वाचन कर लिया है। आपने वाचन करते समय इसमें प्रयुक्त कठिन शब्दों के अर्थ जाने और महानगरीय जीवन की सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को जाना है। इस महानगरीय जीवनशैली से जीवन मूल्यों में आये बदलावों को भी समझा है। अब आप प्रस्तुत कहानी की भाषा-शैली और कथ्य से परिचित हो गये हैं। कहानी में वर्णित विविध घटनाओं के माध्यम से आप कहानी की मूल संवेदना से परिचित हुए हैं। अब आप कहानी के सार और मुख्य बिन्दुओं पर प्रकाश डाल सकते हैं। आपने इसमें कुछ विशेष अंशों की व्याख्या का पाठ किया है। इसके बाद आप स्वयं विशेष प्रसंगों का चयन कर उनकी व्याख्या कर सकते हैं।

15.8 शब्दावली

जीवन पद्धति : जीने का तरीका

जीवनमूल्य : सामाजिक दृष्टि से बनाये गये मानदण्ड

त्रासदी : दुखद अंत

औचित्य निर्धारण : किसी बात को सही ठहराना

लफ्फाजी : बातें बनाना

साँप काटा और बातों का मारा : जिस तरह साँप के काटने से व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है

		उसी प्रकार बातों के छलावे में आकर जीवन नष्ट हो जाता है। इसलिए सॉप के काटने और बातों के प्रहार को एक समान माना है।
शगल	:	मनबहलाव
सहजीवन	:	साथ-साथ रहना, यहाँ सहजीवन का अर्थ स्त्री-पुरुष का बिना विवाह के साथ-साथ रहना है।
भोंथरी	:	कुंद
अखण्ड जोत	:	निरंतर जलने वाली ज्योति
होम करना	:	हवन में आहुति डालना

15.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख) अपने अनुभव से अन्य किशोरियों को नसीहत देना चाहती है।

2. जिस तरह साँप के काटने से व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है उसी प्रकार बातों के छलावे में आकर जीवन नष्ट हो जाता है।

3. डॉक्टर - नर्स

प्रोफेसर - छात्रा

अफसर - स्टैनो-सेक्रेटरी

5. शिन्दे आयकर विभाग में उच्च अधिकारी हैं।बेहद खुशमिजाज ,खूबसूरत और आकर्षक हैं। बातचीत में शायराना अन्दाज रखते हैं और कविताएँ भी लिखते हैं। कथानायिका के बीच चलने वाले प्रेम प्रसंग में उन्मत्त प्रेमी के रूप में दिखाई देते है।

6. 1) कैरियर-ओरिएण्टेड प्रेम से अभिप्राय उन सम्बन्धों से है जो वर्तमान में दफ्तरी जीवन का हिस्सा बनते जा रहे हैं, अधिकारी अपनी अधीनस्थ महिला कर्मियों के साथ सम्बन्ध बना लेते हैं। महिलाएँ भी इन सम्बन्धों को अपने कैरियर के लिए स्वीकार कर लेती हैं। लेखिका अपने प्रेम को इससे अलग वास्तविक भावनाओं से जुड़ा बताती है।

2) कथानायिका मीराबाई के प्रेम का उदाहरण देती है। मीराबाई का प्रेम पूर्ण समर्पण और नि:स्वार्थ भावना का अप्रतिम उदाहरण है। इसीलिए कथानायिका का सम्बोधन उन महिलाओं के लिए है प्रेम को इसी दृष्टि से देखती हैं।

7. शिन्दे ने अपने विवाह की बात खुल जाने पर कथानायिका को बाँहों में भर लिया और धुआँधार रोने लगा......पिता के दबाव में आकर की हुई शादी मेरे जीवन की सबसे बड़ी ट्रेजेडी बन गयी....बीवी के रहते भी मैं कितना अकेला हूँ.......दो अजनबियों की तरह एक छत के नीचे रहने की यातना.......ऐसी-ऐसी बातों के न जाने कितने टुकड़े आँसुओं में भीग-भीगकर टपक रहे थे।पिता के दबाव में आकर की हुई शादी मेरे जीवन की सबसे बड़ी ट्रेजेडी बन गयी....बीवी के रहते भी मैं कितना अकेला हूँ.......।

8. जब बार-बार शादी के लिए आग्रह करने पर पत्नी को छोड़ने की दिशा में कभी कानूनी अड़चन और कभी बूढ़े पिता के सदमे के नीरस तर्क देता । पर इन बातों से तसल्ली नहीं होगी सोचकर, तसल्ली देने के लिए वह खुद ऑफिस का काम निकालकर वह जब-तब आ जाया करता था। कहता कि वही शिन्दे की प्राणहै, शिन्दे की प्रेरणा है। कथानायिका को उसके हीले-हवालों के बीच स्पष्ट लगने लगा कि शिन्दे धन-यश, सफलता, मान-सम्मान-सभी का मालिक बना हुआ है, वही है जो भीतर-ही-भीतर झुलस रही है। नायिका के ही शब्दों में - **सब ओर से मरी, मुरझायी, टूटी और पस्त मैं समझ गयी कि मैं बुरी तरह ठगी गयी हूँ!**

9. क) प्रेमवीरों

ख) ताला

10. क) (×)

ख) (√)

ग) (√)

15.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भण्डारी, मन्नू, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

15.11 उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. यादव, राजेन्द्र, हिन्दी कहानी स्वरूप और संवेदना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. वर्मा धनन्जय आज की हिन्दी कहानी, राजकमल प्रकाशन; दिल्ली
3. कमलेश्वर, नई कहानी की भूमिका, राजकमल प्रकाशन; दिल्ली
4. बटरोही, हिन्दी कहानी : संवाद का तीसरा आयाम,
5. मदान, इन्द्रनाथ : हिन्दी कहानी पहचान और परख, लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली

6. अवस्थी, देवीशंकर, नई कहानी संदर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन; दिल्ली

15.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्त्री सुबोधिनी' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

इकाई 16 स्त्री सुबोधिनी :पाठ एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 कथावस्तु
16.4 पात्र व चरित्र चित्रण
16.5 परिवेश
16.6 संरचना-शिल्प
16.7 मूल्यांकन
16.8 सारांश
16.9 शब्दावली
16.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री
16.12 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने हिन्दी की प्रख्यात लेखिका मन्नू. भण्डारी की सुप्रसिद्ध कहानी 'स्त्री सुबोधिनी' का वाचन किया। इसमें आपका स्त्री. सुबोधिनी की कथा तथा उसमें व्यक्तत भावों से परिचय हुआ। इससे आपको स्पष्ट हो गया होगा है कि कथा लेखिका इस कहानी के माध्यम से क्या कहना चाहती है और क्यों कहना चाहती है। कथाकार जो कहना चाहता है, उसके लिये ही वह कथा की रचना करता है। 'स्त्रीन सुबोधिनी' का वाचन करते हुए आपको लगा होगा इसके पात्र काल्पनिक हो सकते हैं, लेकिन उनकी परिस्थितियाँ और परिवेश वास्तकविक है। आपको यह भी लगा होगा कि इस तरह के चरित्र आपके आस-पास भी मौजूद हैं।

किसी भी कहानी का मूल्यांकन इस तथ्य से होता है कि वह अपनी बात को कितने प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त कर पाया है। इसका निर्धारण उसके प्रस्तुतीकरण से होता है। प्रस्तुतीकरण की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि कहानी के तत्वों की कसौटी पर वह कितनी खरी है। प्रस्तुात इकाई में 'स्त्री सुबोधिनी' का कहानी के तत्वों के आधार पर विश्ले षण किया जा रहा है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप 'स्त्री सुबोधिनी' कहानी का तात्विक विवेचन और मूल्यांकन करने में सक्षम होंगे।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :-

- कहानी की कथावस्तु का विश्लेषण करेंगे तथा कथावस्तु की विशेषतायें जान सकेंगे।
- कहानी के पात्रों का चरित्र-चित्रण से परिचित हो सकेंगे।
- कहानी के परिवेश और पृष्ठभूमि से परिचित हो सकेंगे।
- कहानी की भाषागत विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- कहानी की शिल्पगत विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- कहानी के प्रतिपाद्य और कहानीकार की दृष्टि का विश्लेषण कर सकेंगे।
- कहानी के शीर्षक की उपयुक्तता और सार्थकता सिद्ध करेंगे।

16.3 कथावस्तु

'स्त्री सुबोधिनी' सत्तर के दशक में लिखी गयी महानगरीय परिवेश की कहानी है। इस समय हिन्दी कहानी में नई कहानी और समकालीन कहानी का दौर चल रहा था। नई कहानी में कहानी के पारम्परिक तत्वों का स्थान नई प्रवृत्तियों ने ले लिया था। इस दौर में लिखी जाने वाली कहानियों में कहानी की मूल संवेदना का सर्वाधिक महत्व है।

कहानी का आरम्भह कथालेखिका के सम्बोधन से होता है जिसमें वह नौकरी पेशा महिलाओं से अपने अनुभव बाँट रही होती है। - "प्यारी बहनो, न तो मैं कोई विचारक हूँ, न प्रचारक, न लेखक, न शिक्षक। मैं तो एक बड़ी मामूली-सी पेशेवर घरेलू औरत हूँ, जो अपनी उम्र के बयालीस साल पार कर चुकी है। लेकिन इस उम्र तक आते-आते जिन स्थितियों से मैं गुजरी हूँ, जैसा अहम् अनुभव मैंने पाया......चाहती हूँ, बिना किसी लाग-लपेट के उसे आपके सामने रखूँ और आपको बहुत सारे खतरों से आगाह कर दूँ, मैं जानती हूँ कि अपने जीवन के निहायत

ही निजी अनुभवों को यों सरेआम कहकर मैं खुद अपने लिए बहुत बड़ा खतरा मोल लूँगी।" इसी सम्बोधन में कहानी फ्लैशबैक में चली जाती है । लेकिन कहानी पुरानी घटनाओं को कथा कहने के ढंग से कही जाती रही है। शुरूआत में लेखिका की अपनी चार –पाँच वर्ष की वैवाहिक जिन्दगी है और 42 वर्ष की उम्र बताती है।

यह सम्बोधन कहानी में उत्सुकता का भाव जगाने के साथ साथ कहानी के वास्तविक होने का आभास कराता है। आगे की कहानी का विकास पूर्वदीप्ति में जाकर होता है, जिसमें नायिका अविवाहित है और उसकी उम्र सत्ताइस वर्ष है। परिवार में बूढ़ी माँ और तीन छोटे भाई-बहिन हैं जो गाँव में रहते हैं और कथानायिका किसी महानगर के कामकाजी महिलाओं के एक होस्टल में। वह परिवार का आर्थिक सम्बबल भी है। वह स्थितियों और उम्र के उस दौर से गुजर रही थी, जब लड़कियों में प्रेम और विवाह के लिए आकर्षण का भाव रहता है।

अभ्यास प्रश्न

लगभग तीस शब्दों में उत्तर लिखिए

1. कथानायिका की पारिवारिक स्थिति कैसी है?

कथानायिका की पारिवारिक स्थिति बेहद सामान्य है। वह शहर में आकर नौकरी कर रही है। गाँव में रह रही माँ और छोटे भाई-बहनों की जिम्मेरदारी भी उस पर दिखाई देती है।

2. कथानायिका की पारिवारिक स्थिति कहानी को किस प्रकार प्रभावित करती है ?

अपनी पारिवारिक स्थिति के कारण ही वह अविवाहित है। शहर में आकर नौकरी कर रही है। परिवार का कोई बंधन नहीं है इसीलिए उसके और शिन्दे का प्रेमसम्बन्ध बनता है। यही कहानी का मूलाधार है।

कहानी का विकास : युवावस्था में विवाह के प्रति सहज आकर्षण का भाव होता है, जो कि एक सामाजिक विधान भी है, अपने जीवन की अनिश्चितता और असुरक्षा की भावना के वशीभूत होकर कथानायिका इस विषय पर गम्भीरता से सोचने लगती है। ऐसे ही समय में शिन्दे उसकी जिन्दगी में आ जाता है। शिन्दे उसका बॉस है, जो आकर्षक व्यक्तित्व का स्वामी है। कथानायिका उसके प्रति आकर्षित हो जाती है, दोनों का प्रेम प्रसंग शुरू हो जाता है। स्वयं लेखिका के शब्दों में -" तभी भिड़ गया शिन्दे। उसके तो संकेत भी बहुत साफ थे......निमन्त्रण भी बहुत खुला। लगा, किस्मत ने छप्पन पकवानों से भरी थाली मुझ भुक्कड़ के आगे परोसकर रख दी है। सो मैंने न उसका आगा-पीछा जानने की कोशिश की और न अपना आगा-पीछा सोचने की। बरबस, आँख मूँदी और प्रेम की डगर पर चल पड़ी।" कथानायिका अपने और शिन्दे के प्रसंगों की एक-एक बारीकी से पाठकों को अवगत कराती जाती है, जो कहानी के अंत की

पूर्वपीठिका भी है। इस दौरान कथानायिका यह मानकर चलती है कि शिन्दे का उसके प्रति प्रेम सच्ची है। शिन्दे के विवाह की बात खुल जाने पर भी शिन्दे द्वारा विवाह को मजबूरी बताना, विवाह का झाँसा देते रहना और प्रेम सम्बंधों को बनाये रखने के लिए उसे आदर्श प्रेम और सहजीवन का पाठ पढ़ाना आदि चलता रहता है।

अभ्यास प्रश्न

3. कथानायिका शिन्दे के प्रति क्यों आकर्षित हो जाती है?

क) शिन्दे उसका बॉस है। ख) वह आकर्षक व्यक्तित्व का स्वामी है।

ग) कथानायिका के मन में विवाह के प्रति सहज आकर्षण का भाव है।

4. लगा, किस्मत ने छप्पन पकवानों से भरी थाली मुझ भुक्कड़ के आगे परोसकर रख दी है। का आशय क्या है?

छप्पन पकवानों से भरी थाली एक मुहावरा है। इसका अर्थ है सभी स्वादों से भरा भोजन जिसमें छप्पन प्रकार के पकवान होते हैं। किसी भूखे व्यक्ति के लिए भरपेट भोजन ही पर्याप्त होता है, उस समय यदि उसे अतिविशिष्ट भोजन मिल जाए तो उसकी प्रसन्नता का कोई पारावार नहीं रहता ऐसा ही यहाँ पर कथानायिका महसूस करती है, जब शिन्दे उसकी जिन्दगी में आता है। शिन्दे, सुन्दर, युवा और उच्च अधिकारी है और रोमान्टिक स्वभाव का स्वामी है - कवि है अर्थात् प्रेम के लिए एक आदर्श पुरुष है।

कहानी की परिणति : शिन्दे द्वारा बार-बार के भुलावों के बाद नायिका को यह अहसास हो जाता है कि वह शिन्दे की जिन्दगी का एक हिस्सा मात्र है जबकि वह पूर्ण निष्ठा और समर्पण के साथ इस सम्बन्ध को बनाए हुए थी। उसका भ्रम तब पूरी तरह टूट जाता है, जब वह शिन्दे के गृह-प्रवेश के अवसर पर उसके घर जाती है और पाती है कि शिन्दे के पास जीवन की तमाम सुख सुविधाएँ तो हैं ही साथ ही सामाजिक रिश्तों के साथ भी वह एक भरा पूरा जीवन जी रहा है। कहानी का यह प्रसंग इस कहानी की परिणति है - " मैं लौट आयी, इस अहसास के साथ कि प्रेम के इस खेल में वह एक सधे हुए खिलाड़ी की तरह खेला और मैं निहायत अनाड़ी की तरह। आठ साल तक चलनेवाला यह प्रेम-प्रसंग महज एक खिलवाड़ था, जिसकी बाजी बड़ी होशियारी से शिन्दे ने बाँटी। भ्रमजाल के कटते ही नजर साफ हुई, तो बाजी में बँटे हुए पत्तों का यह नक्शा रह-रहकर मेरी आँखों में उभरने लगा-

तुरुप का इक्का यानी घर........उसके पास

तुरुप का बादशाह यानी बच्चा....उसके पास

तुरुप की बेगम यानी बीवी और

प्रेम करने के लिए एक प्रेमिका.....उसके पास

तुरुप का गुलाम यानी नौकर-चाकर-

गाड़ी-बंगला................उसके पास" नायिका एकदम छली हुई। लेकिन इसके बाद वह स्वयं को न तो दयनीय बनाते हुए शिन्दे की कृपापात्र बनी रहते हुए दूसरी औरत बनकर जीती है,न धुलधुलकर अकेली जीवन व्यतीत करती है। वह अपने और शिन्दे के भ्रमपूर्ण रिश्ते, के मोह से निकलकर सुखी वैवाहिक जीवन का चुनाव कर लेती है, जिसका संदर्भ कहानी के प्रारम्भ में है। इस प्रकार हम पाते हैं कि कथा की एक परिणति शिन्दे और नायिका की प्रेमकहानी की है जिसमें नायिका खुद को छला गया महसूस करती है। दूसरी यह कि उसका अपने इस रिश्ते से मोहभंग होता है, जिसके फलस्वरूप वह विवाह कर लेती है ।

....

अभ्यास प्रश्न

5.रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

क) आठ साल तक चलनेवाला यह प्रेम-प्रसंग महज एक....................... था. (भ्रमजाल/ खिलवाड़)

ख) कथा की एक परिणति शिन्दे और नायिका की......................... की है जिसमें नायिका खुद को छला गया महसूस करती है। (प्रेमकहानी/शादी)

16.4 पात्र व चरित्र चित्रण

विवेच्य कहानी में मुख्य रूप से दो ही पात्र हैं 'मैं' और शिन्दे.। हल्का सा जिक्र शिन्दे. की पत्नी और बच्चे का आता है।

'मैं ' कथानायिका : कथानायिका आयकर विभाग में काम करती है। कहानी के प्रारम्भ में कथानायिका अपनी उम्र बयालीस से ऊपर की बताती है। कहानी के घटनाक्रम की शुरूआत में उसकी उम्र सत्तामइस पार कर रही थी। लेखिका के ही शब्दों में- " मैं स्थितियों और उम्र के उस दौर से गुजर रही थी, लड़कियों में प्रेम के लिए एक विशेष प्रकार का लपलप भाव रहता है।" वह उम्र के उस दौर में है जहाँ प्रेम और स्थामयित्वम दोनों की चाह लड़कियों के मन में रहती है। औसत मध्यमवर्गीय परिवार की लड़की जिसकी नौकरी के पैसों से घर के खर्च चल रहे हैं, को यह उम्मीद नहीं है कि घर वाले उसके लिए सुयोग्य वर की खोज करेंगे। वह स्वाभाविक रूप से

शिन्दे जो उसका बॉस है, आकर्षित हो जाती है। इस प्रेम सम्बन्ध में वह बार बार छली जाती है। उसे पता चलता है शिन्दे शादीशुदा है तब उसे गुस्सा आता है- " बीवी-बच्चे के रहते मेरी ओर प्रेम का हाथ बढ़ाने का मतलब......." लेकिन शिन्दे' के प्यार में डूबी होने के कारण जब भी शिन्दे उसे बहलाता फुसलाता है वह उसकी बातों में आ जाती है। नायिका किशोरी नहीं है फिर भी इस सम्बन्ध में उसका आचरण किशोरियों जैसा है। बहुत बाद में , आठ वर्षों तक इस रिश्ते की भूलभुलइया में उलझाये रखने के बाद उसे भान होता है कि इस सम्बन्ध में कितना खोखलापन है।

प्रस्तु त कहानी में कथानायिका का चरित्र एक बड़े नौकरीपेशा वर्ग तथा सामाजिक मूल्यों में आ रहे बदलावों के कारण बदले जीवन मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है।

चरित्र विकसनशील है। प्रारम्भ में वह आम प्रेमी प्रेमिका का व्यवहार करती नजर आती है, शिन्दे के विवाह के बारे में जानने के बाद वह ख़ुद को विशिष्ट और समाज के लिए नई परिपाटी बनाने वाली मान लेती है, लेकिन अंत में वह इस मोहजाल से उबरकर अन्य महिलाओं को अपने अनुभव से चेताना चाहती है।

वह प्रारम्भ में इस बात का संकेत देती भी है कि इस तरह के प्रेम सम्बंध आज आम बात है जिसे गम्भीरता से लेना नादानी है। इसके बावजूद हर लड़की अपने को विशेष मानकर इस राह पर चल निकलती है, वही नायिका के साथ भी हुआ है।

नायिका का चरित्र विकसनशील है। वह परिस्थितियों और समय के साथ भावुकता को छोड़कर व्यावहारिकता को अपना लेती है।

शिन्दे : शिन्दे आयकर विभाग में उच्च अधिकारी हैं। शिन्दे का चरित्र कथानायिका के वर्णन और शब्दों के माध्यम से ही व्यक्त होता है। "बेहद खुशमिजाज और खूबसूरत। आँखों में ऐसी गहराई कि जिसे देख लें, वह गोते ही लगाता रह जाये। बड़ा शायराना अन्दाज था उनका और जल्दी ही मालूम पड़ गया कि वे कविताएँ भी लिखते हैं। पत्र-पत्रिकाओं में वे धड़ाधड़ छपती भी रहती हैं और इस क्षेत्र में उनका अच्छा खासा नाम है। " कथानायिका के अनुभव में उसका प्रेमी रूप उभरकर सामने आता है। ".............. मैंने जब भी उससे घर और घरवालों के बारे में पूछा, वह तीन-चार शेर दोहरा दिया करता था, जिनका शाब्दिक अर्थ होता था, 'मेरा न कोई घर है न दर, न कोई अपना न पराया। इस जमीन और आसमान के बीच मैं अकेला हूँ, बिलकुल अकेला', पर मेरे लिए इन शेरों का सीधा-सादा अर्थ था- हरी झण्डी, लाइन क्लीयर।" जब उसकी यह बात खुलती है कि वह शादीशुदा है तब वह विवाह को अपनी मजबूरी बताता है, और यह आश्वासन भी देता है कि वह कथानायिका को ही प्यार करता है, साथ ही भविष्य में साथ रहने की योजनायें भी बनाता रहता है। घर-गृहस्थी को उबाऊ और नीरस बताते हुए निरंतर अपनी बातों से कथानायिका को फुसलाता रहता है, सहजीवन का पाठ पढ़ाता रहता है। अपने

सम्बन्ध को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से कथानायिका पूर्ण समर्पण भी कर देती है, वह पाती है कि इससे शिन्दे तृप्त प्रतीत होता है लेकिन उसके व्यवहार में कोई अपराधबोध नहीं दिखाई देता। अन्तत: उसकी छवि एक ऐसे व्यक्ति के रूप में उभरती है जिसके पास जीवन के सारे सुख आराम और जीवन की सारी भौतिक उपलब्धियाँ मौजूद हैं, कथानायिका घर, बच्चे, बीबी, नौकर-चाकर के बीच एक अदद प्रेमिका मात्र है। शिन्दे और कथानायिका के बीच चलने वाला प्रेम उसके लिए एक खिलवाड़ मात्र था।

शिन्दे की पत्नी : शिन्दे की पत्नी का जिक्र शिन्दे के कथन में एक मजबूरी के रूप में आता है " बीवी की याद और बात से ही शिन्दे अपना चेहरा एकदम मायूस बना लेता और बिना कहे ही मेरे दिमाग में यह बिठाने की कोशिश करता कि बीवी बनते ही औरत बहुत उबाऊ और त्रासदायक बन जाती है....." इसी भुलावे में एक दिन नायिका उसके घर जा पहुँचती है और देखती है "एक सुहागिन औरत की सारी नियामतों यानी कि बूढ़े ससुर के वरदहस्त की छत्र-छाया और बच्चे के पोतड़ों की बन्दनवार के बीच, दूधों नहाई, पूतों फली भाव से वह कुर्सी पर विराजमान थी। मुझे देखकर उसके चेहरे पर किसी तरह का कोई विकार नहीं आया।" नायिका को अटपटा लगता है कि वह पति के अन्य स्त्री से सम्बन्धों के बावजूद इतनी आश्वस्त कैसे है, या उस पर अपने पति की प्रेमिका को देखकर कोई प्रतिक्रिया क्यों नहीं हो रही है। बाद में यह स्पष्ट होता है कि इस वर्ग की सभी स्त्रियाँ अपने पति के विवाहेतर सम्बन्धों को इसी तटस्थ भाव से देखती हैं -"अधिकतर शादी-शुदा औरतें ऐसी होती हैं, जिन्हें अपने घर की दीवारों से बेशुमार लगाव होता है। इतना ज्यादा कि धीरे-धीरे उन दीवारों को ही अपने शरीर के चारों ओर लपेट लेती हैं। फिर मान-अपमान के सारे हमले उनसे टकराकर बाहर ही ढेर हो जाते हैं और वे उनसे बेअसर सती-साध्वी-सी भीतर सुरक्षित बैठी रहती हैं।"

16.5 परिवेश

विवेच्य कहानी महानगरीय परिवेश की है। महानगरीय परिवेश की अपनी विशेषताएँ हैं। महानगरों में देश के विभिन्ने अंचलों से आए लोगों का निवास होता है, जो भिन्न-भिन्न परिवेश से आये होते हैं। इनमें से अधिकांश अपनी जीविका के लिए इन नगरों में निवास करते हैं। आपसी रिश्ते औपचारिक और निस्संग होते हैं। महानगरों में अपनी कोई पारम्प रिक संस्कृति भी नहीं होती है। प्रस्तुत कहानी में यही महानगरीय परिवेश उभरा है। कथानायिका की जिन्दगी सिर्फ अपने तक सिमटी हुई है। वह सिर्फ अपने लिए जवाबदेह है। विवाहेतर प्रेम-सम्बंध इस महानगरीय परिवेश में एक सामान्य सी बात है, जो कस्बों और छोटे शहरों से आए लोगों के लिए अवश्य नया अनुभव होता है। कथानायिका एक छोटे शहर से नौकरी करने के लिए इस महानगर में आई है। कथा मुख्य रूप से शिन्दे और कथानायिका के प्रेम-प्रसंग और और उससे जुड़ी घटनाओं के इर्द-गिर्द धूमती चलती है। आज के किसी भी सरकारी आफिस में इस तरह का माहौल आम बात है। कथा में स्पष्ट रूप से इसकी ओर संकेत किया गया है। अति आधुनिकता

का भाव दिखाई देता है। पारिवारिक पृष्ठेभूमि की दृष्टि से देखा जाए तो कथानायिका आम मध्यमवर्गीय परिवार का प्रतिनिधित्व करती है और शिन्दे उच्च मध्यमवर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। नायिका का एक अफसर पति पाने का मध्य वर्गीय सपना है जिसके कारण वह अपने बॉस शिन्दे के प्रेम में डूब जाती है। शिन्दे सरकारी अधिकारी है जिसके लिए कथानायिका के साथ प्रेम किसी प्रकार के आन्तरिक लगाव का कारण नहीं है। इन्हीं के बीच शिन्दे की पत्नी है जो अपने पति के घर में अपने लिए सामाजिक दृष्टि से सुरक्षित स्थान बनाए हुए है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक समाज में एक नई तरह का परिवेश विकसित हुआ है जिसमें न तो सम्बंधों की गहराई है और न ही दायित्व बोध की भावना। इसी के साथ-साथ कहानी में इस महानगरीय बोध से जन्मा सहजीवन का पाठ भी है जो पारम्परिक विवाह व्यवस्था का विकल्प है। सहजीवन की यह अवधारणा महानगरीय जीवन पद्धति से ही निकली है। लेकिन हमारा पारम्परिक समाज अभी इतना बदला नहीं है, विशेषकर मध्यनवर्गीय समाज। इसीलिए कथानायिका अंत में न केवल शिन्दे के मोह को छोड़कर और सहजीवन के क्रान्तिकारी विचार से मुक्तम होकर अन्यत्र विवाह कर लेती है, वरन् अपनी आपबीती सुनाकर अन्य स्त्रियों को भी सचेत करती है। प्रस्तुत कहानी का परिवेश मध्यववर्गीय जीवन उसके सपनों और मानसिकता को अभिव्यक्त करता है।

....

6. निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइए।

क) महानगरों में देश के विभिन्न. अंचलों से आए लोगों का निवास होता है ( )

ख) शिन्दे निम्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। ( )

ग) सहजीवन की अवधारणा पारम्परिक विवाह व्यवस्था का विकल्प है ( )

घ) महानगरों में आपसी रिश्ते औपचारिक और निस्संग होते हैं। ( )

16.6 संरचना–शिल्प

शैली : कहानी लेखन की विविध शैलियाँ होती हैं, उन्हीं में से एक पत्र लेखन शैली भी है। इस कहानी में लेखिका ने इसी पत्र लेखन शैली का प्रयोग किया है। लेकिन यह किसी एक को सम्बो धित न होकर सभी नौकरीपेशा महिलाओं को सम्बोधित किया गया है। इससे कहानी में रोचकता और औत्सुक का भाव आया है।

पत्रशैली में भी 'मैं' शैली का प्रयोग किया गया है, इससे कहानी में विश्वसनीयता का भाव आ गया है। इससे लगता है हम किसी के वास्तविक अनुभव जान रहे हैं। कहानी फ्लैशबेक अर्थात् पूर्वदीप्ति शैली में लिखी गई है। प्रारम्भ में कथानायिका अपना परिचय देती है, फिर कहानी की मूल संवेदना के साथ कहानी को पिछली घटनाओं में ले जाती है। इसी तरह का शिल्प आपने पूर्व में पढ़ी 'मोहन राकेश' की कहानी 'मलबे का मालिक' में भी देखा है। यद्यपि कहानी में प्रारम्भ से ही कथा के सूत्र और मूल उद्देश्य स्पष्टम हो जाता है, लेकिन इसके बावजूद कहानी में रोचकता बनी रहती है। साथ कहानी का उद्देश्य और भी स्पष्ट होता चला जाता है। कहानी का अंत आते-आते शिन्दे का छल और एक महिला का शोषण का भाव परिलक्षित होता है। लेखिका ने बड़ी बेबाकी से अपने और शिन्दे के अन्तकरंग सम्बंधों के बारे में बताया है, जिसमें निरंतर व्यंग्यात्मकता का पुट रहा है। यह व्यंगग्यातत्मककता जहाँ एक ओर विषय को बोझिल होने से बचाती है वहीं कथ्य को सुग्राह्य भी बनाती है। प्रेम सम्बंधों में धोखा खाने पर जो निराशा होती है वह कई बार बड़े दु:खद परिणाम देती है। लोग मानसिक संतुलन खो बैठते हैं, जीवन से विरत हो जाते हैं और कई बार आत्महत्या तक कर लेते हैं। लेकिन जिस तरह से कथालेखिका ने ऐसे सम्बंधों की सच्चाई बयान की है, उससे कम से कम यह तो सिद्ध हो जाता है कि ऐसे सम्बंधों को गम्भीरता से नहीं लिया जाना चाहिए, विशेषकर लड़कियों द्वारा। बड़ी सहजता से इस तथ्य को स्पष्ट करना निश्चित रूप से लेखिका की लेखन शैली के वैशिष्टया को प्रतिपादित करता है। सहजीवन की धारणा के भ्रम को तोड़ा गया है। स्त्री मुक्ति की पैरोकारी नहीं की गई है लेकिन स्त्री की स्थिति का सही-सही प्रस्तुतीकरण और विश्लेषण करते हुए उनके लिए नये युग के अनुरूप 'स्त्री सुबोधिनी" का पाठ रचा है। पूर्व में स्त्री सुबोधिनी में उनके पारिवारिक दायित्वों तथा व्यवहार की शिक्षा दी जाती थी। आज बदले हुए परिवेश में उन्हें नई तरह की शिक्षा की आवश्यकता है। अपनी विशिष्ट शैली में मन्नू जी ने यही शिक्षा स्त्री सुबोधिनी के माध्यम से दी है।

भाषा: मन्नू भण्डारी नई कहानी के दौर की कथालेखिका हैं। इस दौर की कहानियों में विविध स्तरों में परिवर्तन आया है। इस दौर की कहानियों में अपने पूर्ववर्ती कथाकारों की समन्वित परम्परा दिखाई देती है। इसमें प्रेमचन्द का यथार्थ और प्रसाद की काव्यात्मकता का सुन्दर समन्वय है। साथ ही आम आदमी और उसके परिवेश को भी उजागर करती है। इसलिए भाषा में आम आदमी की बोलचाल की भाषा के दर्शन होते हैं। इसमें व्यक्ति के वर्ग, उसकी सामाजिक-पारिवारिक स्थिति और परिवेश का प्रभाव होता है। मन्नू भण्डारी की कहानियाँ भी इन विशेषताओं से युक्त हैं। इसके बावजूद मन्नूजी का अपना एक विशिष्ट भाषा-शिल्प है। विवेच्य कहानी महानगरीय पृष्ठभूमि में लिखी गई है। इसकी कथानायिका मध्यवर्गीय परिवार की नौकरीपेशा महिला है। कहानी मैं शैली में लिखी गई है इसलिए भाषा में भी वही पुट है। मुहावरेदार और चटपटी भाषा का प्रयोग किया गया है जैसे - लपलप भाव, मनीआर्डर में तेल डालकर भेजना, उनकी बातों में विशेष अर्थ और आमन्त्रण की गन्ध आने लगी, तभी भिड़ गया

शिन्दे आदि आदि। इससे कहानी में रोचकता आई है, साथ ही कहानी की मूल संवेदना को भी बल मिला है।

7. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

क) मन्नू भण्डारी ....के दौर की कथालेखिका हैं। (नई कहानी/ नयेजमाने)

ख) विवेच्य कहानी .... पृष्ठभूमि में लिखी गई है। (महानगरीय / ग्रामीण)

16.7 शीर्षक

प्रस्तुत कहानी का शीर्षक 'स्त्री सुबोधिनी' कहानी के उपयुक्त है। स्त्रियों को शिक्षित करने की दृष्टि से जो लिखा गया है उसे ही स्त्री सुबोधिनी नाम दिया गया है। परम्परागत रूप में स्त्रियों को इस बात की शिक्षा दी जाती रही गई है कि वह किस प्रकार से अपना व अपने परिवार का ध्यान रखें । उन्हें लज्जाशील और सच्च रित्र बने रहने की सलाह भी दी जाती थी। वर्तमान समय में स्त्री और पुरुष की शिक्षा में कोई अन्तर नहीं रह गया है और सामाजिक-पारिवारिक भूमिका में भी बदलाव आ गया है। ऐसे में स्त्री को नई तरह की व्याबवहारिक शिक्षा की आवश्यबकता है, जो इस कहानी के माध्येम से मिलती है। इसलिए कहानी का शीर्षक स्त्री सुबोधिनी सर्वथा उपयुक्त है।

16.8 मूल्यांकन

इस इकाई में हमने 'मन्नू भण्डारी' की कहानी 'स्त्री सुबोधिनी' का कहानी के तत्वों के आधार पर विश्लेषण किया । अब आप जानते हैं कि किसी भी कहानी का मूल्यांकन किस तरह किया जा सकता है। सबसे पहले कहानी के प्रतिपाद्य पर विचार करें। प्रतिपाद्य का अर्थ कि लेखक कहानी के माध्यम से क्या कहना चाहता है यह इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि वह अपने कथ्य को कितने प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त' कर पाई है। इसका निर्धारण उसके प्रस्तुतीकरण से होता है। प्रस्तुतीकरण की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि कहानी के तत्वों की कसौटी पर वह कितनी खरी है। प्रस्तुत कहानी का कथ्य कथानायिका और शिन्दे के प्रेम प्रसंग पर आधारित है। लेखिका कहानी के माध्यम से इस तरह के सम्बंधों के खोखलेपन को उजागर करना चाहती है। यह प्रेम प्रसंग पूरे आठ वर्षों तक चला और कथानायिका यह समझती रही कि शिन्दे उससे बहुत प्यार करता है, उसके लिए अपनी पत्नी को छोड़ देगा। लेकिन ऐसा नहीं होता, वह शिन्दे की प्रेमिका मात्र बनी रहती है, यही नहीं इस सम्बंध की सुगबुगाहट शिन्दे की पत्नी को लग जाने के कारण वह अपना स्थानांतरण दूसरे शहर में करवा लेता है। नायिका वहाँ भी उससे मिलने जाती है। विवाहेतर सम्बंधों में स्त्री केवल छली जाती है, और उसे भी अपना जीवन

ऐसे सम्बंधों के लिए होम नहीं कर देना चाहिए, यह संदेश कहानी के माध्यम से स्पष्ट होकर उभरा है। कहानी के माध्यम से स्त्री चेतना का भाव भी झलकता है। कहानी पूर्णतया आधुनिकताबोध की कहानी है। इसमें परम्परागत जीवन मूल्यों का स्थान नये जीवनमूल्यों ने ले लिया है विवाहेतर सम्बंधों में अपराधबोध का भाव नहीं है। स्त्री की छवि भी केवल आँसू बहाने वाली नहीं है। इस प्रकार इस कहानी में लेखिका की दृष्टि आधुनिक एवं व्यवहारिक है।

16.8 सारांश

इस इकाई का अध्ययंयन करते समय आपने 'स्त्री सुबोधिनी' कहानी का तात्विक विवेचन कर लिया है। कहानी की कथावस्तु का विश्लेषण कर सकते हैं तथा कथावस्तु की विशेषतायें बता सकते हैं। शिन्दें और कथानायिका के चरित्र की विशेषताऍं पहचान सकते हैं तथा कहानी के पात्रों का चरित्र-चित्रण कर सकते हैं। महानगरीय परिवेश और उस पृष्ठभूमि में पनप रहे जीवन मूल्यों का अंकन कर सकते हैं। कहानी की भाषागत एवं शिल्पगत विशेषताओं की दृष्टि से 'स्त्री सुबोधिनी' सशक्त रचना है। शैली में पूर्वदीप्ति और 'मैं' शैली का प्रयोग, भाषा में यथार्थपरकता और बोलचाल की भाषा का प्रयोग इसकी विशेषताएँ हैं। आप इन विशेषताओं की कहानी के संदर्भ में व्याख्या कर सकते हैं। कहानी के प्रतिपाद्य और कहानीकार की दृष्टि का विश्लेषण कर सकते हैं। कहानी के शीर्षक की उपयुक्तता और सार्थकता का निर्णय कर सकते हैं।

16.9 शब्दावली

लब्बो–लुबाब : बातों का सार, बातों का निचोड़, बातों का बादशाह : जो बातें बनाना जानता हो। जो अपनी मनोहारी बातों से लोगों को फुसला ले।

तुरुप के पत्ते : ताश के खेल में तुरुप के पत्ते अन्य पत्तों से बड़े होते हैं ये तुरुप के पत्ते, अन्य पत्तों पर पड़ जाएं तो खेल की बाजी जिता देते हैं।

टटपूँजिया : दिवालिया, जिसके पास कुछ न हो

अफसरी : अंग्रेजी में अफसर अधिकारी को कहते है। यहाँ अफसरी से आशय अफसर के रोबदाब और उसके अधिकारपूर्ण व्यवहार से है।

पूर्वदीप्ति : पूर्वस्मृति

सम्बल : सहारा

रक्षाकवच : रक्षोपाय, आत्म रक्षा के लिए किया जाने वाला उपाय

परिलक्षित : प्रतिबिंबित, दिखाई देना

अन्तकरग : आत्मीय

सुग्राह्य : आसानी से ग्रहण करने योग्य

पैरोकारी : पक्षधरता

16.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.कथानायिका की पारिवारिक स्थिति बेहद सामान्य है।वह शहर में आकर नौकरी कर रही है। गाँव में रह रही माँ और छोटे भाई-बहनों की जिम्मेदारी भी उस पर है।

2.अपनी पारिवारिक स्थिति के कारण ही वह अविवाहित है। शहर में आकर नौकरी कर रही है। परिवार का कोई बंधन नहीं है इसीलिए उसके और शिन्देर का प्रेम सम्बन्ध बनता है। यही कहानी का मूलाधार है।

3. ग) कथानायिका के मन में विवाह के प्रति सहज आकर्षण का भाव है।

4. छप्पन पकवानों से भरी थाली एक मुहावरा है। इसका अर्थ है सभी स्वादों से भरा भोजन जिसमें छप्पन प्रकार के पकवान होते हैं। किसी भूखे व्यक्ति के लिए भरपेट भोजन ही पर्याप्त होता है, उस समय यदि उसे अतिविशिष्ट भोजन मिल जाए तो उसकी प्रसन्नता का कोई पारावार नहीं रहता ऐसा ही यहाँ पर कथानायिका महसूस करती है, जब शिन्दे उसकी जिन्दगी में आता है। शिन्दे, सुन्दर, युवा और उच्च अधिकारी है और रोमान्टिक स्वभाव का स्वामी है - कवि है अर्थात् प्रेम के लिए एक आदर्श पुरुष है।

5.रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

क) खिलवाड़

ख) प्रेमकहानी

6.निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइए।

क) (√)

ख) (×)

ग) (√)

घ) (√)

16.11 उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. वर्मा, धनंजय, आज की हिन्दी कहानी।

2. सिंह, संतबख्श : नई कहानी कथ्य और शिल्प , अभिनव प्रकाशन, इलाहाबाद

3. सिंह, नामवर, कहानी : नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली इलाहाबाद

4. सिंह, विजयमोहन, कथा समय, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1993

5. उपाध्याय, रमेश, जनवादी कहानी, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2000

6. अवस्थी, देवीशंकर, नई कहानी संदर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन; दिल्ली

7. कमलेश्वर, नई कहानी की भूमिका।

8. बटरोही, हिन्दी कहानी : संवाद का तीसरा आयाम।

9. रजवार, शीला, स्वा:तंत्र्योत्तार हिन्दी कथा साहित्य में नारी के बदलते संदर्भ, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली

10. मधुरेश,हिन्दी कहानी का विकास, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद

16.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्त्री सुबोधिनी कहानी की मूल संवेदना को व्यक्त, करते हुए इसके शीर्षक की सार्थकता पर विचार कीजिए।

2. सहजीवन से आप क्या समझते हैं? भारतीय परिवेश में यह कितना प्रभावी है? स्त्री सुबोधिनी कहानी के आधार पर स्पष्ट कीजिए।

3. स्त्री स्वातंत्र्य की दृष्टि से स्त्री सुबोधिनी कहानी की समीक्षा कीजिए।

4. कहानी को पढ़ते हुए शिन्दे और 'मैं' (कथानायिका) के चरित्र पर प्रकाश डालिए।

5. कथ्य और शिल्प के आधार पर स्त्री सुबोधिनी कहानी की विवेचना कीजिए।

इकाई 17 सुहागिनी (शैलेश मटियानी):पाठ एवं विवेचन

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 लेखक परिचय
17.4 कहानी का पाठ (वाचन)
17.5 कहानी का सार
17.6 कहानी की सप्रसंग व्याख्या
17.7 सारांश
17.8 शब्दावली
17.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
17.11 उपयोगी पाठ्यसामग्री
17.12 निबंधात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

पिछली इकाईयों में आपने जाना, कहानी साहित्य में समाज और लोक की छवि होती है, इसीलिये विविध कहानीकारों ने जीवन के विविध पक्षों को उद्घाटित करने का प्रयास किया है।

आप अच्छी तरह से जानते हैं कि जीवन विविध स्तरीय और विविध रूपों वाला होता है। आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में जीवन के सूक्ष्मतम स्वरूप को उद्घाटित किया गया है। हमारा समाज विभिन्न सामाजिक पद्धतियों और लोकपरम्पराओं के अनुसार चलता है। आप यह भी जानते हैं कि स्त्री-पुरुष एक दूसरे के पूरक माने जाते है। इसके बावज़ूद स्त्री की सामाजिक स्थिति पुरुष से हेय मानी जाती है। हमारे समाज में बहुत से रीति-रिवाज़ ऐसे हैं जो स्त्री की इसी हेय स्थिति को बढ़ावा देते हैं। प्रस्तुत कहानी में पद्मावती के माध्यम से स्त्री की इसी दशा को उजागर किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप सुहागिनी कहानी के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों और विसंगतियों का विश्लेषण करेंगे और इनसे समाज को मुक्त कराने में सहायक होंगे।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- शैलेश मटियानी रचनात्मक जीवन परिचय से परिचित हो सकेंगे।
- सुहागिनी कथा की विवेचना कर सकेंगे।
- इसमें व्यक्त भावों की व्याख्या कर सकेंगे।
- पात्रों के मनोविज्ञान को समझकर व्यवहारिक जीवन में उनके व्यवहार का औचित्य निर्धारण कर सकेंगे।
- अंधविश्वास और भ्रामक रूढ़ियों का विश्लेषण करने में सक्षम होंगे।

17.3 लेखक परिचय

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में आंचलिक कथाकार के रूप में एक विशिष्ट पहचान रखने वाले श्री शैलेश मटियानी का जन्म 14 अक्टूबर 1931 को बाड़ेछीना (अल्मोड़ा) में हुआ। **रमेश सिंह मटियानी शैलेश** की औपचारिक शिक्षा हाईस्कूल तक हुई। परिस्थितियाँ कुछ इस तरह की रहीं कि इन्हें अल्मोड़ा से बम्बई जाना पड़ा। वहाँ इन्होंने नौ-दस वर्ष तक एक चाँटघर में बैरा का कार्य किया,यही नहीं इन्हीं के कथनानुसार इन्होंने कसाई का काम भी किया।

मटियानीजी ने 100 से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। इनके 20 उपन्यास और लगभग इतने ही कहानी-संग्रह हैं। उन्होंने गद्य की अन्य विविध विधाओं पर भी लिखा है। इब्बू मलंग,

प्रेतमुक्ति, चौथी मुट्ठी इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। मुखसरोवर के हंस, आकाश कितना अनंत है बावन नदियों का संगम उल्लेखनीय उपन्यास हैं। इनकी कहानियों के अंग्रेजी,रूसी तथा सभी भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं।

आप स्वतंत्र रूप से लेखन का कार्य करते रहे हैं। आपने इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली अनियतकालीन पत्रिका 'जनपक्ष' तथा साहित्यिक पत्रिका 'विकल्प' के कुछ अंकों का सम्पादन भी किया है।

17.4 कहानी का पाठ (वाचन)

सुहागिनी

सुवा रे, ओ सुवा!
बनखण्डी रे सुवा!
हरियो तेरो गात,
पिंडलो तेरो ठूना-
बन खण्डी रे, सुवा! **विवाह के समय निमंत्रण की पंक्तियॉ**

काँसे की थाली में कमलावती बोज्यू रोली-अक्षत भिगो रही थीं और पद्मावती अपनी डबडबायी आँखों से देख रही थी कि उसकी ऑखों की पुतलियों में जो आत्मजल केवड़े के किश्तीनुमा पत्तों में अटकी ओस की बूंदों की तरह थरथरा रहा है, उसमें कमलावती बोज्यू का ही नहीं, आस-पास के सारे वातावरण का पूरा-पूरा प्रतिबिम्ब उभर रहा है-बनखणडी रे, सुवा ! हरियो तेरो गात..

कमलावती बोज्यू बार-बार कदलीपत्रों की पालकी में बैठे बरदेवता श्री रामचन्द्र को टुकुर-टुकुर देखती हैं और उनके आँसू , एकबारगी छलछलाकर काँसे की थाली में गिरते हैं और लगता है, रोली-अक्षत एकाकार हो जाते हैं ! ...और काँसे की थाली हौले से ऐसे छणछणा उठती है, जैसे बरसात की बूंदों से टीन की छत बजने लगती है-ओ सुवा, रे सुवा! बनखणडी रे सुवा! **पद्मावती के कलश विवाह की तैयारी चल रही है।**

ओ सुवा, रे सुवा!
बनखण्डी रे.....

पद्मावती ने एकाएक अपनी डबडबायी आँखों को सामने सुंयालघाटी की ओर उठा दिया-!हे राम, कभी-कभी बनखण्डी शुकों की-हरियाले देह, पियरायी चोंचोंवाली शुकों की-पूरी पाँत-की-पाँत आँखों की पुतलियों को ढॉपती चली जाती है ! (**कहानी की नायिका के मन:स्थिति का चित्रण है)**

मगर एकदम छलछल भी हुई आँखों के बावजूद आज पद्मावती को सारी सुंयालघाटी एकदम रोती-रोती ही लगी। बनखण्डी शुकों की बोज्यू दीठ बाँधती, पुतलियाँ ढाँपती नहीं दिखायी दी। पद्मावती को लगा कि अरे, उसके आस-पास तो उसकी शादी के शकुन-आखरों के शकुन चहचहा रहे हैं और हरियाये-पियराये बनखण्डी शुकों को न्योत रहे हैं-बनखण्डी रे....

और पाताल भुवनेश्वर की अछोर अन्तर्गुहाओं-जैसे उसके कान गूंजते ही चले जा रहे हैं, शकुन ऑखर के शकुनों की चहचहाती अनुगूँजों से, और बनखणडी शुकों की पाँत-की-पाँत उसकी आत्मा की अन्तर्गुहाओं की सुंयालघाटी में उड़ती ही चली जा रही है.....उड़ती ही चली जा रही है.....

बनखण्डी, रे सुवा!
हरियो तेरो गात
पिंङलो तेरो ठूना ..... (**कहानी की नायिका की मन:स्थिति का चित्रण है)**

कमलावती बोज्यू की आँखों में उसके प्रति संवेदना के आँसू हैं और वह उनके एकदम सामने ही बैठी हैं, सो उनकी पुतलियाँ छलछलाती हैं, तो आँसू काँसे की थाली की ओर निकास पा जाते हैं। मगर पद्मावती की व्यथा अपनी ही उस आत्मस्था पद्मावती के प्रति है, जो कुँवारेपन के पैंतालीस साल बिता चुकने के बाद दुलहन की तरह सँवरी, लजायी बैठी है, तो कदली-पत्रों की पालकी में जो बरदेवता श्री रामचन्द्र बैठे हुए है, उनकी ताम्रवर्ण देह दीपकों के उजाले में कुछ ऐसी चमक उठती है कि पद्मावती को लगता है, सारे दीपक उसकी अन्तर्गुहा में जल रहे हैं......शकूना देही, राजा रामचन्द्र, अजुध्यावासी.....(**पद्मावती की भाभी की व्यथा)**

अन्दर जो कुण्ठित कौमार्य को और ज्यादा बेधने वाले दीपक जल रहे हैं इस प्रौढ़ावस्था में सिर्फ परलोक में तारण के लिए दुलहन बनने की विवशता के, भाई को निवास नहीं मिल पा रहा, तो लगता है आत्मा की अन्तर परतों में काजल बैठा जा रहा है। ---हे राम, जिन सुहागिनों की गोद में छौने आते रहते हैं, वो कैसे छोटी-छोटी डिबियां में काजल समेटकर रखे रहती है घूटने पर बालक के सिर को हिलाती ‘हूँ-हूँ’ करती हुई अंगुली की पोर से काजल ऑजती है, तो बालक की आँखों की किनारियों में अंगुली के चक्र या शंख की छाप उतर आती है।

मगर ताँबे का कलश, ताँबे का श्री रामचन्द्र सुहागिनी बना सकता है, लेकिन.....लेकिन....

अन्दर दुख उमड़ पड़ रहा था, मगर फिर भी पद्मावती को शरम लग गयी कि छिच्छी, इतनी औरतों के सामने कितनी छिछोर बात सोचती हूँ मैं भी !

आत्मस्था पद्मावती के प्रति व्यथा के आँसू बाहर को निकास नहीं पाते हैं। कहीं अन्तर्गुहा में बालसंन्यासिनी की तरह अवसत्र बैठी पद्मावती क्षण-क्षण में अपना रूप बदलती

रहती है...और बेर-बेर पुतलियाँ रहट के खोखों की तरह, बाहर को घूमने के बावजूद, अन्दर की ओर छलछला जाती हैं और आँसू बूंद-बूंद अन्तर्गुहा में जलते दीपकों की लौ पर गिरते हैं-

बनखण्डी, रे सुवा!
ओ सुवा, रे सुवा!

शकुन आँखरों की गूँज सुनते ही पास-पड़ोस के विवाहों में पक्षी की तरह चहचहाती दौड़ती थी पद्मावती। वह उम्र बहुत पहले ही बीत चुकी हैं, मगर उस चहचहाट की मर्मवेधी अनुगूँज आज तक शेष है। रंग एकदम साँवला, आँखे एकदम मिचमिची और देह सूखी हुई। दिखने में पद्मावती

अपनी तरूणाई में भी कुछ नहीं थी मगर कण्ठ इतना सुरीला था कि सात-सात शकुन ऑखर गानेवाली बैठी हों, तो उसका सातवाँ सुर सबसे अलग ऐसा गूँजता था कि और गानेवालियों की आवाजें उनकी ईर्ष्या ओर कुण्ठा से और भी भद्दी लगने लगती थीं। **(पद्मावती का विवाह न हो पाने से कुण्ठित कौमार्य का चित्र)**

कमलावती बोज्यू तो तब भी यही कहती थीं कि 'लली, बहुत शकुन गाती हो तुम।......और इतनी मधुर मीठी आवाज में कि लगता है, तुम सिर्फ शकुन गाने के लिए ही जन्मी हो, सुनने के लिए नहीं!

पद्मावती तब भी जानती थी, कमलावती बोज्यू के मुँह से उनकी कितनी आंतरिक-व्यथा बोलती है। ब्राह्मण-कन्या तो पैसेवालों की भी बहुत परेशानियों के बाद ही ब्याही जाती है, वह तो एक दरिद्र परिवार की कन्या थी और कुरूपा। गोरे कपाल में तो काजल का टीका भी बहुत फबता है, मगर काले कपाल की रेखाएँ तो चन्दन के तिलक से भी उजली नहीं हो पाती हैं। सोने-चाँदी के आसन पर तो शालिग्राम भी पूजा जाता है, मगर दान-दहेज से रीती उस सूखे काठ-जैसी काया को कौन देगा अपने घर में बहू का आसन

गरीब पुरोहित के घर में जन्म लिया था पद्मावती ने। एक सूखे काठ-जैसी साँवली काया पायी थी, मगर आत्मा उस देह की कठबाड़ के पार कभी बन-खण्डों में उन्मुक्त चहकती, चहचहाती रहती थी और कभी तिरस्कृता-सी बिलखती रहती थी। कठबाड़-जैसी काया को सभी देखते थे, कठबाड़ के पार देखनेवाली आँखे बहुत दुर्लभ थीं। एक जोड़ी आँखें बड़े भाई बुद्धिबल्लभ पुरोहित की, एक जोड़ी कमलावती बोज्यू की। भाई-भाई की अन्तर्व्यथा से छलछलाती आँखों की ज्योति कठवाड़ के पार भी पहुँचती थी, मगर कभी-कभी कठबाड़ से ही टकराकर धुँधली पड़ जाती थी। अपनी गरीबी और बहन की कुँवारी काया के बोझ से दबे पुरोहित बुद्धिबल्लभ भी कभी-कभी बहुत खीझ उठते थे कि इस अभागिन के कारण तो मुझे भी नरक भोगना पड़ेगा ! जिस ब्राह्मण के घर में आज तक कुँवारी बैठी बहन राख के अन्दर के कोयले की तरह अपने दुखों में सुलगती रहे, उसका तारण तो चौंसठ तीरथों की परिक्रमा से भी

नहीं हो सकता! **(पद्मावती का विवाह न हो पाने के कारण भाई के मन में अपराधबोध और धर्मभीरूता का भाव प्रकट होता है।)**

....

अभ्यास प्रश्न

नोट : निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गए उत्तर से मिलाइये।

1. पद्मावती की भाभी (कमलावती बोज्यू) की आँखों से बहने वाले आँसुओं में कौन सा भाव है?

क.लज्जा
ख.क्रोध
ग.करुणा

2. जिस ब्राह्मण के घर में आज तक कुँवारी बैठी बहन राख के अन्दर के कोयले की तरह अपने दुखों में सुलगती रहे, उसका तारण तो चौंसठ तीरथों की परिक्रमा से भी नहीं हो सकता! पंक्ति में कौन सा भाव झलकता है?

क. सामाजिक परम्पराओं में निहित विवशता।
ख.शास्त्रीय विधानों का अनुपालन न कर पाने से जन्मा अपराधबोध।
ग.बहन के प्रति कर्तव्य न निबाह पाने का दर्द।

कमलावती बोज्यू अपने पॉच बच्चों की ओर देखती थीं, तो उन्हें भी पद्मावती खटकने लगती थी कि कहीं कभी कोई काना-रँडुवा ब्राह्मण मिल ही गया, तो कहीं बुद्धिबल्लभ घर की लटी-पटी घो-पोंछकर पद्मा के ही पीछे न लगा दें! **(निर्धनता के कारण ,अपने परिवार के भविष्य की चिन्ता का भाव है)**

मगर उन्होंने ही तो कहा था कि पद्मा शकुन-आँखर गाने के लिए पैदा हुई है, सुनने को नहीं! बरस-पर-बरस बीतते गए थे। तीस-पार पहुँचते-पहुँचते पद्मावती की आत्मा निराशा-कुण्ठा से बंजर होने लगी थी। मगर एक अनहोनी जैसी यह जरूर घटने लगी थी कि आत्मा के वीरान बनखण्डों की तरह अवसाद और कुण्ठा के घने कोहरे में डूबते ही-पैंतीस तक पहुँचते-पहुँचते-पद्मावती की सूखी-साँवली देह भरती चली गई और सैंतीस बरसों की उम्र काट चुकने के बाद पद्मावती को पुरूषदीठ अटकने का सुख तब मिला था, जब मोहल्ले के अपर स्कूल का हेडमास्टर गंगासिंह हँस पड़ा था कि 'बौराणाज्यू, पुराना गुड़ और ज्यादा गुणकारी होता है, ऐसा

सुना तो मैंने भी था, मगर आँखों से पहली बार देख रहा हूँ तब पद्मावती अपने भतीजों को स्कूल पहुँचाने जाती थी। गंगासिंह हेडमास्टर बड़ी आसक्ति के साथ-घूरता बातें करता है, इससे एक सार्थकता का बोध सुख अवश्य देता था, मगर आत्मा प्रताड़ित करने लगती थी कि कहीं तीन-तीन शादियों के होते भी एकदम कुँवारे छोकरों की तरह आँखें भुर-भुरानेवाला हेडमास्टर अपने अपर स्कूल की सरहद से बहुत आगे तक न बढ़ आये!.....सो एक दिन पद्मावती का हाथ पकड़ने की कोशिश की तो 'हट साले खसिया!' कहकर पद्मा ने अपना हाथ छुड़ा लिया था तबसे उसके मुँह से पुराने गुड़ के स्वाद में लिपटी हुई आवाज निकलनी बन्द हो गई थी। ऑखें भुरभुराकर 'बौराणज्यू' 'बौराणाज्यू' कहने का भेद हो गया था।**(अधेड़ उम्र तक अविवाहित रहने पर प्रथम बार किसी पुरुष के आकर्षण का केन्द्रबिन्दु न हो पाने की पीड़ा के बावजूद झिड़कना पद्मावती का विवाह न हो पाने से कुण्ठित कौमार्य का चित्रांकन है)**

पड़ोसवाले तो बहुत कान बचाते थे कि बेमौसम आयी हुई बाढ़ और ज्यादा खेत तोड़ती है, मगर ईश्वर साक्षी है कि देह भरने के बाद भी सिर्फ पुरूषों की आँखों में आसक्ति देखने-भर का सुख ही भोगा पद्मावती ने। बल्कि धीरे-धीरे इससे भी उसे एकदम घृणा और वितृष्णा हो गयी थी, क्योंकि उसे घूरने-छेड़ने वाले पुरूष बहुधा तीस-पैंतीस पार के ही होते थे। मगर पद्मावती की आत्मा में उसके शकुन गाने की उम्र ही छायी हुई थी। तीस-पार पहुँचने पर शकुन गाना छोड़ दिया था पद्मावती ने, मगर जब-जब पुरूष के प्यार के लिए मोह जागता था, ममता जागती थी, उम्र एकदम घटती चली जाती थी, जैसे धूप ज्यादा बढ़ने पर छाया छोटी होती चली जाती है। आत्मा में कल्पना पुरूष सूरज कमल-जैसा खिलता चला जाता है।

और अब पैंतालिसवें बरस में एक लज्जास्पद अनहोनी यह भी घट रही है कि खुद पद्मावती के कान ही शकुन-आँखर सुन रहे है! कदलीपत्रों की पालकी में वरदेवता श्री रामचन्द्र के रूप में ताँबे का कलश बैठा हुआ है। कमलावती बोज्यू के आँसू काँसे की थाली में बिखर रहे हैं और मरणासन्न भाई बुद्धिबल्लभ 'कन्यादान' की सामग्री ठीक कर रहे हैं।

पद्मावती तो हठ बाँध रही थी कि 'इस प्रौढ़ावस्था में यह गुड़ियों का जैसा खेल मैं नहीं रचा सकती!.....मगर जब खुद भाई ने आँसू गिरा दिये 'पद्मा, मेरा अन्त समय आ गया है। बहुतों की सद्गति करके उनका तारण मैंने किया है, मगर अब मुझे अपना ही तारण दुर्लभ हो रहा है। तेरा भाई-पिता जो-कुछ हूँ मैं ही अभागा दरिद्र ब्राह्मण हूँ, पद्मा! मैं अभागा अपने भाई का धर्म नहीं निभा सका, मगर तू तो कल्याणी कुललक्ष्मी है ! तू अपनी दया निभा दे। तुझे सुहागिन देखने से मेरा तारण हो जायेगा।.....लली, इतना मैं भी समझता ही हूँ कि ताँबे का कलश सुहाग के कंकण-मंगलसूत्र ही दे सकता है, सुहाग का सुख नहीं दे सकता मगर........

अपने साठ-बासठ के सहोदर का बच्चों-जैसा विह्वल रुदन और ज्यादा नहीं झेल पायी थी पद्मावती और चुपचाप चली आई थी-''बोज्यू, इस वृद्धावस्था में मुझे सुहागिन बना दो

!''......और एकदम भरने के बाद ओंधी पड़ी ताँबे की कलशी-जैसी छलछलाती ही चली गई थी, बिलखती ही गई थी-हे राम!हे राम! हे राम!

रामीचन्द्र, अजुध्यावासी। ....सीतारानी मिथिलावासिनी-ई-ई-ए शकूना देही

...

3. पद्मावती को 45 वर्ष की उम्र में विवाह करना क्यों आवश्यक लगा

क. पद्मावती विवाह करना आवश्यक समझ रही थी।

ख. पद्मावती से अपने भाई का कष्ट देखा नहीं गया।

4. पद्मावती को विवाह के लिये बाध्य करने वाले भाई के कथन को लिखिये।

सुहागिन बने भी अब सात-साठ बरस बीत गए हैं।

इन सात-आठ वर्षो में पद्मावती ने धीरे-धीरे अपने उस कल्पनापुरूष को प्रतिष्ठित कर लिया, जो तीस तक की पद्मावती अपने लिए खोजती रहती थी।

शुरू-शुरू में ताँबे का कलश विद्रूप लगता था, मगर एक दिन जब छोटे भतीजे ने उसमें पेशाब कर दी और कमलावती बोज्यू ने उपेक्षापूर्वक हँसते हुए बात टाल दी, तो एकाएक पद्मावती की आत्मा उत्तेजित हो उठी थी-"तुम्हारे लिए यह सिर्फ ताँबे का कलश ही होगा, बोज्यू, मगर मेरे लिए तो मेरा सुहाग भी है!''

उत्तर में कमलावती बोज्यू ने व्यंग्यपूर्वक कहा था 'लली, सुहाग तो पलँग में शोभा देता है, तुलसी के कनिस्तर के पास नहीं पड़ा रहता !'

पद्मावती एकदम तड़प उठी थी – "बोज्यू, इस वृद्धावस्था में भी बकते हुए शरम नहीं लगती तुम्हें''

और उसी दिन से पद्मावती ने ताँबे के कलश को इतने ऊँचे चबूतरे पर रखना शुरू कर दिया था कि कमलावती बोज्यू के बच्चे वहाँ तक न पहुँच सकें। रोज, दिशा खुलते ही, पद्मा चबूतरे पर से कलश उतारकर पनघट चली जाती थी। स्नान कर लेने के बाद उस आत्मस्थ कल्पना-पुरूष के आधार जलकुम्भ को स्नान कराती थी। स्वच्छ पत्थर पर चन्दन घिसती थी और विष्णुरूप जल-पुरूष का अभिषेक करती थी - कस्तूरी तिलकं ललाट पटले, वक्षस्थले च कौस्तुभं.....

सुदूर जालना पहाड़ी की चोटी पर पहली-पहली सूर्य-ज्योति सल्लि-वृक्षों की चोटियाँ उजली बना देती थी। जलभरे ताम्र-कलश के मुँह तक छलछलाते पानी में पद्मावती प्रतिबिम्ब देखने लगती थी। आँखों की पुतलियाँ मोह और अवसाद से थर-थर काँप उठती थीं। ताम्र-कलश के मुँह पर पानी के दायरे कँपकँपा उठते थे। लगता था, कल्पना-पुरूष का मुख-बिम्ब उपर उतर आया है-कस्तूरी तिलकं ललाट पटले........पहले भी नित्य जल भरती थी पद्मावती, मगर दिनभर कौवे चोंच डाल-डालकर पानी पीते रहते थे, तो पद्मावती हाँकती भी नहीं थी। मगर बाद में मौसमी फूलों या पीपल के पत्तों का गुच्छा उपर रखने लगी थी, ताकि कौवों की चोंच पानी तक न पहुँच सके, ताकि ताम्र-कलश की एकदम उपरी जल-परत पर उभरा हुआ मुखबिम्ब खण्डित न हो सके....। **(ताम्रकलश को पति के रूप में मानते हुए पद्मावती पति रूप में तरह-तरह से परिचर्या करने लगती है।)**

एक किशोरियों का जैसा बावलापन, तरूणियों की जैसी सौन्दर्यानुभूति और गृहिणियों-सा अपनाव-ताम्र-कलश पद्मावती की आँखों में एकदम छा गया था। लोग ही नहीं, कमलावती बोज्यू भी परिहास करती थीं। न जाने कमलावती बोज्यू ने बात फैलायी थी या पड़ोसिनों की कल्पना इतनी प्रखर थी, सारे मोहल्ले में यह चर्चा फैल गयी थी कि पद्मावती अपने स्वामी को रात में अपने ही साथ सुलाया करती है! हे राम, ताँबे के कलश को अपने साथ...... **(ताम्रकलश को पद्मावती पति रूप में मान तरह-तरह की कल्पनायें करने लगती है।)**

शायद यह बात तो कमलावती बोज्यू ने ही फैलायी होगी कि, मैं नीचे गोठ में सोती हूँ पद्मा ललीज्यू उपरवाले तल्ले पर सोती हैं। एक रात ऊपर की पाल से पानी नीचे चू रहा था-शायद ताँबे का कलश औंधा पड़ गया होगा!

पद्मावती क्या जानती थी, कमलावती बोज्यू इतनी बदमाश हैं। वह तो यही समझती थी कि सबकी आँखें लग जाने के बाद ही वह ताम्र-कलश को चबूतरे पर से ले जाकर अपने सिरहाने रखती है और दिशा खुलते ही जल भरने चली जाती है।

छिः हाड़ी, इस चतुर्थावस्था में भी कमलावती बोज्यू की विमति नहीं गई है। ननदों के भेद लेने, उनसे चुहलबाजी करने की यह उम्र थोड़े ही होती है!

कभी-कभी पद्मा कमलावती बोज्यू के प्रति खीझती तो है। मगर फिर अपने ही प्रति उलाहने की लाज में डूब जाती है कि ‘छि हाड़ी’ बोज्यू को तो बहुत गिन-गिनकर नाम रखती हूँ मैं, मगर सफेद धतूरे-जैसी फूल जाने पर भी मेरी मति क्यों इतनी बावली है! इस अवस्था में तो कोई साक्षात शरीरवाले पति को भी इतना प्यार नहीं करती होगी !’

कमलावती बोज्यू विनोद में कहा करती थीं कि ‘हमारी पद्मा ललीज्यू बड़ी तपस्विनी हैं। जितनी सेवा-टहल ललीज्यू इस ताँबे के खसम की करती हैं, उतनी तो मैं अपने हाड़-मांस के

स्वामी की भी नहीं कर सकी..........! आखिर पद्मावती ललीज्यू के ही कुम्भ से तो नहीं जनमेगा फिर कोई अगस्त्य मुनि!'

हे राम, कमलावती बोज्यू कितनी चण्ट हैं! पद्मावती ने सिर्फ इतनी-सी कल्पना ही तो की थी एक दिन कि पहले के सतयुग में तो पुरूष के स्मरण-मात्र से भी गर्भ रह जाया करता था....! मगर यह कल्पना करने के दिन जब बावलेपन में ताम्र-कलश छलछला गया था, तो खुद पद्मावती ही कितनी डूब गई थी शरम में, वह जानती है.......! एक मर्मवेधी आशंका भी आत्मा को थरथरा गई थी कि कहीं सचमुच रह ही गया गर्भ, तो पड़ोस की छिछोर औरतें उसकी आत्मिक श्रद्धा को थोड़े ही देखेंगी! सभी यही कहेंगी कि इस बुढ़ापे में धरम गँवाते लाज भी नहीं लगी........! **(पद्मावती की कुण्ठा से उत्पन्न कल्पनाओं में भी उसका कुण्ठा भाव दृष्टिगत होता है। वह काल्पनिक पुरुष से ही गर्भवती हो जाने की सम्भावना की कल्पना तक कर डालती है)**

अरी छिछोरो, जितनी शरम ताँबे के कलश की है, उतनी तो तुमने हाड़मांस के खसम की भी नहीं की होगी! देखता कोई कि पहले-पहले ताँबे के कलश को सिरहाने रखते हुए कैसे घूंघट निकाल लेती थी पद्मा, तब जानतीं कि लाज-शरम करनेवाला हिया ही और होता है!

बीच में सात-आठ दिन बीमार पड़ गई थी, तो बिस्तरे से लग गयी पद्मावती। बिस्तरे में पड़े-पड़े ही उसे यह यथार्थ बेधता रहा कि उसके चाहने के बावजूद अब तू-तू क्यों नहीं कहता कोई। और तो और, कमलावती बोज्यू भी 'तुम' ही कहती हैं। पहले कभी-कभार तू-तू कहती थीं, बड़ा मधुर लगता था। मगर इधर कमलावती बोज्यू का मधुर स्वर एकदम तीता-तीखा होता चला आया है। कभी क्रोध में बोलती हैं, तो लगता है, गला खँखार-खँखारकर थूक रही हैं! लगातार सात दिनों तक ताँबे का कलश बासी ही पड़ा रहा, तो पद्मावती से नहीं रहा गया- "मेरे जिन्दा रहते ही यह दुर्गति हो रही है, तो मेरे मरने के बाद तो टमटों के यहाँ पहुँच जायेगा....!'' कहते-कहते एक ओर तो बुरी तरह बिलख पड़ी थी पद्मावती, दूसरी ओर खीझ भी थी अपनी असंयत वाणी के प्रति कि 'तू' कहना भारतीय नारी के लिए धर्म-विरूद्ध है!

कल तो कमलावती बोज्यू ने टाल दिया था कि 'पद्मावती ललीज्यू' तुम्हारा तो सिर्फ एक ताँबे का ही कलश ठहरा....! मेरे तो हाड़-मांस के ही कलश इतने हैं कि इन्हीं के काम-काज से उबर नहीं पाती।'

पद्मावती एकदम व्यथित हो उठी थी- "बोज्यू, उदर में हाथ डालकर कलेजा क्यों मरोड़ती हो! इतना तो मैं भी जानती हूँ कि ताँबे के खसम से सन्तति नहीं जनमा करती और तुम्हारी सन्तति न मुझे जीते-जी सुख दे सकती है और न मरने पर सद्गति...। मगर कहीं से लफन्दर लगाकर तो मैं सन्तति जनमा नहीं सकती थी न, बोज्यू!''

कल रात-भर कमलावती बोज्यू पश्चाताप से सिसकती रही थीं। आज सवेरे-सवेरे पद्मावती के पास पहुँच गई थीं- "ललीज्यू, तुम्हारा दुख जानती हूँ। मेरा पाप क्षमा करना। मुण्ड-चामुण्ड इतना झिंझोड़ देते हैं कि वाणी वश में रहती नहीं हैं। तुम्हें भी दुखा बैठती हूँ।......मगर असल बात यह है, ललीज्यू, कि तुम्हारे ताँबे के कलश में जल भरना मेरे लिए तो एकदम निषिद्ध ही ठहरा। उसे तो तुम्हें ही भरना होता है। नहीं तो मैं किसी और से ही भरवा देती.........।"

टूट-टूट रही थी देह, मगर फिर भी पद्मावती उठ गई कि आज आठवां दिन लग गया है। ज्यों-त्यों भरकर रखना ही होगा नया जल। न जाने किस जनम पति को क्लेश पहुँचाया होगा, इस जनम में यह गति है। इस जनम में भी सेवा नहीं हो पाई तो फिर कैसे तारण होगा!

अभ्यास प्रश्न

5. कमलावती पद्मावती के ताम्रकलश में पानी क्यों नहीं भरती ?

6. बीमारी में भी पद्मावती ताम्रकलश में पानी भरने क्यों जाती है ?

घुटने बजने लगते हैं चबूतरे पर चढ़ते, तो लगता है, आत्मा के बनखण्ड में चहकते शकुनों को किसी निर्मम व्याध ने बेध दिया है और तीरों से घायल शकुनों की पाँत विलाप करते हुए व्याकुल-कण्ठ से चीत्कार कर रही है-

ओ सुवा, रे सुवा!
बनखण्डी, रे सुवा!
हरियो तेरो गात.....
कहाँ है, रे तू सुवा
पिंडलो तेरो ठूना-
कहाँ हे, रे तू सुवा

एकदम भावाकुल होकर पद्मावती ने हाथों में उठाये ताम्र-कलश पर दीठ डाली कि बासी जल में भी उतरता होगा प्रतिविम्ब

धर-थर-थर-थर कृश हथेलियाँ काँप उठीं और ताम्र-कलश चबूतरे से एकदम नीचे आँगन के पथरौटे पर गिर पड़ा......।

हे राम! हे राम!

पद्मावती का करूणाविलाप सुनकर पास-पड़ोस के कई लोग एकत्र हो गए, मगर पद्मावती की आँखों को तो सिर्फ पिचके हुए ताम्र-कलश के अलावा और कुछ दिख ही नहीं रहा था। बिलखती ही चली जा रही थी कि गंगासिंह हेडमास्टर की तीसरी घरवाली, जो खुद भी

पहले दो घर त्यागकर आई थी, पद्मावती के कानों को बेध गयी- "छिः छिः ! एक ताँबे की टिटरी के लिए ऐसा करुण विलाप करते हुए शरम भी नहीं आ रही है पद्मा बौराणाज्यू को ! अरे, यह फूट गया है, तो क्या दूसरा नया कलश नहीं मिल सकता बाजार में''

पद्मावती ने आँसू छलछलाती आँखों के जल को एकदम आत्मस्थ कर लिया। देखा, सामने गंगासिंह हेडमास्टर भी खड़ा है। पद्मावती एकदम विकट स्वर में चिल्ला उठी- "चुप रह, ओ खसिणी! मैं कोई तुझ-जैसी तिघिरिया पातर नहीं हूँ! नया कलश नहीं मिल सकता है कहती है, राँड ! अरी, तू ही ढूँढ़ती रह, तुझे ही मुबारक हों नये-नये खसम ! ......मैं तुझ-जैसी कमनियत खसिणी नहीं हूँ-पतिव्रता ब्राह्मणी हूँ। तू मत रोना जब तेरा खसम भी मरे तो। कसम है तुझे तेरी ही औलाद की.....! **(पद्मावती की कुण्ठा व्यक्त हुई है।)**

पद्मावती के विकट स्वर से सभी अचकचा गए। कमलावती बोज्यू को इस बात का बुरा लगा कि 'हे राम, पद्मा ललीज्यू के हृदय की व्यथा को यहाँ कौन समझनेवाला है ये सब लोग सिर्फ तमाशा देखने वाले हैं।

कमलावती बोज्यू आगे बढ़ीं। बड़े लाड़-प्यार से पद्मावती की आँखों को पोंछा। पहले बहे हुए आँसू कपोलों की झुर्रियों में अटक गये थे। संवेदना जताते हुए, कमलातवी बोज्यू बोली- "पद्मा ललीज्यू, अब चुप हो जाओ! अरे, बावली, इतना करूण विलाप तो कोई हाड़-मांस के स्वामी के मर जाने पर भी नहीं करता! ताँबे का कलश थोड़ा पिचक ही तो गया है! मैं इसे ठीक करवा दूँगी।"

इस कल्पना से ही सिहर उठी कि ठीक करने दिये गये कलश को तो पहले टमटा भट्टी पर चढ़ायेगा और फिर हथौड़ों से उसे.....

हे राम!हे राम !

पद्मावती कहना चाहती थी कि 'बोज्यू, तुम भी सिर्फ कलश के पिचकने की बात ही क्यों देखती हो ! मेरी आत्मा क्यों नहीं दिखती तुम्हें मगर कण्ठ-स्वर अजाने ही रूखा हो गया। आज पहली बार पद्मावती को लगा कि वह भी कमलावती बोज्यू की ही तरह खँखार-खँखारकर कह रही है-"अरे, बोज्यू, तुम क्यों नहीं कहोगी ऐसा! तुम तो अब विधवा हो, विधवा! तुम क्या समझोगी कि सुहागिनी के मन की ममता-व्यथा क्या होती है!''

और एकदम बच्चियों की तरह बिलखती हुई पद्मावती अन्दर चली गई।

....

अभ्यास प्रश्न

7. बोज्यू, तुम क्यों नहीं कहोगी ऐसा! तुम तो अब विधवा हो, विधवा! तुम क्या समझोगी कि सुहागिनी के मन की ममता-व्यथा क्या होती है!'' इस पंक्ति में कौन सा भाव छिपा है

क. सुहागिन होने का भाव

ख. भाभी को दु:ख देने का भाव

ग. कुंठा का भाव

8. ताम्रकलश से विवाह के बाद पद्मावती धीरे-धीरे उसे पति ही मान लेती है ऐसा कोई उद्धरण पाठ में से दीजिये।

....
....
....
....

17.5 कहानी का सार

सुहागिनी की कथानायिका पद्मावती का जन्म उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र के एक ग़रीब ग्रामीण ब्राह्मण परिवार में हुआ है। वह दिखनें में सुन्दर भी नहीं है, इसलिये पैंतालीस वर्ष की उम्र तक भी विवाह नहीं हो पाया है। हिन्दु धर्मशास्त्रों के अनुसार विवाह संस्कार जरूरी माना जाता है। यदि किसी लड़की का विवाह नहीं हो पाता है, तो उसके लिए घट विवाह की परम्परा है। यह परम्परा देश के अनेक हिस्सों के साथ साथ उत्तराखण्ड में भी प्रचलन में है। पद्मावती के बड़े भाई जब बहुत बीमार हो जाते हैं तब उन्हें यह चिन्ता सताती है कि वह पद्मावती का विवाह नहीं कर पाये। उन्हें बड़े भाई का उत्तरदायित्व न निभा पाने का दर्द तो है ही साथ ही पाप भागी बनने और परलोक बिगड़ने का भय भी दिखाई पड़ता है। भाई के अनुरोध पर पद्मावती इस विवाह के लिये अनिच्छा के बावजूद तैयार हो जाती । पद्मावती का विवाह होने के बाद धीरे-धीरे वह घड़े को पति के रूप में स्वीकार जैसा कर लेती है। वह नित्य सुबह घड़े को धोकर उसे सजाती है। एक दिन भाई के बेटे के उसमें पेशाब कर देने पर वह बहुत आहत होती है। घड़े को पति जैसा दर्जा दे दिये जाने पर भाभी उसे छेड़ भी दिया करती है, पद्मावती को भी लगता है कि भाभी इस उम्र में भी ऐसे मजाक कर रही है, और वह लजा भी जाती है। एक दिन बहुत तबियत खराब होने पर भी जब वह घड़े को लेकर आ रही होती है फिसल जाने से घड़ा पिचक जाता है। इस पर पद्मावती बहुत विलाप करती है, लगता है जैसे घड़ा उसका जीता जागता पति हो। इस पर जब गांव की

एक महिला और उसकी भाभी जब उसे समझाने की कोशिश करती हैं, वह बिफर पड़ती है। वह उस महिला को चरित्रहीन और अपनी भाभी को विधवा होने का ताना देती है।

17.6 संदर्भ सहित व्याख्या

किसी भी साहित्यिक रचना में कुछ अंश ऐसे होते हैं जो रचना के केन्द्रीय भाव को अधिक स्पष्ट करते हैं। कुछ ऐसे अंश होते हैं जिनमें लेखक भाव या विचार को ऐसी भाषा-शैली में व्यक्त करता है, जिन्हें समझने के लिए अधिक व्याख्यायित करने की आवश्यकता होती है। कुछ अंशों में विषय की गहराई में जाने अथवा मूल कथ्य को समझने के लिए भी व्याख्या एवं विश्लेषण की आवश्यकता होती है।

'सुहागिनी' कहानी के ऐसे ही कुछ महत्वपूर्ण अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या यहाँ दे रहे हैं।

उद्धरण :1 आत्मस्था पद्मावती के प्रति व्यथा के आँसू बाहर को निकास नहीं पाते हैं। कहीं अन्तर्गुहा में बालसंन्यासिनी की तरह अवसन्न बैठी पद्मावती क्षण-क्षण में अपना रूप बदलती रहती है...और बेर-बेर पुतलियाँ रहट के खोखों की तरह, बाहर को घूमने के बावजूद, अन्दर की ओर छलछला जाती हैं और आँसू बूंद-बूंद अन्तर्गुहा में जलते दीपकों की लौ पर गिरते हैं-

बनखण्डी, रे सुवा!

ओ सुवा, रे सुवा!

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यांश श्री शैलेश मटियानी द्वारा रचित 'सुहागिनी' कहानी से लिया गया हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत अंश में पद्मावती के विवाह का प्रसंग चल रहा है। विवाह के धार्मिक अनुष्ठानों की तैयारी चल रही है। लेकिन पद्मावती के मन में आह्लाद के स्थान पर विषाद का भाव दिखाई देता है। इसी का मार्मिक चित्रण हुआ है।

व्याख्या : अपने ही में लीन पद्मावती के प्रति भाभी की करुणा का भाव है, लेकिन उन्हें वह बाहर नहीं निकाल पा रही है। क्योंकि वह अपनी संवेदना पद्मावती से ही कहती। पद्मावती की स्थिति यह है कि वह अपने ही में लीन नजर आ रही है। उसकी दशा उस बाल-संन्यासिनी की सी हो रही है जो संसार की व्यावहारिकता और अनुभवों से असम्पृक्त है। बाल-संन्यासिनी की तरह इसलिए क्योंकि वह बचपन से ही सांसारिक जीवन से दूर रहती है और उससे जुड़े सुखों से वंचित रहती है। पद्मावती हर पल में एक नये तरह का व्यवहार करने लगती है। पद्मावती के नेत्रों की पुतलियाँ धूमती तो नजर आ रही हैं, लेकिन अपने में ही खोई-खोई सी भी लगने लगती हैं। लेखक उसकी इस क्रिया की तुलना रहट के खाली डब्बों से करते हुए कहते हैं कि जैसे रहट के चलने पर उसके डब्बे बाहर की तरफ घूमते तो हैं लेकिन उनमें भरा पानी वापस कुएँ में गिरता है,

उसी प्रकार पद्मावती की आँखें अपने विषाद से छलछला उठती हैं लेकिन आँसू जैसे मन के भीतर के प्रज्ज्वलित आशा के दीपों की लौ पर गिर रहे हैं, यानि मन में उठने वाली तमाम आकांक्षाओं को आहत कर रहे हैं। और अंदर ही अंदर जैसे एक संवाद चल रहा है। वन में रहने वाले उस तोते से जिस पर विवाह के अवसर पर लोगों को निमंत्रित करने की जिम्मेदारी है। वह भीतर ही भीतर सुवा ओ सुवा कहती रह जाती है।

विशेष :

- पद्मावती की मन:स्थिति का मार्मिक चित्र उकेरा गया है। उसके मनोभावों की तुलना बालसंयासिनी से की गई है। बाल अर्थात् छोटी उम्र की और संयासिनी जो लोक-जीवन से विरत हो। बालसंन्यासिनी की यह विरक्ति स्वाभाविक नहीं होती है, उसे इसका भान ही नहीं होता है।वैसी ही दशा पद्मावती की भी है। ऐसे ही रहट के डब्बों से की गई तुलना है। इन उपमाओं से भाषा में चित्रात्मकता आ गई है। पाठक के सामने पद्मावती के अवसाद का बिम्ब उभर आता है।
- भाषा में बिम्बात्मकता और चित्रात्मकता से काव्यात्मकता आ गई है, जो पद्मावती की मानसिक अवस्था के अनुरूप है।

उद्धरण :2 बुद्धिबल्लभ भी कभी-कभी बहुत खीझ उठते थे कि इस अभागिन के कारण तो मुझे भी नरक भोगना पड़ेगा ! जिस ब्राह्मण के घर में आज तक कुँवारी बैठी बहन राख के अन्दर के कोयले की तरह अपने दुखों में सुलगती रहे, उसका तारण तो चौंसठ तीरथों की परिक्रमा से भी नहीं हो सकता !

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तिया 'सुहागिनी' कहानी से ली गई हैं। इस कहानी के लेखक श्री शैलेश मटियानी हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत अंश में पद्मावती के भाई की व्यथा और धर्मभीरुता प्रकट हुई है।

इसके साथ ही स्वाभाविक रूप से पद्मावती का दु:ख भी उसमें खुद-ब-खुद उभरता है।

व्याख्या : लेखक कहते हैं कि कभी-कभी बुद्धिवल्लभ यानि पद्मावती के भाई को इस बात पर झुँझलाहट होती है कि पद्मावती का विवाह न हो पाने के कारण उन्हें नरक का भागीदार बनना पड़ेगा। खीझ इसलिये क्योंकि इस स्थिति के लिये न वह खुद जिम्मेदार हैं और न ही पद्मावती, परिस्थितियों पर उनका वश नहीं है। उनका मानना है कि जिस ब्राह्मण परिवार की कन्या का विवाह नहीं हो पाता, कन्या अपने इस दु:ख में घुलती रहती है, उस परिवार के लोगों का उद्धार किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है। लेखक ने ऐसी कन्या के दु:ख की तुलना राख के ढेर में दबे जलते कोयले से की है, जो धीरे-धीरे लेकिन निरंतर सुलगता रहता है। दूसरे शब्दों में इसे तिल-

तिल जलना कह सकते हैं। पद्मावती के भाई मानते हैं कि चौंसठ तीर्थों की परिक्रमा भी उनके इस पाप का निराकरण नहीं कर सकती।

विशेष :

- पद्मावती का विवाह नहो हो पाना उसके लिये तो दु:ख का विषय है ही भाई के लिये भी कष्ट का कारण है। एक ओर तो उनको इस बात का कष्ट है कि बहन का विवाह नहीं हुआ, दूसरी ओर वे इस भय से आक्रांत हैं कि हिन्दु मान्यताओं के अनुसार उनके मोक्ष की राह भी बन्द हो जायेगी।
- पद्मावती के दु:ख को भाई के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली है।
- राख के ढेर में दबे अंगारे की सुलगन के साथ पद्मावती की पीड़ा की तुलना की गई है।
- भाषा चित्रात्मक है।
- यह अंश कहानी के मूल तथ्य को अभिव्यक्त करता है।
- हिन्दु धर्मशास्त्रों के अनुसार कुछ तीर्थस्थल ऐसे हैं जिनकी निर्धारित परिक्रमायें करने से पुण्य मिलता है, पापों का नाश होता है, मोक्ष की प्राप्ति होती है। इनमें से नर्वदा की पंचकोसी, मथुरा की गोवर्धनआदि की परिक्रमायें प्रमुख हैं।

अभ्यास :

हमने उपर्युक्त पंक्तियों की संदर्भ सहित व्याख्या की है। आप इस तरह की पंक्तियाँ और सूक्तियॉं स्वयं चुनकर उनकी व्याख्या कर सकते हैं।

1. निम्नलिखित पंक्तियों की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए। आपकी सहायता के लिये कुछ संकेत भी दिए गए हैं।

1) **गोरे कपाल में तो काजल का टीका भी बहुत फबता है, मगर काले कपाल की रेखाएँ तो चन्दन के तिलक से भी उजली नहीं हो पाती हैं।**

संदर्भ : (कहानी और लेखक के नाम का उल्लेख)

प्रसंग : (कहानी में जिस संदर्भ में कहा गया है, उस स्थिति का संक्षेप में विवरण)

....

....

पद्मावती का निर्धन होने के साथ-साथ सुन्दर भी न होना।

व्याख्या : पद्मावती की दयनीय स्थिति का ब्यौरा

....

....

पद्मावती के बाहरी रूप का चित्रण

....

....

पद्मावती की निर्धनता को भी साथ में जोड़ा गया है।

....

....

विशेष : पद्मावती के संदर्भ में उक्त कथन का अभिप्राय

..

...

भाषा

....

....

शैली

....

....

(अन्य)

....

2) पद्मावती ने आँसू छलछलाती आँखों के जल को एकदम आत्मस्थ कर लिया। देखा, सामने गंगासिंह हेडमास्टर भी खड़ा है। पद्मावती एकदम विकट स्वर में चिल्ला उठी- "चुप रह, ओ खसिणी! मैं कोई तुझ-जैसी तिघिरिया पातर नहीं हूँ! नया कलश नहीं मिल सकता है कहती है, रॉड ! अरी, तू ही ढूँढ़ती रह, तुझे ही मुबारक हों नये-नये खसम ! ......मैं तुझ-जैसी कमनियत खसिणी नहीं हूँ-पतिव्रता ब्राह्मणी हूँ। तू मत रोना जब तेरा खसम भी मरे तो। कसम है तुझे तेरी ही औलाद की.....!

संदर्भ : (कहानी और लेखक के नाम का उल्लेख)

प्रसंग : (कहानी में जिस संदर्भ में कहा गया है, उस स्थिति का संक्षेप में विवरण)

....

....

पद्मावती के पतिरूप कलश का पिचक जाना।

व्याख्या : पद्मावती का उस कलश को अपना पति ही मान लेना।

....

....

पद्मावती के बाहरी रूप का चित्रण

....

....

पद्मावती की निर्धनता को भी साथ में जोड़ा गया है।

....

....

विशेष : पद्मावती के संदर्भ में उक्त कथन का अभिप्राय

....

....

भाषा

....

....

शैली

....

....

(अन्य)

....

उद्धरण :3) पद्मावती तब भी जानती थी, कमलावती बोज्यू के मुँह से उनकी कितनी आंतरिक-व्यथा बोलती है। ब्राह्मण-कन्या तो पैसेवालों की भी बहुत परेशानियों के बाद ही ब्याही जाती है, वह तो एक दरिद्र परिवार की कन्या थी और कुरूपा। गोरे कपाल में तो काजल का टीका भी बहुत फबता है, मगर काले कपाल की रेखाएँ तो चन्दन के

तिलक से भी उजली नहीं हो पाती हैं। सोने-चाँदी के आसन पर तो शालिग्राम भी पूजा जाता है, मगर दान-दहेज से रीती उस सूखे काठ-जैसी काया को कौन देगा अपने घर में बहू का आसन।

संदर्भ : उपर्युक्त पंक्तियाँ श्री शैलेश मटियानी द्वारा रचित कहानी 'सुहागिनी' से उद्धृत की गई हैं।

प्रसंग :

व्याख्या :

विशेष :

17.7 सारांश

इस इकाई में आपने कहानीकार 'शैलेश मटियानी' के व्यक्तित्व और कृतित्व की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त की तथा उनकी सुहागिनी कहानी का वाचन कर लिया है। आपने वाचन करते समय इसमें प्रयुक्त कठिन शब्दों के अर्थ जाने और उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र के सामाजिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक परिवेश की जानकारी प्राप्त की। अब आप इसकी भाषा-शैली और कथ्य से परिचित हो गये हैं। कहानी में वर्णित विविध घटनाओं के माध्यम से आप कहानी की मूल संवेदना से परिचित हुए हैं। आपने इसमें कुछ विशेष अंशों की व्याख्या का पाठ किया है। इसके बाद आप विशेष प्रसंगों की स्वयं व्याख्या करने में सक्षम होंगे।

17.8 शब्दावली

कठबाड़	:	लकड़ी का घेरा या चौहद्दी
ललीज्यू/लली	:	ननद
छणछणाट	:	कंसे के बर्तन में पानी की बूंदें गिरने की ध्वनि स्वर
पाँत	:	पंक्ति
दीठ	:	नजर, दृष्टि
शकुन-आंखर	:	मंगलगीत।
बौराणाज्यू	:	बहूरानी।
छिः हाड़ी	:	दुरदुराना।
खसिया / खसिणी	:	क्षत्रियों के लिए एक सम्बोधन।
टमटा	:	ताँबे के बरतन बनाने-बेचने वाले।
बालसंन्यासिनी	:	ऐसी लड़की जिसने बचपन में ही संन्यास ले लिया हो।
रहट	:	कुएं से पानी निकालने का यंत्र ।

सुआ : तोता।
अन्तर्गुहा : हृदय का अन्तरतम।
अवसन्न : व्यथित, पीड़ित।

शालिग्राम : भगवान विष्णु।

पातर : वेश्या

कदलीपत्रों की पालकी : केले के पत्तों से बना भगवान का आसन।

17.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग

2. ख

3. ख

4. पद्मावती को विवाह के लिये बाध्य करने वाले भाई के कथन को लिखिये।

उ0 (स्वयं ढूंढें)

5. कमलावती पद्मावती के ताम्रकलश में पानी इसलिए नहीं भरती क्योंकि ताम्रकलश पद्मावती के सुहाग का प्रतीक है और उसमें कोई अन्य जल नहीं भर सकता।

6. बीमारी में भी पद्मावती ताम्रकलश में पानी भरने इसलिए जाती है क्योंकि उसे लगता है कि न जाने किस जन्म में पति को क्लेश पहुँचाया होगा, इस जनम में यह गति है। इस जनम में भी सेवा नहीं हो पाई तो फिर कैसे तारण होगा!

7. ग

8. 1. शुरू-शुरू में ताँबे का कलश विद्रूप लगता था, मगर एक दिन जब छोटे भतीजे ने उसमें पेशाब कर दी और कमलावती बोज्यू ने उपेक्षापूर्वक हँसते हुए बात टाल दी, तो एकाएक पद्मावती की आत्मा उत्तेजित हो उठी थी-"तुम्हारे लिए यह सिर्फ ताँबे का कलश ही होगा, बोज्यू, मगर मेरे लिए तो मेरा सुहाग भी है!''

2. टूट-टूट रही थी देह, मगर फिर भी पद्मावती उठ गई कि आज आठवां दिन लग गया है। ज्यों-त्यों भरकर रखना ही होगा नया जल। न जाने किस जनम पति को क्लेश पहुँचाया होगा, इस जनम में यह गति है। इस जनम में भी सेवा नहीं हो पाई तो फिर कैसे तारण होगा!

(ऐसे ही कुछ अन्य उद्धरण आप पाठ में से और भी ढूंढें।)

17.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मटियानी, शैलेश, सुहागिनी तथा अन्य कहानियां
2. प्रभाकर, श्रोत्रिय ,अर्द्धांगिनी : स्मृति और यथार्थ की सहयात्री, 234 पृष्ठ
3. पहाड़-13, 2001, परिक्रमा, तल्ला डांडा, नैनीताल।
4. आजकल ; अक्टूबर २००१

17.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह, नामवर, कहानी: नई कहानी।
2. यादव, राजेन्द्र, एक दुनिया समानान्तर, सम्पादक:, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली
3. नई कहानी:प्रकृति और पाठ, सम्पादक: श्री सुरेन्द्र
4. विकल्प कथा साहित्य विशेषांक , विकल्प प्रकाशन, इलाहाबाद

17.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. सुहागिनी कहानी की कथावस्तु का विश्लेषण करते हुए कथावस्तु की विशेषताएँ बताइये।
2. सुहागिनी कहानी के आधार पर पद्मावती का चरित्र-चित्रण कीजिए।
3. सुहागिनी की भाषागत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. सुहागिनी की शिल्पगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
5. सुहागिनी की कथावस्तु बताते हुए शीर्षक की उपयुक्तता और सार्थकता सिद्ध कीजिए।
6. कहानी के तत्वों के आधार पर समग्रता में कहानी का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 18 सुहागिनी :पाठ एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

18.1 प्रस्तावना
18.2 उद्देश्य
18.3 कथानक
18.4 पात्र
18.5 परिवेश
18.6 संरचना-शिल्प
18.7 मूल्यांकन
18.8 सारांश
18.9 शब्दावली
18.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
18.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
18.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री
18.13 निबंधात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने सुहागिनी कहानी का वाचन किया। इसमें आपका सुहागिनी की कथा तथा उसमें व्यक्त भावों से परिचय हुआ। इससे आपको स्पष्ट हो गया होगा है कि कहानीकार इस कहानी के माध्यम से क्या कहना चाहता है और क्यों कहना चाहता है। वह जो कहना चाहता है, उसके लिये ही वह कथा की रचना करता है। कथा के पात्र काल्पनिक हो सकते हैं, लेकिन उनकी संवेदनायें, परिस्थितियाँ और परिवेश वास्तविक है। आपने इस सत्य को अनुभूत किया।

किसी भी रचना का मूल्यांकन इस तथ्य से होता है कि वह अपनी बात कहने में कहाँ तक सफल हुआ है। इसका निर्धारण उसके प्रस्तुतीकरण से होता है। प्रस्तुतीकरण की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि कहानी के तत्वों की कसौटी पर वह कितनी खरी है। प्रस्तुत इकाई में सुहागिनी का कहानी के तत्वों के आधार पर विश्लेषण किया जा रहा है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद सुहागिनी कहानी का तात्विक विवेचन करने में सक्षम होंगे।

18.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- कहानी की कथावस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे।
- कहानी के पात्रों का चरित्र-चित्रण कर सकेंगे।
- कहानी के परिवेश और पृष्ठभूमि का अंकन कर सकेंगे।
- कहानी की भाषागत विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकेंगे ।
- कहानी की शिल्पगत विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकेंगे ।
- कहानी के प्रतिपाद्य और कहानीकार की दृष्टि का विश्लेषण कर सकेंगे ।
- कहानी के शीर्षक की उपयुक्तता और सार्थकता सिद्ध कर सकेंगे।
  समग्रता में कहानी का मूल्यांकन कर सकेंगे।

18.3 कथानक

कहानी के ढाँचे को कथानक अथवा कथावस्तु कहा जाता है। प्रत्येक कहानी के लिये कथावस्तु का होना अनिवार्य है क्योंकि इसके अभाव में कहानी की रचना की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कथानक के चार अंग माने जाते हैं - आरम्भ, विकास, चरम स्थिति एवं परिणति। सुहागिनी **कहानी का आरंभ**- सुवा रे, ओ सुवा!/बनखण्डी रे सुवा!/हरियो तेरो गात,/पिंङलो तेरो ठूना-/बन खण्डी रे, सुवा! विवाह के समय आमंत्रण की पंक्तियों के साथ होता है। प्रसंग पद्मावती के विवाह का है। विवाह की तैयारियाँ चल रही हैं, लेकिन विवाह का उत्साह कहीं नहीं दिखाई देता है। कमलावती बोज्यू रोली-अक्षत भिगो रही थीं जिनमें पानी से अधिक मात्रा आँसुओं की थी। पद्मावती की आँखों में भविष्य के सुनहरे स्वप्नों के स्थान पर गहरी उदासी और विवशता का भाव है क्योंकि पद्मावती का विवाह किसी पुरुष के साथ नहीं वरन् घड़े के साथ हो रहा है। भाई को डर है कि कहीं बहन का विवाह न कर पाने के कारण पाप का भागी न बनना पड़े। यह विवाह मजबूरी मात्र है। **कहानी का विकास** धटना के विकास के साथ नहीं वरन् पुरानी स्मृतियों के साथ होता है जिनमें कहीं पद्मावती की भाभी का यह कथन कि ‘लली, बहुत शकुन गाती हो तुम।......और इतनी मधुर मीठी आवाज में कि लगता है, तुम सिर्फ शकुन गाने के लिए ही जन्मी हो, सुनने के लिए नहीं! या फिर गंगासिंह हेडमास्टर का आसक्ति के साथ-घूरना, बातों में सार्थकता बोध सुख अनुभूत करने के बावजूद आत्म प्रताड़ना का भाव। पद्मावती का हाथ पकड़ने की कोशिश करने पर अपना हाथ छुड़ा लेना तथा तबसे गंगासिंह का ‘बौराणज्यू’ ‘बौराणाज्यू’ कहकर बातें करना बंद कर देना आदि घटनाओं के माध्यम से कथानक का

विकास होता है। उपर्युक्त घटनाओं का स्मरण कहानी की मूल सवेदना को **चरम** पर पहुँचा देता है जिसकी **चरम परिणति** ताम्रकलश के साथ विवाह के बाद उसे एकदम हाड़मांस का पति मान लेने की घटनाओं के रूप में होती है। वह न केवल उसकी सेवासुश्रूषा करने लगती है वरन् अपने सधवा होने और पतिव्रता होने का भाव मुखर रूप से व्यक्त करती है। यह पद्मावती के जीवन की विडम्बना और त्रासद परिणति है। पति का वास्तविक सुख उसे प्राप्त नहीं होता लेकिन विवाह का आडम्बर उसे स्वयं को विवाहित मान लेने का भ्रम जरूर दे देता है। यही पद्मावती के जीवन की विडम्बना भी है और परिणति भी है।

अभ्यास प्रश्न

1 .निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइए।

क) पद्मावती की आँखों में भविष्य के सुनहरे स्वप्न हैं। ( )

ख) पद्मावती ताम्रकलश के साथ विवाह के बाद उसे एकदम हाड़मांस का पति मान लेती है। ( )

ग) पद्मावती अपने सधवा होने और पतिव्रता होने का भाव मुखर रूप से व्यक्त करती है ( )

18.4 पात्र चरित्र-चित्रण

कहानी का संचालन उसके पात्रों के द्वारा ही होता है तथा पात्रों के गुण-दोष को उनका 'चरित्र चित्रण' कहा जाता है। चरित्र कथा के विकास और संवेदना को मुखर करने में सहायक होते हैं। कहानी में चरित्रों की संख्या सीमित तथा सोद्देश्य होनी चाहिए और यह भी आवश्यक है कि उनमें स्वाभाविकता हो। पद्मावती 'सुहागिनी' की नायिका है। सारी कहानी उसी के इर्द-गिर्द घूमती है। लेकिन पद्मावती के चरित्र को समझने के लिये कहानी के अन्य चरित्रों को समझना भी नितांत जरूरी है। इनमें पद्मावती की भाभी, भाई, गंगासिंह हेडमास्टर, गंगासिंह हेडमास्टर की पत्नी हैं। ये सभी पात्र पद्मावती के चरित्र एवं कथा-विकास में सहायक हैं।

पद्मावती : पद्मावती सुहागिनी की कहानी का मुख्य पात्र है। माता-पिता की मृत्यु के बाद वह अपने भाई के साथ रह रही है। भाई का अपना परिवार है, बच्चे हैं। पद्मावती सुन्दर भी नहीं है और परिवार विपन्न है, जिस कारण उसका विवाह नहीं हो पाता। **रंग एकदम साँवला, आँखे एकदम मिचमिची और देह सूखी हुई।** अभी वह अधेड़ उम्र की हो गई है लेकिन युवावस्था में भी पद्मावती सुन्दर नहीं थी। पद्मावती गाती बहुत अच्छा थी। विवाह के अवसर पर गाये जाने

वाले गीत- शकुनाँखर गाने में उसका कोई जोड़ नहीं है। कण्ठ इतना सुरीला कि **सात-सात शकुन आँखर गानेवाली बैठी हों, तो उसका सातवाँ सुर सबसे अलग ऐसा गूँजता था कि और गानेवालियों की आवाजें उनकी ईर्ष्या ओर कुण्ठा से और भी भद्दी लगने लगती थीं।** हिन्दु ब्राह्मण परिवार के अनुरूप चरित्र पर बहुत ध्यान है। इसके लिये वह अपनी स्वाभाविक भावनाओं को दबाती है। **गंगासिंह हेडमास्टर जब आसक्ति के साथ-घूरता बातें करता है, इससे एक सार्थकता का बोध सुख अवश्य देता था, मगर आत्मा प्रताड़ित करने लगती थी कि कहीं तीन-तीन शादियों के होते भी एकदम कुँवारे छोकरों की तरह आँखें भुर-भुरानेवाला हेडमास्टर अपने अपर स्कूल की सरहद से बहुत आगे तक न बढ़ आये!** इसीलिये जब एक दिन वह पद्मावती का हाथ पकड़ने की कोशिश करता है, तब वह **हट साले खसिया!'** कहकर अपना हाथ छुड़ा लेती है। इस तरह अपनी स्वाभाविक इच्छा को दबाती है। पद्मावती की यह कुंठा बार-बार नजर आती है। जब पति रूपी ताम्रकलश पिचक जाता है और वह विलाप कर रही होती है उस समय गंगासिंह हेडमास्टर की पत्नी का कहना- **"एक ताँबे की टिटरी के लिए ऐसा करूण विलाप करते हुए शरम भी नहीं आ रही है पद्मा बौराणाज्यू को ! अरे, यह फूट गया है, तो क्या दूसरा नया कलश नहीं मिल सकता बाजार में''** के जवाब में **पद्मावती एकदम विकट स्वर में चिल्ला उठी-"चुप रह, ओ खसिणी! मैं कोई तुझ-जैसी तिघिरिया पातर नहीं हूँ! नया कलश नहीं मिल सकता है कहती है, राँड ! अरी, तू ही ढूँढ़ती रह, तुझे ही मुबारक हों नये-नये खसम ! ......मैं तुझ-जैसी कमनियत खसिणी नहीं हूँ-पतिव्रता ब्राह्मणी हूँ। तू मत रोना जब तेरा खसम भी मरे तो। कसम है तुझे तेरी ही औलाद की.....!** में पद्मावती की यही कुण्ठा व्यक्त हुई है। पद्मावती का चरित्र स्त्री की उस कारुणिक दशा को मुखर करता है जिसमें धर्म,समाज,पारिवारिक और पारम्परिक मान्यतायें उसके स्वाभाविक जीवन के मार्ग को अवरुद्ध कर देती है। उम्र के साथ-साथ परिस्थितियों के बदलाव के अलावा पद्मावती के चरित्र में कोई परिवर्तन नजर नहीं आता है। लेखक ने घटविवाह की परम्परा के परिप्रेक्ष्य में स्त्री की सामाजिक स्थिति तथा उससे प्रभावित स्त्री मनोविज्ञान को मुखरित करने के उद्देश्य से पद्मावती का चरित्रांकन किया है।

अभ्यास प्रश्न

2.नीचे बताई गई घटनाएँ पद्मावती के चरित्र के किस-किस पहलू को उजागर करती है।

क) गंगासिंह मास्टर को 'हट साले खसिया' कहना

ख) ताम्रकलश पर मौसमी फूलों या पीपल के पत्तों का गुच्छा रखना

कमलावती (पद्मावती की भाभी) **:** पद्मावती की भाभी प्रौढ़ वय की घरेलू महिला हैं। निर्धन परिवार में बच्चों , बीमार पति और अधेड़ आयु की अविवाहित ननद पद्मावती के साथ परिवार चला रही है। पद्मावती के प्रति उनका स्नेहभाव है। वह जब कहती है- **" लली, बहुत शकुन**

गाती हो तुम।......और इतनी मधुर मीठी आवाज में कि लगता है, तुम सिर्फ शकुन गाने के लिए ही जन्मी हो, सुनने के लिए नहीं! तब इसमें उनका दर्द ही व्यक्त होता है। ऐसे ही पद्मावती के विवाह के समय **कमलावती बोज्यू बार-बार कदलीपत्रों की पालकी में बैठे बरदेवता श्री रामचन्द्र को टुकुर-टुकुर देखती हैं और उनके आँसू, एकबारगी छलछलाकर कॉसे की थाली में गिरते हैं और लगता है, रोली-अक्षत एकाकार हो गए हैं!**

बुद्धिबल्लभ (पद्मावती के भाई) **:** पद्मावती प्रौढ़ावस्था में यह विवाह, जो मन में वितृष्णा जगाने वाला भी है, करना नहीं चाहती, लेकिन भाई की व्यथा उसे यह विवाह करने के लिये बाध्य करती है। बुद्धिबल्लभ धर्मभीरू ब्राह्मण है। बहन से स्नेह तो है लेकिन पद्मावती का विवाह नहीं कर पाने से दुखी है, विवशता का भाव है। इससे भी बड़ा भय है परलोक बिगड़ने का उनका यह कथन उनके पूरे चरित्र को स्पष्ट कर देता है- **'पद्मा, मेरा अन्त समय आ गया है। बहुतों की सद्गति करके उनका तारण मैंने किया है, मगर अब मुझे अपना ही तारण दुर्लभ हो रहा है। तेरा भाई-पिता जो-कुछ हूँ मैं ही अभागा दरिद्र ब्राह्मण हूँ, पद्मा! मैं अभागा अपने भाई का धर्म नहीं निभा सका, मगर तू तो कल्याणी कुललक्ष्मी है ! तू अपनी दया निभा दे। तुझे सुहागिन देखने से मेरा तारण हो जायेगा।.....लली, इतना मैं भी समझता ही हूँ कि ताँबे का कलश सुहाग के कंकण-मंगलसूत्र ही दे सकता है, सुहाग का सुख नहीं दे सकता मगर........**उनका यही कथन पद्मावती को इस उम्र में कौतुकपूर्ण विवाह करने के लिये विवश करता है।

गंगासिंह हेडमास्टर: गंगासिंह पद्मावती के ही गांव का अधेड़ उम्र का व्यक्ति है। जो तीन विवाह कर चुका है। वही एकमात्र पुरुष है जो बड़ी आसक्ति के साथ-घूरता बातें करता है जो पद्मावती को एक सार्थकता का बोध सुख अवश्य देता था। पूरी कहानी में गंगासिंह हेडमास्टर दो बार सामने आता है। एक बार तब जब !.....**सो एक दिन पद्मावती का हाथ पकड़ने की कोशिश की तो 'हट साले खसिया!' कहकर पद्मा ने अपना हाथ छुड़ा लिया था** और एक बार जब गंगासिंह हेडमास्टर की पत्नी ताम्रकलश के पिचक जाने पर कहती है **अरे, यह फूट गया है, तो क्या दूसरा नया कलश नहीं मिल सकता बाजार में''**

पद्मावती ने आँसू छलछलाती आँखों के जल को एकदम आत्मस्थ कर लिया। देखा, सामने गंगासिंह हेडमास्टर भी खड़ा है। जिसे देखकर पद्मावती की प्रतिक्रिया और भी तेज हो जाती है। इस तरह हम पाते हैं कि गंगासिंह का चरित्र पद्मावती की दमित भावना को और अधिक तीव्र कर देता है।

गंगासिंह हेडमास्टर की पत्नी : यह केवल एक बार कहानी में आती है, जब पद्मावती ताम्रकलश के पिचक जाने पर विलाप कर रही होती है। उसे पद्मावती का यह विलाप अशोभन प्रतीत होता है। वह कहती है कि नया कलश ले लो । इस पर पद्मावती बिफर उठती है। अपने को

वह एकनिष्ठ पतिव्रता सिद्ध करती हुई गंगासिंह की पत्नी पर चरित्रहीन होने तक का आरोप लगा देती है। तिघरिया होने का ताना देती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि विवेचित कहानी की कथानायिका पद्मावती है। पद्मावती का चरित्र एक ओर स्त्री की दयनीय दशा पर प्रकाश डालता है दूसरी ओर सामाजिक रूढ़ियों पर प्रहार करता है। कहानी के अन्य सभी चरित्र भी इसे ही पुष्ट करते हैं। पात्रों की संख्या सीमित है, लेकिन कहानी के विकास और मूल संवेदना को व्यक्त करने में सक्षम है।

18.5 परिवेश

कहानी में वास्तविकता का पुट देने के लिये देशकाल अथवा वातावरण का प्रयोग किया जाता है। शैलेश मटियानी की सुहागिनी स्वतंत्रता के बाद की कहानी है। स्वतंत्रता के बाद की कहानियों में विषयवस्तु के हिसाब से एक स्पष्ट वर्गीकरण महानगरीय, शहरी एवं ग्रामीण बोध का दिखाई देता है। शैलेश मटियानी की अधिकांश कहानियाँ ग्रामीण परिवेश से जुड़ी हुई है। इस कहानी की पृष्ठभूमि उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र के अल्मोड़ा जिले के एक गांव की है। जहाँ अभी भी पारम्परिक मान्यतायें अपना स्थान बनाये हुए हैं। अपने सीमित परिवेश के कारण कहानी में वर्णित कुमाऊँनी पृष्ठभूमि में आंचलिकता अधिक मुखर हो उठी है,जो इसकी विशेषता भी है। इसके साथ श्री प्रभाकर श्रोत्रिय का यह कथन अक्षरक्ष: लागू होता है -" शैलेश की कहानी में पहाड़ की वीरानी, विशिष्ट किस्म के संकट, समस्याएं, सहजता, प्रेम, उदासीनता, सुख-दुख, खास तरह की कर्मण्य दार्शनिकता, प्राकृतिक वैभव, जीवन-शैलीआदि एक स्तर पर स्थानीय ठंग से उभरते हैं, लेकिन एक अन्य स्तर पर इतने वृहदीकृत और सार्वजनीन हो उठते हैं, मानों वे मनुष्य-मात्र के संवेदन-संघर्ष हों।" सुहागिनी में इन सभी भावों का मूर्तरूप दिखाई देता है। परिवेश विशेष को केन्द्र में रखकर लिखी गई कहानियों को आंचलिक कहानियों की श्रेणी में रखा जाता है। इस दृष्टि से शैलेश मटियानी की विवेच्य कहानी को भी आंचलिक कहानी की श्रेणी में रखा जाता है।

अभ्यास प्रश्न

3. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

क)बुद्धिबल्लभ .... ब्राह्मण है। (प्रकाण्ड /धर्मभीरू)

ख)शैलेश मटियानी की अधिकांश कहानियाँ .... परिवेश से जुड़ी हुई है। (शहरी/ग्रामीण)

ग)कहानी की पृष्ठभूमि....................... है। (कुमाऊँनी / गढ़वाली)

18.6 संरचना-शिल्प

संरचना शिल्प के अन्तर्गत यहाँ शैली, संवाद और भाषा पर विचार करेंगे। कहानी में जितना महत्व कथा का होता है उतना ही उसके प्रस्तुतीकरण का भी होता है। कहानी की विषयवस्तु, परिवेश तथा कहानी की मूल संवेदना के अनुरूप उसकी भाषा, शैली भी होती है।

18.6.1 शैली

प्रस्तुतीकरण के ढंग में कलात्मकता लाने के लिए उसको अलग अलग भाषा व शैली से सजाया जाता है। सुहागिनी की शैली वर्णनात्मक है। कहानी में एक घटनाक्रम चलता रहता है और उसके साथ-साथ उस घटना से जुड़ी कोई याद भी चलती रहती है। इससे कहानी की मार्मिकता बढ़ जाती है। यह कहानी के कथ्य के अनुरूप ही है। कहानी में पूर्वदीप्ति शैली चमत्कार पैदा करती है। कहीं इसका प्रयोग कथा का विकास करता है, कहीं भावों को उद्दीप्त करता है और कहीं घटनाक्रम की संगति-विसंगति को प्रभावशाली ढंग से उजागर करता है। प्रस्तुत कहानी में पुरानी स्मृतियों का प्रभावशाली उपयोग हुआ है। कथ्य के अनुरूप शैली का प्रयोग हुआ है। इससे कहानी अधिक प्रभावशाली हो गई है।

18.6.2 भाषा और संवाद

कहानी का दूसरा मुख्य आधार है, भाषा। वर्णन और संवाद दोनों ही जगह भाषा की सृजनात्मकता कहानी की सम्प्रेषणीयता को बढ़ाती है। प्रस्तुत कहानी में शैलेश मटियानी की भाषा कथ्य के अनुरूप अत्यंत प्रभावशाली है। भाषा में चित्रात्मकता है। घटकलश के साथ पद्मावती का विवाह प्रसंग हो अथवा इस ताम्रकलश के पिचक जाने पर पद्मावती का करुण प्रलाप या फिर गंगासिंह हेडमास्टर का पद्मावती से चुहल करना, सभी प्रसंगों का वर्णन पाठक के सामने एक सजीव चित्र का बिम्ब बना देते हैं। संवाद कहानी का प्रमुख अंग होते हैं। इनके द्वारा पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व एवं अन्य मनोभावों को प्रकट किया जाता है। ऐसे ही जो संवाद हैं उनकी भाषा भी पात्रों तथा समय के अनुकूल है। कहानी का परिवेश और कथ्य बहुत अधिक विस्तृत नहीं है, इसीलिये पात्रों की भाषा में बहुत अधिक वैविध्य नहीं है। पात्रों के के चरित्र और मानसिकता को उजागर करते हैं-

पद्मावती के भाई के चरित्र और विवशता को यह एकमात्र कथन पूरी तरह से अभिव्यक्त कर देता है-

'पद्मा, मेरा अन्त समय आ गया है। बहुतों की सद्गति करके उनका तारण मैंने किया है, मगर अब मुझे अपना ही तारण दुर्लभ हो रहा है। तेरा भाई-पिता जो-कुछ हूँ मैं ही अभागा दरिद्र ब्राह्मण हूँ, पद्मा! मैं अभागा अपने भाई का धर्म नहीं निभा सका, मगर तू तो कल्याणी कुललक्ष्मी है ! तू अपनी दया निभा दे। तुझे सुहागिन देखने से मेरा

तारण हो जायेगा।.....लली, इतना मैं भी समझता ही हूँ कि ताँबे का कलश सुहाग के कंकण-मंगलसूत्र ही दे सकता है, सुहाग का सुख नहीं दे सकता मगर........ इसी के प्रतिक्रियास्वरूप पद्मावती का कहना और प्रतिक्रिया **-''बोज्यू, इस वृद्धावस्था में मुझे सुहागिन बना दो !''......और एकदम भरने के बाद ओंधी पड़ी ताँबे की कलशी-जैसी छलछलाती ही चली गई थी, बिलखती ही गई थी-हे राम!हे राम! हे राम!** बहुत ही प्रभावशाली संवाद है जिसमें भाई की व्यथा की अनुभूति, पद्मावती की वृद्धावस्था में विवाह वह भी ताँबे के कलश के साथ, की विवशता का भाव,प्रस्तुत कथन में अभिव्यक्त हुआ है। ओंधी पड़ी कलशी से तुलना और बिलखना ही **-हे राम!हे राम! हे राम!** इसे और भी मार्मिक बनाते हुए पद्मावती के मनोभावों को एकदम सजीव कर देता है। इसी प्रकार कमलावती बोज्यू का यह कथन **'लली, बहुत शकुन गाती हो तुम।......और इतनी मधुर मीठी आवाज में कि लगता है, तुम सिर्फ शकुन गाने के लिए ही जन्मी हो, सुनने के लिए नहीं!** जैसे पद्मावती का भाग्य ही बाँच देता है।

भाषा में विषय को हृदयग्राही बनाने की क्षमता दृष्टिगोचर हुई है। इसमें स्वाभाविक रूप से काव्यात्मकता आ गई है।

कहानी की पृष्ठभूमि कुमाऊँ क्षेत्र की होने के कारण भाषा में कुमाऊँनी शब्दों और मुहावरों का प्रयोग मिलता है। ललीज्यू, लली, छणछणाट, पाँत, दीठ, शकुन-आंखर बौराणाज्यू, छिः हाड़ी, खसिया, खसिणी आदि शब्द इसी अंचल की भाषा के हैं। सामान्यत: शुद्ध संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग हुआ है, लेकिन भाषा सुबोध और सुगम है। कहीं-कहीं अपभ्रश-लाज-शरम और उर्दू के लफन्दर, खसम जैसे शब्दों का प्रयोग भी मिलता है।

अभ्यास प्रश्न

4. सुहागिनी कहानी में शैली का क्या महत्व है? बताइए।

....
....
....
....
....

5.कहानी में प्रयुक्त कुमाऊँनी के पाँच शब्द चुनिए और उनके अर्थ लिखिए।

....
....

....
....
....

6. मैं तुझ-जैसी कमनियत खसिणी नहीं हूँ-पतिव्रता ब्राह्मणी हूँ। तू मत रोना जब तेरा खसम भी मरे तो। कसम है तुझे तेरी ही औलाद की.....!

उपर्युक्त संवाद की भाषागत विशेषताएँ बताइये।

....
....
....
....
....
....
....

18.7 मूल्यांकन

कहानी के विश्लेषण के बाद उसका मूल्यांकन करना आसान हो जाता है। यहाँ मूल्यांकन का तात्पर्य कहानी के बारे में कोई निर्णय देना नहीं वरन् लेखक की दृष्टि, प्रतिपाद्य और शीर्षक की उपयुक्तता पर विचार करना है।

रचनाकार की दृष्टि और कहानी का प्रतिपाद्य सुहागिनी कहानी का कथ्य पद्मावती के बड़ी उम्र तक अविवाहित रह जाने पर धार्मिक मान्यता के अनुसार विवाह अनिवार्य होने के कारण ताम्रकलश के साथ विवाह पर आधारित है। विवाह न हो पाना अपने में ही एक अभाव का द्योतक है, उस पर घड़े के साथ विवाह विद्रूपता को उभारता है। पूरे रीति-रिवाजों के साथ एक कल्पना पुरुष के साथ विवाह करना कितना त्रासद है, इसकी सघन अनुभूति होती है। लेखक ने बहुत गहराई से इस सामाजिक विसंगति को उभारा है कि सामाजिक विपन्नता जहाँ किसी कन्या का विवाह न होने का कारण हैं वहीं धार्मिक दृष्टि से विवाह होना नितांत आवश्यक है। पाप का भागी बनने से बचने और मोक्ष प्राप्ति के लिए हिन्दू कन्या का विवाह आवश्यक है। कहानी केवल मनोरंजन अथवा कथा कहने के लिए नहीं होती, उसका एक निश्चित उद्देश्य भी होता है। प्रस्तुत कहानी के माध्यम से हमारी धार्मिक मान्यताओं और सामाजिक विषमताओं को उजागर किया गया है। सामाजिक रीति रिवाज तथा मान्यताओं की बेडियों में जकड़े समाज की विद्रूपता को उभारा गया है। जाति, धर्म और लिंगभेद को रेखोकित करती कहानी यह सोचने को विवश करती है कि किस प्रकार इनके कारण हमारा समाज विकारग्रस्त हो रहा है। पद्मावती उच्च

ब्राह्मण किन्तु दरिद्र कुल में जन्म लेने और सुंदर न होने से नैतिकता और धर्म के बंधन के कारण स्वाभाविक जीवन नहीं जी पाती, कुंठित हो जाती है। उसकी यह कुंठा ताम्रकलश को पतिरूप में मानते हुए तरह-तरह की कल्पनाओं और अपने सतीत्व और पतिव्रता होने के झूठे दम्भ के रूप में दिखाई देती है। इसे उजागर करना ही कहानी का मुख्य उद्देश्य है जिसमें मटियानी जी पूर्णतया सफल हुए हैं।

कहानी का शीर्षक 'सुहागिनी' कहानी के मूल तथ्य के अनुरूप है। हमारी सामाजिक मान्यताओं में स्त्री का सुहागिन होना सम्मान का प्रतीक माना जाता है। जिसका विवाह न हुआ हो अथवा जिसके पति की मृत्यु हो गई हो उन्हें कमतर माना जाता है। सुहागिन स्त्री को पति की मान मर्यादा, संरक्षण और सुख प्राप्त होता है। लेकिन विवेच्य कहानी में पद्मावती को इनमें से कुछ भी प्राप्त नहीं है, मात्र सुहागिन होने का नाम है। कहानी का शीर्षक इसी विडम्बना को उजागर करता है।

18.8 सारांश

- इस इकाई के अध्ययन के बाद कहानीकार 'शैलेश मटियानी' की कहानी 'सुहागिनी' का तात्विक विवेचन कर सकते हैं। अब आप कहानी की कथावस्तु की विशेषतायें समझ गये हैं। अत: आप कथ्य के आधार पर कहानी का विश्लेषण कर सकते हैं।
- कहानी के पात्रों, परिवेश, कहानी की भाषागत शिल्पगत विशेषताओं, कहानी के प्रतिपाद्य और कहानीकार की दृष्टि पर प्रकाश डाल सकते हैं।
- कहानी के शीर्षक की उपयुक्तता और सार्थकता सिद्ध कर सकते हैं।
- उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर समग्रता में कहानी का मूल्यांकन कर सकते हैं।
- साहित्यिक दृष्टि से कहानी का महत्व बता सकते हैं।

18.9 शब्दावली

कठबाड़	:	लकड़ी का घेरा या चौहद्दी
ललीज्यू/लली	:	ननद
छणछणाट	:	कांसे के बर्तन में पानी की बूंदें गिरने की ध्वनि स्वर
पाँत	:	पंक्ति
दीठ	:	नजर, दृष्टि
शकुन-आंखर	:	मंगलगीत।

बौराणाज्यू	:	बहूरानी।
छिः हाड़ी	:	दुरदुराना।
खसिया/खसिणी	:	क्षत्रियों के लिए एक सम्बोधन।
टमटा	:	ताँबे के बरतन बनाने-बेचने वाले।
बालसंन्यासिनी	:	ऐसी लड़की जिसने बचपन में ही सन्यास ले लिया हो।
रहट	:	कुएं से पानी निकालने का यंत्र ।
सुआ	:	तोता ।
अन्तर्गुहा	:	हृदय का अन्तरतम।
अवसन्न	:	व्यथित, पीड़ित।
शालिग्राम	:	भगवान विष्णु।
पातर	:	वेश्या
कदलीपत्रों की पालकी	:	केले के पत्तों से बना भगवान का आसन।
सम्प्रेषणीयता	:	समझ में आने योग्य विचार
खसम	:	पति
घटविवाह	:	घड़े के साथ विवाह किए जाने की परम्परा
सार्वजनीन	:	सब लोगों का
वृहदीकृत	:	विस्तृत रूप में
संवेदन-संघर्ष	:	सम्वेदना के स्तर पर संघर्ष
अक्षरक्ष:	:	पूर्णतया

18.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क) (×)

ख) (√)

ग) (√)

2. क) ऊपरी रूप में स्वयं को सात्विक ब्राह्मणी के रूप में श्रेष्ठ मानने का भाव है पर भीतर ही भीतर लम्बी उम्र तक अविवाहित रह जाने की कुण्ठा और बेबसी है।

ख) मौसमी फूलों या पीपल के पत्तों का गुच्छा ताम्र-कलश के ऊपर इसलिए रखने लगी थी, ताकि कौवों की चोंच पानी तक न पहुँच सके, ताकि ताम्र-कलश की एकदम ऊपरी जल-परत पर उभरा हुआ मुखबिम्ब खण्डित न हो सके, जिसमें वह अपने कल्पनापुरुष के रूप को देखती है। इसमें भी अप्रत्यक्ष रूप से यह उसकी दमित भावनाओं का प्रतीक है।

3. क)धर्मभीरू

ख) ग्रामीण

ग) कुमाऊँनी

4. सुहागिनी की शैली वर्णनात्मक है। कहानी में एक घटनाक्रम चलता रहता है और उसके साथ-साथ उस घटना से जुड़ी कोई याद भी चलती रहती है। इससे कहानी की मार्मिकता बढ़ जाती है। यह कहानी के कथ्य के अनुरूप ही है। कहानी में पूर्वदीप्ति शैली चमत्कार पैदा करती है। कहीं इसका प्रयोग कथा का विकास करता है, कहीं भावों को उद्दीप्त करता है और कहीं घटनाक्रम की संगति-विसंगति को प्रभावशाली ढंग से उजागर करता है। प्रस्तुत कहानी में पुरानी स्मृतियों का प्रभावशाली उपयोग हुआ है। कथ्य के अनुरूप शैली का पंयोग हुआ है। इससे कहानी अधिक प्रभावशाली हो गई है।

5. शब्द		**अर्थ**
ललीज्यू	-	ननद
छणछणाट	-	कांसे के बर्तन में पानी की बूंदें गिरने की ध्वनि
पाँत	-	पंक्ति
दीठ	-	नजर, दृष्टि
शकुन-आंखर	-	मंगलगीत

6. यह संवाद कहानी की सम्प्रेषणीयता को बढ़ाता है। आम बोलचाल की भाषा है। भाषा में चित्रात्मकता है। उर्दूमिश्रित खड़ी बोली का प्रयोग मिलता है। कमनियत, खसम, औलाद और कसम उर्दू के शब्द हैं। प्रस्तुत अंश में शैलेश मटियानी की भाषा कथ्य के अनुरूप है।पद्मावती की कुंठा गंगासिंह की पत्नी को उलाहना और कोसना देने में व्यक्त हुई है। उसे कमनियत खसिणी और जब तेरा खसम भी मरे कहना गालीसूचक है जो पद्मावती के चरित्र और मानसिकता को उजागर करता है।

18.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मटियानी, शैलेश, सुहागिनी तथा अन्य कहानियां

2 श्रोत्रिय प्रभाकर,अर्द्धांगिनी : स्मृति और यथार्थ की सहयात्री, 234 पृष्ठ,

3. पहाड़-13, 2001, परिक्रमा, तल्ला डांडा, नैनीताल।

18.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वर्मा, धनन्जय आज की हिन्दी कहानी ,
2. सिंह, संतबख्श : नई कहानी कथ्य और शिल्प, अभिनव प्रकाशन, इलाहाबाद
3. सिंह, नामवर, कहानी : नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली इलाहाबाद
4. यादव, राजेन्द्र, एक दुनिया समानान्तर, सम्पादकः, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. विकल्प कथा साहित्य विशेषांक , विकल्प प्रकाशन, इलाहाबाद

18.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. सुहागिनी कहानी की कथावस्तु का विश्लेषण करते हुए कथावस्तु की विशेषताएँ बताइये।
2. सुहागिनी कहानी के आधार पर पद्मावती का चरित्र-चित्रण कीजिए।
3. सुहागिनी की भाषागत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. सुहागिनी की शिल्पगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
5. सुहागिनी की कथावस्तु बताते हुए शीर्षक की उपयुक्तता और सार्थकता सिद्ध कीजिए।
6. कहानी के तत्वों के आधार पर समग्रता में कहानी का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 19 - जैनेन्द्र कुमारः परिचय एवं कृतित्व

इकाई की रूपरेखा

19.1 प्रस्तावना
19.2 उद्देश्य
19.3 जीवन परिचय/रचनाएँ
19.3.1 जीवन परिचय
19.3.2 रचनाएँ
19.4 कृतित्व
19.5 सारांश
19.6 शब्दावली
19.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
19.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
19.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
19.10 निबंधात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों में जैनेन्द्रकुमार (२ जनवरी, १९०५- २४ दिसंबर, १९८८) का विशिष्ट स्थान है। वह हिंदी उपन्यास के इतिहास में मनोविश्लेषणात्मक परंपरा के प्रवर्तक के रूप में मान्य हैं। जैनेन्द्र अपने पात्रों की सामान्यगति में सूक्ष्म संकेतों की निहिति की खोज करके उन्हें बड़े कौशल से प्रस्तुत करते हैं। उनके पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ इसी कारण से संयुक्त होकर उभरती हैं। जैनेन्द्र के उपन्यासों में घटनाओं की संघटनात्मकता पर बहुत कम बल दिया गया है। चरित्रों की प्रतिक्रियात्मक संभावनाओं के निर्देशक सूत्र ही मनोविज्ञान और दर्शन का आश्रय लेकर विकास को प्राप्त होते हैं।

19.2 उद्देश्य

बी0ए0एच0एल0-101 की यह 19वीं इकाई हैं। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप –

- जैनेन्द्र कुमार के जीवन से परिचित हो सकेंगे।
- जैनेन्द्र कुमार के रचना संसार का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- जैनेन्द्र कुमार के साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को समझ सकेंगे।

- जैनेन्द्र कुमार साहित्य में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों से परिचित हो सकेंगे।

19.3 जीवन परिचय/रचनाएँ

19.3.1 जीवन परिचय

जैनेन्द्र कुमार का जन्म २ जनवरी, सन १९०५, में अलीगढ़ के कौड़ियागंज गांव में हुआ। उनके बचपन का नाम आनंदीलाल था। इनकी मुख्य देन उपन्यास तथा कहानी के क्षेत्र में है। इसके अतिरिक्त एक साहित्य विचारक के रूप में भी आपका स्थान विशिष्ट है। इनके जन्म के दो वर्ष पश्चात इनके पिता की मृत्यु हो गई। इनकी माता एवं मामा ने ही इनका पालन-पोषण किया। इनके मामा ने हस्तिनापुर में एक गुरुकुल की स्थापना की थी। वहीं जैनेन्द्र की प्रारंभिक शिक्षा -दीक्षा हुई। उनका नामकरण भी इसी संस्था में हुआ। उनका घर का नाम आनंदी लाल था। सन १९१२ में उन्होंने गुरुकुल छोड़ दिया। प्राइवेट रूप से मैट्रीक परीक्षा में बैठने की तैयारी के लिए वह बिजनौर आ गए। १९१९ में उन्होंने यह परीक्षा बिजनौर से न देकर पंजाब से उत्तीर्ण की। जैनेन्द्र की उच्च शिक्षा काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हुई। १९२१ में उन्होंने विश्वविद्यालय की पढ़ाई छोड़ दी और कांग्रेस के असहयोग आंदोलन में भाग लेने के उद्देश्य से दिल्ली आ गए। कुछ समय के लिए ये लाला लाजपत राय के 'तिलक स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स' में भी रहे, परंतु अंत में उसे भी छोड़ दिया।

सन् १९२१ से २३ के बीच जैनेन्द्र ने अपनी माता की सहायता से व्यापार किया, जिसमें इन्हें सफलता भी मिली। परंतु सन् २३ में वे नागपुर चले गए और वहाँ राजनीतिक पत्रों में संवाददाता के रूप में कार्य करने लगे। उसी वर्ष इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और किन्तु तीन माह के बाद छूट गए। दिल्ली लौटने पर इन्होंने व्यापार से अपने को अलग कर लिया। जीविका की खोज में ये कलकत्ते भी गए, परंतु वहाँ से भी इन्हें निराश होकर लौटना पड़ा। इसके बाद इन्होंने लेखन कार्य आरंभ किया। २४ दिसंबर १९८८ को उनका निधन हो गया।

19.3.2 रचनाएँ

उपन्यासः 'परख' (१९२९), 'सुनीता' (१९३५), 'त्यागपत्र' (१९३७), 'कल्याणी' (१९३९), 'विवर्त' (१९५३), 'सुखदा' (१९५३), 'व्यतीत' (१९५३) तथा 'जयवर्धन' (१९५६), 'मुक्तिबोध'।

कहानी संग्रहः 'फाँसी' (१९२९), 'वातायन' (१९३०), 'नीलम देश की राजकन्या' (१९३३), 'एक रात' (१९३४), 'दो चिड़ियाँ' (१९३५), 'पाजेब' (१९४२), 'जयसंधि' (१९४९) तथा 'जैनेन्द्र की कहानियाँ' (सात भाग)।

निबंध संग्रहः 'प्रस्तुत प्रश्न' (१९३६), 'जड़ की बात' (१९४५), 'पूर्वोदय' (१९५१), 'साहित्य का श्रेय और प्रेय' (१९५३), 'मंथन' (१९५३), 'सोच विचार' (१९५३), 'काम, प्रेम और परिवार' (१९५३), तथा 'ये और वे' (१९५४)।

अनूदित ग्रंथः 'मंदालिनी' (नाटक-१९३५), 'प्रेम में भगवान' (कहानी संग्रह-१९३७), तथा 'पाप और प्रकाश' (नाटक-१९५३)।

सह लेखनः 'तपोभूमि' (उपन्यास, ऋषभचरण जैन के साथ-१९३२)।

संपादित ग्रंथः 'साहित्य चयन' (निबंध संग्रह-१९५१) तथा 'विचारवल्लरी' (निबंध संग्रह-१९५२)।

19.4 कृतित्व

जैनेन्द्र अपने पथ के अनूठे अन्वेषक थे। उन्होंने प्रेमचन्द के सामाजिक यथार्थ के मार्ग को नहीं अपनाया, जो अपने समय का राजमार्ग था। लेकिन वे प्रेमचन्द के विलोम नहीं थे, जैसा कि बहुत से समीक्षक सिद्ध करते रहे हैं, वे प्रेमचन्द के पूरक थे। प्रेमचन्द और जैनेन्द्र को साथ-साथ रखकर ही जीवन और इतिहास को उसकी समग्रता के साथ समझा जा सकता है। जैनेन्द्र का सबसे बड़ा योगदान हिन्दी गद्य के निर्माण में था। भाषा के स्तर पर जैनेन्द्र द्वारा की गई तोड़-फोड़ ने हिन्दी को तराशने का अभूतपूर्व काम किया। जैनेन्द्र का गद्य न होता तो अज्ञेय का गद्य संभव न होता। हिन्दी कहानी ने प्रयोगशीलता का पहला पाठ जैनेन्द्र से ही सीखा। जैनेन्द्र ने हिन्दी को एक पारदर्शी भाषा और भंगिमा दी, एक नया तेवर दिया। आज के हिन्दी गद्य पर जैनेन्द्र की अमिट छाप है। जैनेन्द्र के प्रायः सभी उपन्यासों में दार्शनिक और आध्यात्मिक तत्वों के समावेश से दुरूहता आई है परंतु ये सारे तत्व जहाँ-जहाँ भी उपन्यासों में समाविष्ट हुए हैं, वहाँ वे पात्रों के अंतर का सृजन प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि जैनेन्द्र के पात्र बाह्य वातावरण और परिस्थितियों से अप्रभावित लगते हैं और अपनी अंतर्मुखी गतियों से संचालित। उनकी प्रतिक्रियाएँ और व्यवहार भी प्रायः इन्हीं गतियों के अनुरूप होते हैं। इसी का एक परिणाम यह भी हुआ है कि जैनेन्द्र के उपन्यासों में चरित्रों की भरमार नहीं दिखाई देती। पात्रों की अल्पसंख्या के कारण भी जैनेन्द्र के उपन्यासों में वैयक्तिक तत्वों की प्रधानता रही है।

क्रांतिकारिता का तत्व भी जैनेन्द्र के उपन्यासों के महत्वपूर्ण आधार है। उनके सभी उपन्यासों में प्रमुख पुरुष पात्र सशक्त क्रांति में आस्था रखते हैं। बाह्य स्वभाव, रुचि और व्यवहार में एक प्रकार की कोमलता और भीरुता की भावना लिए होकर भी ये अपने अंतर में महान विध्वंसक होते हैं। उनका यह विध्वंसकारी व्यक्तित्व नारी की प्रेमविषयक अस्वीकृतियों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप निर्मित होता है। इसी कारण जब वे किसी नारी का थोड़ा भी आश्रय, सहानुभूति या प्रेम पाते हैं, तब टूटकर गिर पड़ते हैं और तभी उनका बाह्य स्वभाव कोमल बन

जाता है। जैनेन्द्र के नारी पात्र प्रायः उपन्यास में प्रधानता लिए हुए होते हैं। उपन्यासकार ने अपने नारी पात्रों के चरित्र-चित्रण में सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया है। स्त्री के विविध रूपों, उसकी क्षमताओं और प्रतिक्रियाओं का विश्वसनीय अंकन जैनेन्द्र कर सके हैं। 'सुनीता', 'त्यागपत्र' तथा 'सुखदा' आदि उपन्यासों में ऐसे अनेक अवसर आए हैं, जब उनके नारी चरित्र भीषण मानसिक संघर्ष की स्थिति से गुजरे हैं। नारी और पुरुष की अपूर्णता तथा अंतर्निर्भरता की भावना इस संघर्ष का मूल आधार है। वह अपने प्रति पुरुष के आकर्षण को समझती है, समर्पण के लिए प्रस्तुत रहती है और पूरक भावना की इस क्षमता से आल्हादित होती है, परंतु कभी-कभी जब वह पुरुष में इस आकर्षण-मोह का अभाव देखती है, तब क्षुब्ध होती है, व्यथित होती है। इसी प्रकार से जब पुरुष से कठोरता की अपेक्षा के समय विनम्रता पाती है, तब यह भी उसे असह्य हो जाता है।

साहित्य की प्रचलित धाराओं के बरअक्स अपनी एक जुदा राह बनाने वाले जैनेन्द्र को गांधी दर्शन के प्रवक्ता, लेखक के रूप में याद किया जाता है। हिन्दू रहस्यवाद, जैन दर्शन से प्रभावित जैनेन्द्र का सम्पूर्ण साहित्य सृजन प्रक्रिया की विलक्षणता और सुनियोजित संश्लिष्टता का अनन्यतम उदाहरण है। जैनेन्द्र के बारे में अज्ञेय ने कहा था आज के हिन्दी के आख्यानकारों और विशेषतय: कहानीकारों में सबसे अधिक टेक्निकल जैनेन्द्र हैं। टेक्नीक उनकी प्रत्येक कहानी की और सभी उपन्यासों की आधारशिला है। स्त्री विमर्श के प्रबल हिमायती जैनेन्द्र ने कहानी के अंदर प्रेम को संभव किया।

1905 में अलीगढ़ के कौडियागंज गांव में जन्मे आनंदी लाल ने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि वे आगे चलकर साहित्यकार जैनेन्द्र कुमार बनेंगे। चार माह की उम्र में ही उनके सिर से पिता का साया उठ गया। मां और मामा भगवानदीन ने उन्हें पाला पोसा। बहरहाल बचपन अभावग्रस्त, संघर्षमय बीता और युवावस्था तक आते-आते नौकरी जिंदगी का अहम् मकसद बन गयी। दोस्त के बुलावे पर नौकरी के लिए कलकत्ता पहुँचे मगर वहाँ भी निराशा ही हाथ लगी।

प्रत्येक रचनाकार का अपना निजी दृष्टिकोण होता है। अपने दृष्टिकोण से ही वह जीवन और जगत को देखता, समझता है तथा एक विचार-सरणी का निर्माण करता है। यह विचार-सरणी ही साहित्य-क्षेत्र में 'दर्शन' कहलाती है। दार्शनिक विचारों की दृष्टि से जैनेन्द्र के विचारों में स्पष्टता की अपेक्षाकृत कमी है और उनके विचार प्रायः अस्पष्ट और दुरूह प्रतीत होते हैं। उनके विचारों में इस अस्पष्टता के कारण सुप्रसिद्ध आलोचक पं0 नन्ददुलारे वाजपेयी ने तो जैनेन्द्र के दर्शन को 'दर्शन-हीन दर्शन' कहकर पुकारा था। वैसे जैनेन्द्र जी के विचारों पर गाँधी-दर्शन का प्रभाव है, किन्तु उन्हें अकर्मण्य गाँधीवादी कहना अधिक उपयुक्त है। एक विद्वान आलोचक ने उचित ही कहा है-

‘‘उनके विचार-दर्शन में स्यादवाद की-सी एक निर्मम अस्पष्टता और दुरूहता रहती है। जैनेन्द्र विचारों से गाँधीवादी माने जाते हैं, परन्तु वह अकर्मण्य गाँधीवादी हैं। अपने कथा-साहित्य में अहिंसा, मानव-प्रेम, सर्वोदय आदि की भावना का अंकन करते हुए भी वह गाँधीवाद की उस चारित्रिक दृढता, उदारता और शक्ति के रहस्य को नहीं समझ पाए हैं जो गाँधी-दर्शन का मूलाधार है और व्यक्ति को अन्याय के विरूद्ध अहिंसात्मक अनवरत संघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान करता है। इसी कारण जैनेन्द्र-साहित्य में हमें गाँधीवाद का वास्तविक रूप नहीं मिलता। उन्होंने गाँधी के रहस्यवाद को एक आकर्षक लबादे के रूप में ओढ़कर उसके नीचे अपनी स्वाभाविक अकर्मण्यता, व्यक्तिगत कुंठा और नियतिवाद को ढांकने का प्रयत्न किया है। इसी कारण जैनेन्द्र के प्रधान पात्र अकर्मण्य तथा अपनी वैयक्तिक कुंठाओं से ग्रस्त,पलायनवादी और संघर्ष के सामने घुटने टेक देनेवाले रहे है।"

उनके चरित्रों में गाँधीवादी अहिंसात्मकता की प्रधानता होते हुए भी गाँधीवादी कर्मठता का अभाव है, इस तथ्य को रेखांकित करते हुए डॉ0 राजेश्वर गुरू ने निम्नांकित उद्गार व्यक्त किए हैं-

‘‘जैनेन्द्र का कथा-साहित्य विद्रोह का साहित्य है। वह व्यक्ति-स्वातंन्त्र्य को समाज की वेदी पर बलि होते देखकर क्षुब्ध हो उठता है। उनका विद्रोह तेजस्विता के साथ मुखर हो उठता है। उन्होंने समाज में गिरी हुई नारी की जैसी हिमायत की वैसी किसी क्रांतिदृष्टा की कृति और वाणी में ही संभव है। पर समाज को एकदम नकार कर उसको आमूल नया बनाने की कोशिश करने वाला समाज की साधारणता के साथ मेल न खा सकने के कारण समाज कसे दूर जा पड़ता है। यहीं उस व्यावहारिकता की आवश्यकता पड़ती है जो गाँधी जैसे क्रांतिदृष्टा की कृति और वाणी में ही संभव है। पर समाज को एकदम नकार कर उसको आमूल नया बनाने की कोशिश करने वाला समाज की साधारणता के साथ मेल न खा सकने के कारण समाज से दूर जा पड़ता है। यहीं उस व्यावहारिकता की आवश्यकता पड़ती है जो गाँधी जैसे क्रांतिदृष्टा से मिलती है। बाद में जैनेन्द ने गाँधीवाद को स्वीकार किया है, किन्तु गाँधीवाद का व्यावहारिक पक्ष जिस सामंजस्य को साधकर चलना चाहता है, वह जैनेन्द्र के कथा-साहित्य में भी नहीं मिलता। तभी उनकी कथा-कृतियाँ एक बेचैनी-सी जगाकर रह जाती हैं। तभी लगता है कि उनकी कट्टो, उनकी सुनीता, उनकी मृणाल उनके विरूद्ध एक आरोप-पत्र, एक अभियोग-पत्र लिए जनता की अदालत में खड़ी हैं।"

जैनेन्द्र ने यद्यपि बेजबानों को सहनशीलता के माध्यम से वाणी तो प्रदान की है किन्तु उनके प्रति सहानुभूति-संवेदना जैसी कुछ, जितनी कुछ जागनी चाहिए, वह नहीं जग पाती।

विवेचन की दृष्टि से जैनेन्द्र-साहित्य में अभिव्यक्त विचार-दर्शन पर निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत विचार किया जा सकता है-

(क) व्यक्तिवादिता की प्रधानता- जैनेन्द्र के साहित्य का स्वर व्यक्तिवाद-प्रधान है। वे व्यक्ति को समाज से पृथक् करके उसको व्यक्तिवादी रूप में देखते और चित्रित करते हैं। इसी कारण उनके कुछ पात्र तो घोर व्यक्तिवादी हो गये हैं। इस संदर्भ में जैनेन्द्र का अपना मत यह है कि 'व्यक्ति के आंतरिक रूप के आधार पर ही उसको भली प्रकार और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है।' उनकी इस विचारधारा पर प्रकाश डालते हुए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है-

''जैनेन्द्र की साहित्य-सृष्टि व्यक्तिमुखी है। उनका सम्बन्ध जीवन के व्यापक स्वरूपों से कम ही है। वे वैयक्तिक मनोभावों और स्थितियों के चित्रकार हैं। वे सामाजिक जीवन के वास्तविक प्रवाह से दूर जाकर आध्यात्मिक, सूक्ष्म-तत्वों को चित्रित करने का लक्ष्य रखते हैं। जैनेन्द्र सामाजिक जीवन से दूर जाकर जिस साहित्य की सृष्टि करते हैं, उसमें व्यक्ति के मानसिक संघर्ष और उसकी परिस्थितिजन्य समस्याएँ प्रमुख रूप से सामने आती हैं, परन्तु उनका निराकरण करने में लेखक का दृष्टिकोण स्वस्थ और स्पष्ट नहीं है।"

जैनेन्द्र के साहित्य में व्यक्तिवादिता का प्रबल आग्रह मिलने के संदर्भ में एक अन्य विद्वान आलोचक ने भी लिखा है-

''व्यक्ति को समाज से अलग करके उसकी मानसिक कुंठाओं और ऊहापोहों का सूक्ष्म विश्लेषण करने में ही जैनेन्द्र की आस्था रही है। उनका व्यक्ति समाज के नैतिक बंधनों, मर्यादाओं और आदर्श के घेरे में छटपटाता दिखाई पड़ता है। वह इस घेरे को तोड़कर मनमानी करने का प्रयत्न करता है, परन्तु समाज का चक्र उसे कुचलकर रख देता है। ऐसा चित्रण कर जैनेन्द्र प्रकारान्तर से व्यक्ति-स्वातंन्त्र्य की मांग उठाते हैं। उनके इस व्यक्ति-स्वातंन्त्र्य का रूप पूर्णतः प्रतिक्रियावादी और समाज-निरपेक्ष है। यह व्यक्ति-स्वातंन्त्र्य है उन अकर्मण्य पलायनवादी व्यक्तियों का व्यक्ति-स्वातंन्त्र्य है, जो समाज की नैतिक मान्यताओं के विरूद्ध विद्रोह करने का प्रयत्न तो करते हैं, उन्हें भंग भी करते हैं, परन्तु समाज द्वारा कुचले जाकर अपने आत्म-पीड़न में ही सुख का अनुभव करते हुए यह सोचते रहते हैं कि वह समाज की रंचमात्र भी चिन्ता नहीं करते। ऐसे कुंठाग्रस्त अकर्मण्य व्यक्ति हमारे मध्य-वर्ग के ही प्राणी होते हैं। उनके विद्रोह को कुछ-कुछ आधुनिक हिप्पियों का सा विद्रोह माना जा सकता है।"

(ख) आत्म-पीड़न का अस्वस्थ रूप- जैनेन्द्र ने गाँधीवादी आत्म-पीड़न को अपनाया तो है किन्तु वह उसके स्वस्थ रूप के स्थान पर उसके विकृत रूप को ही अपनाते मिलते हैं। गाँधी जी ने आत्म-पीड़न को उन्हीं अवसरों पर प्रयुक्त किया था जब वे कोई अन्याय अथवा अत्याचार होते देखते थे। अनेक अवसरों पर उन्होंने इस शस्त्र का सफलतापूर्वक प्रयोग किया और इसके द्वारा वे हिन्दू-मुस्लिम दंगों को बन्द कराने अथवा आंग्ल-सरकार को झुकाने में सफल भी हुए थे। अभिप्राय यह है कि गाँधी जी का आत्म-पीड़न मात्र आत्म-पीड़न के लिए नहीं होता था अपितु उसका उद्देश्य अन्याय या अत्याचार का प्रतिरोध करना होता था। इसके सर्वथा विपरीत जैनेन्द्र

के पात्र आत्म-पीड़न को मात्र आत्म-पीड़न के लिए अपनाते मिलते हैं। उदाहरणार्थ उनके उपन्यास 'त्यागपत्र' की नायिका मृणाल को लिया जा सकता है जो अकारण ही गंदी बस्ती में घुल-घुल कर मर जाती है, किन्तु अपने भतीजे प्रमोद के साथ रहना स्वीकार नहीं करती। जैनेन्द्र के पात्रों की इस व्यक्तिवादिता, कुंठाग्रस्तता और आत्मपीड़न को उद्धाटित करते हुए एक विद्वान आलोचक ने उचित ही कहा है-

''जैनेन्द्र के कुंठाग्रस्त और आत्म-पीड़न का मार्ग अपनाते हैं, परन्तु इस आत्म-पीड़न से उनका कोई कल्याण नहीं होता, उन्हें अपनी मानसिक समस्याओं से कुक्ति नहीं मिलती। इस आत्म-पीड़न में उन्हें ऐसे ही सुख का अनुभव होता रहता है, जैसा अनुभव खुजली के मरीज को खुजाते-खुजाते स्वयं को लहू-लुहान करने में मिलता है। इसका केवल इतना ही परिणाम निकलता है कि ऐसे पात्र पाठकों की करूणा, दया और सहानुभूति का थोड़ा- सा अंश प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं। जैनेन्द्र का यह एक अनोखा आदर्शवाद है। वस्तुतः यह एक ऐसे व्यक्ति का आदर्शवाद है जो स्वभाव से नियतिवादी, पलायनशील और अकर्मण्य है।"

(ग) काम-कुंठा का प्राधान्य- जैनेन्द्र के कथा-साहित्य के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि उनके अधिकांश पात्र काम-कुंठा से ग्रस्त हैं। इस तथ्य से तो इंकार नहीं किया जा सकता कि व्यक्ति की काम-भावना उसकी मूल-प्रवृत्तियों में से एक है, किन्तु वह स्वस्थ व्यक्ति के जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग ही मानी जा सकती है, उसका ध्येय नहीं स्वीकार की जा सकती। मानव की काम-भावना के नियमन के लिए ही समाज ने विवाह-प्रथा का आश्रय लिया है, किन्तु मनोवैज्ञानिकों ने इस तथ्य को उभारा है कि इच्छित जीवन-साथी न मिलने की दशा में अथवा व्यक्ति की रूचि-भिन्नता के कारण वह प्रायः अन्य नर-नारियों से नहीं मिल पाते, जिसके कारण उनके अन्तर्मन कुंठित हो उठते हैं और वे उनके जीवन-व्यवहार में अनेक प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न कर देते हैं। इस स्थिति को स्वीकार करते हुए भी यह नहीं माना जा सकता कि ऐसे नर-नारियों को ही अपनी रचनाओं के नायक या नायिकाएँ बनाकर समाजिकों के समक्ष, समाज के इस विकृत रूप को ही प्रस्तुत किए जाए।

एक विद्वान आलोचक के शब्दों में-''जैनेन्द्र यद्यपि फ्रॉयड से पूर्ण-रूपेण प्रभावित नहीं है, फिर भी उनके पात्रों में हमें काम-कुंठा का ही प्राधान्य मिलता है। वह कहीं नग्नवाद का सहारा लेते हैं और कहीं अपने पात्रों की इसी कुंठा से ग्रस्त जीवन में भटकते हुए दीखते हैं, साथ ही वह नग्न अश्लीलता से ऊपर उठकर प्रेम के उदार रूप का निर्माण भी करते हैं। उन्होंने इस कुंठा पर दार्शनिकता का लबादा डालकर उसके रूप को परिवर्तित करने का प्रयत्न अवश्य किया है, लेकिन यह लबादा इतना झीना है कि काम-कुंठा का नग्न रूप उसके भीतर से झाँकता साफ दिखाई दे जाता है।"

इस संदर्भ में जैनेन्द्र के अपने विचार भी अवलोकनीय हैं- ''प्रेम ही कामुकता, आर्थिक स्वार्थ तथा हिंसक या महाकांक्षी पर विजय जा सकता है। नीति-नियम, आदेश, मर्यादा वैसा

करने में असमर्थ सिद्ध होते हैं। असल में आस्तिक राक्षसी प्रेम और परस्परता के माध्यम से वैसी हो सकती है, शुद्ध मर्यादा से नहीं रह सकती। परस्परता ही नीति है, नैतिकता और शीलता है, परस्परता के विपरीत जो है, सब अनैतिकता और हिंसा है।"

(घ) वैयक्तिक कुंठाओं की प्रधानता- जैनेन्द्र के पात्रों में जहाँ काम-कुंठा की प्रधानता है, वहीं वे अन्य प्रकार की कुंठाओं से भी ग्रस्त मिलते हैं। इस सन्दर्भ में एक विद्वान आलोचक ने उचित ही कहा है कि 'जैनेन्द्र के आरम्भिक कथा-साहित्य में जो प्रधान पात्र आए हैं उनमें हमें वैयक्तिक कुंठाओं का प्राधान्य और प्राबल्य मिलता है। ये ऐसे कुंठाग्रस्त पात्र हैं जो अपनी वैयक्तिक कुंठाओं की पूर्ति के लिए सामाजिक-नैतिक बंधनों का उल्लंघन करते हैं और इस अपराध के लिए समाज द्वारा प्रताड़ित किए जाने पर उसके विरूद्ध सशक्त संघर्ष न कर भाग खड़े होते हैं और अपनी उन कुंठाओं को ही एकान्त में सहलाते रहते हैं। जैनेन्द्र ने अपने इन पात्रों का निर्माण स्वयं अपने स्वभाव और चरित्र के अनुसार किया है, ऐसा आभास मिलता है।"

जैनेन्द्र स्वभाव से भीरू, संघर्षो से पलायन करने वाले तथा अन्तर्मुखी व्यक्ति रहे हैं। भय से उन्होंने राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेना प्रायः बन्द कर दिया था और बारह-तेरह वर्षो तक साहित्य-सृजन से भी मुख मोड़े, अकर्मण्यों का सा अज्ञात जीवन बिताते रहे थे। जिस समय उन्होंने दोबारा लिखना आरंभ किया था, उस समय उनकी मानसिक स्थिति अशान्त और विक्षुब्ध थी। लेखन द्वारा उन्होंने अपनी इस मानसिक स्थिति से मुक्ति पाने का प्रयत्न किया था। जैनेन्द्र की यह स्थिति निराशवादी और नियतिवादी वाली स्थिति थी। इसी कारण उनके द्वारा रचित पात्रों में भी हमें उनकी इस मानसिक स्थिति की प्रतिच्छाया मिलती है। अंतर्मुखी व्यक्ति मूलतः पलायनवादी होता है।

(ङ) नयी नैतिक मर्यादाओं की स्थापना- एक विद्वान आलोचक के शब्दों में- ''जैनेन्द्र ने प्रेम के क्षेत्र में नयी नैतिक मान्यताओं की स्थापना की है या यह कहिए कि वे प्रेम के क्षेत्र में नैतिक मर्यादाओं के विरोधी हैं। उनका मत है कि मर्यादा के बन्धन कामुकमता को बढ़ावा दिया करते हैं और उससे मन में कुंठा उत्पन्न होती है। अपनी इस धारणा के कारण ही वे प्रेम के क्षेत्र में नारी की पूर्ण स्वतंत्रता के समर्थक हैं। उनके प्रथम चार उपन्यासों में, उनकी नायिकाओं को जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है उससे यही ध्वनि निकलती है कि नारी प्रत्येक स्थिति में प्रेम करने के लिए स्वतंत्र है। विवाह-पूर्व नारी का प्रेम कभी-कभी उसके वैवाहिक जीवन में उमड़कर उसकी शंति भंग कर देता है। ऐसे अवसरों पर यदि नारी सतीत्व के नाम पर अपने उस प्रेम पर बंधन लगाती है तो क्या उसे सतीत्व के बराबर नहीं माना जा सकता? परन्तु जैनेन्द्र ने नारी की इस समस्या का उदार पति की दृष्टि से समाधान करने का प्रयत्न किया है। उनके तीन उपन्यासें में से 'सुनीता' की सुनीता, 'सुखदा' और 'विवर्त' की मोहिनी अपने उदार पतियों की सहमति और स्वीकृति पाकर अपने प्रेमियों के पास जाती है, परन्तु ये तीनों ही नारियाँ अन्ततः टूट जाती हैं। पति ही ऐसी अभिशप्त नारियों की परम गति बन जाते है।"

जैनेन्द्र ने अपने आरंभिक उपन्यासों में पतियों को जिस उदार रूप में प्रस्तुत किया है, उससे यह संकेत मिलता है कि जैनेन्द्र का अभिप्राय यह ध्वनित करना रहा है कि यदि आधुनिक वैवाहिक जीवन को सफल-सरल बनाना है, तो पतियों का अपनी पत्नियों के चारित्रिक स्खनल की ओर उदार दृष्टिकोण होना चाहिए। उनके इस दृष्टिकोण को असंगत बताते हुए एक विद्वान आलोचक ने उचित ही यह मत व्यक्त किया है-

''पत्नी के प्रति पति की इस उदारता में ही जैनेन्द्र का प्रेम सम्बंधी आदर्शवाद रूप पाता है। इस उदारता के रूप में जैनेन्द्र सम्यक् दाम्पत्य का संकेत देते हैं। जैनेन्द्र अपने इस संकेत को दार्शनिकता के ताने-बाने से बुनकर ऐसा आकर्षक सूत प्रदान करते हैं कि पाठकों को वह सहज स्वीकार्य हो सके। यह एक प्रकार से वर्तमान समाजिक-नैतिक व्यवस्था के प्रति एक अराजकतापूर्ण दृष्टिकोण है। जैनेन्द्र के साथ सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि इस उन्मुक्त स्वच्छन्द प्रेम के साथ उनकी सतीत्व की भावना भी लगी-लपटी चलती है। 'त्यागपत्र' की मृणाल इसका उदाहरण है। मृणाल के लिए तन का कोई मूल्य या महत्व नहीं है। उसे वह दूसरों को ऐसे दे डालती है जैसे वह कुछ भी नहीं हो। फिर भी जैनेन्द्र उसे सती घोषित करते हुए उसे अत्यंत सूक्ष्म तंतु के सहारे पति के साथ जोड़े रहते है। सुनीता, सुखदा, कल्याणी, मोहिनी आदि सभी नारियाँ स्वच्छंद प्रेम की आकांक्षा रखते हुए भी पतियों के साथ जुड़ी रहती है। वस्तुतः सतीत्व की भावना वायवी है, यथार्थ नहीं। यह जैनेन्द्र के विचित्र, अव्यावहारिक आदर्शवाद की उपज है।"

(च) नारी-सम्बन्धी भाव-विचार- जैनेन्द्र के अधिकांश अपन्यासों में नारियों को ही प्रमुखता प्रदान की गई है और वे नारी प्रधान अथवा नायिका प्रधान हैं। उनके उपन्यासों के सुखदा, सुनीता, कल्याणी जैसे नामकरण भी इसी तथ्य का उद्घाटन करते हैं कि उनमें नारी-पात्रों के चरित्रांकन को ही बलपूर्वक प्रस्तुत किया गया होगा। अपने नायिका प्रधान उपन्यासों में जैनेन्द्र ने नारी-जीवन से सम्बन्धित प्रेम, विवाह, नारी-स्वातन्त्र्य आदि समस्याओं को उभारा है और उनके उपन्यासों का मूलस्वर नारियों को अधिक से अधिक अधिकार प्रदान करवाने का रहा है। उन्होंने एक स्थान पर लिखा भी है-

''पुरूष बनाता है, विधाता बिगाड़ देता है- अंग्रेजी की एक कहावत है। संशोधन यह भी किया जा सकता है- पुरूष बनाता है, स्त्री बिगाड़ देती है। तब भी इस कहावत में तथ्य कम नहीं रहता। बात वास्तव में यह है कि पुरूष कम बनाता-बिगाड़ता है, जो कुछ बनाती-बिगाड़ती-स्त्री ही। स्त्री ही सभी कार्यों को बनाती है, घर से कुटुम्ब बनाती है। जाति और देश को मैं कहता हूँ कि स्त्री ही बनाती है, फिर इन्हें बिगाड़ती भी वही है। आनन्द भी वही और कलह भी वही, हरा भी और उजाड़ भी, दूध भी और खून भी, रोटी भी और क्रीम भी और फिर आपकी मरम्मत और श्रेष्ठता भी-सब कुछ स्त्री ही बनाती है। कर्म स्त्री पर टिका है, सभ्यता स्त्री पर निर्भर है और फिर फैशन की जड़ भी वही है। बात क्यों बढ़ाओ, एक शब्द में कहो, दुनियां स्त्री पर टिकी है। जो

आँखों से देखते है, चुपचाप इस तथ्य को स्वीकार कर दुबके बैठे रहते हैं, ज्यादा चूँ नहीं करते। जिनकी आँखें नहीं, वे मानें या न मानें, हमारी बला से।"

डॉ0 रामरतन भटनागर ने जैनेन्द्र के नारी-सम्बन्धी दृष्टिकोण को रवीन्द्रनाथ ठाकुर और शरच्चन्द्र से मिलता दिखते हुए लिखा है-

''रवीन्द्र बाबू और शरच्चन्द्र नारी-जीवन की इस द्वैध स्थिति को स्वाभाविक मानकर चलते हैं और सिद्धान्त नहीं गढ़ते। जैनेन्द्र इसे नारी की अग्रगामिता मानकर चलते हैं और घर के प्रति उसके जाग्रत विद्रोह को विकास का चिन्ह मानते हैं। यह विद्रोह उनके उपन्यासों में क्रमशः आया है। 'सुनीता' में बुद्धुपन है, 'सुखदा' में विस्फोट है और 'विवर्त' में लालसा है। 'व्यतीत' में इसे सहज रूप में लिया गया है। पति अकल्पित रूप में उदार हैं, प्रारंभ से ही पत्नियोंके सहायक हैं कि किसी प्रकार प्रयत्न सार्थक बनें। इसी से घर के प्रति विद्रोह या नारी-स्वतंत्रता का नारा धीमा पड़ गया है। इस प्रकार जैनेन्द्र के उपन्यासों की नायिकाएँ आधुनिकाएँ है। वे गृह-प्राचीरों में बन्दी होना अस्वीकार करती हैं या अपने दाम्पत्य जीवन से असंतुष्ट हैं। इसी बीच में नया या पुराना प्रेमी आ जाता है और घर की ऊब से बचकर चलने के लिए वह उसे डूबने का सहारा बना लेती है, परन्तु अन्त तक चलते रहना उनके लिए असंभव है। जहाँ रवि बाबू पति के बलिदान से नारी के प्रत्यागमन के लिए मार्ग खोलते हैं। वहाँ शरच्चन्द्र प्रेमी के बलिदान से दम्पति के पास आने की कल्पना करते हैं। प्रेमी मृत्यु द्वारा हटा लिया गया है, परन्तु उसकी पुण्य-स्मृति ने टूटे हुए दो हृदयों को जोड़ दिया है। जहाँ नारी स्वयं बलि की वेदी पर चढ़ गई है, वहाँ पति और प्रेमी उसकी पुण्य-स्मृति में बंधे हैं। जैनेन्द्र के उपन्यासों में इस त्रिकोण की क्या स्थिति है? 'सुनीता' में प्रेमी पलायन कर जाता है, क्योंकि उनका प्रेम बाहरी तन का है और सुनीता जब निराश होकर यह सत्य प्रकट कर देती है, तो वह सत्य की इस चकाचौंध को सहन नहीं कर पाता और भाग जाता है। उदाराशय पति, पलायनशील प्रेमी जो कलाकार और क्रांतिकारी बनने की आत्म-प्रवंचना में ग्रस्त है और घर-बाहर, सतीत्व-नारीत्व, पति-प्रेमी के बीच में झूलती हुई पतिनिष्ठा। परन्तु नारी-स्वातन्त्र्य का दम भरकर प्रेम के स्वच्छन्द पथ पर चलने का साहस करने वाली नारी के टूटने की कहानी ही जैनेन्द्र के उपन्यासों में वर्णित है। वर्णित ही अधिक है, चित्रित कम है। कला की रंग-रेखाओं से नहीं, ज्ञान और टेकनीक की मुद्राओं से वह विभूषित है।"

अभ्यास प्रश्न

(1) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए –

1. जैनेन्द्र कुमार का जन्म...................वर्ष में हुआ है।
2. जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास...............में आते है।
3. जैनेन्द्र कुमार का निधन.................वर्ष में हुआ।
4. परख जैनेन्द्र का..................उपन्यास है।

5. वातयन जैनेन्द्र का...............है।

(2) हाँ/ नहीं में उत्तर दीजिए –

1. फाँसी जैनेन्द्र का कहानी संग्रह है ।
2. जैनेन्द्र की तुलना शरतचन्द्र से की गई है।
3. जैनेन्द्र हिंदी साहित्य में पहली बार मनोविज्ञान का प्रवेश कराने वाले साहित्यकार हैं।
4. जैनेन्द्र कुमार प्रेमचन्द की परम्परा के साहित्यकार है।
5. जैनेन्द्र के उपन्यासों में स्त्री-स्वतंत्रता का प्रश्न उठाया गया है।

19.5 सारांश

अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार जैनेन्द्र के दार्शनिक विचारों में अस्पष्टता है, उसी प्रकार उनकी नारी-सम्बन्धी मान्यताएँ भी अस्पष्ट-सी हैं और उनके नारी-पात्र पाठकों के समक्ष एक पहेली-से प्रतीत होते हैं। यदि मृणाल को ही लिया जाए तो यह बात समझ में नहीं आती कि यह तथ्य उसके पतिव्रता होने का प्रमाण कैसे कहा जाएगा कि वह पति को अपने विवाह-पूर्व प्रेमी के बारे में बताए। चलो इस तथ्य को तो किन्ही अंशों तक उसके पतिव्रत्य का अंग माना भी जा सकता है, किन्तु पति की इस इच्छा का अंधानुकरण करना कि वह उसके साथ रहना पसन्द नहीं करता, मृणाल के पतिव्रत्य का प्रमाण कैसे माना जा सकता है? यदि पति से अलग रहते हुए वह अपने सतीत्व की रक्षा करती रहती तो भी एक बात थी, किन्तु न जाने किस तर्क के आधार पर वह कोयले वाले को अपना शरीर सौंपते हुए उसे भी पति जैसा अधिकार प्रदान कर देती है। यह जानते हुए भी कि यह कोयले वाला उसके रूप का लोभी है, वह उसके प्रति इस तथ्य के कारण बड़ी दयार्द्र है कि वह उसके लिए अपने बीवी-बच्चों को त्यागकर आया है। कहना न होगा कि यह जैनेन्द्र के परम्परा-विरोधी दृष्टिकोण का ही परिचायक है। कुल मिलाकर जैनेन्द्र का साहित्य हिंदी साहित्य में एक नए तरह की प्रवृत्ति लेकर आया है। इनका साहित्य पहली बार व्यक्ति स्वातंत्र्य (विशेषकर स्त्री) के प्रश्न पर इतने विस्तार से विचार करता है। गद्य साहित्य की कलात्मक अभिव्यंजना की दृष्टि से भी जैनेन्द्र का साहित्य उल्लेखनीय है।

19.6 शब्दावली

- मनोविश्लेषणात्मक - अवचेतन मन के रहस्यों का विश्लेषण करना।
- कुंठा - दमित इच्छाएँ
- पलायन - कर्म से भागने की प्रवृत्ति
- सतीत्व - पति/पत्नी के लिए अपने को नष्ट करने की भावना।

19.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) 1. 2, जनवरी 1905

2. मनोविश्लेषणात्मक परंपरा
3. 1988
4. उपन्यास
5. कहानी-संग्रह

(2) 1. हाँ
2. हाँ
3. हाँ
4. नहीं
5. हाँ

19.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, माया एवं कृष्णदेव शर्मा, त्यागपत्रः एक विवेचन।
2. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास।

19.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भटनागर, नामरतन – जैनेन्द्र : साहित्य और समीक्षा।

19.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. जैनेन्द्र-साहित्य में दृष्टव्य उनके विचार-दर्शन पर प्रकाश डालिए।
2. ‘‘जैनेन्द्र विचारक और चिन्तक पहले हैं, साहित्यकार बाद में।"-इस कथन को जैनेन्द्र-साहित्य से उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
3. जैनेन्द्र-साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए सिद्ध कीजिए कि जैनेन्द्र के विचारों में स्पष्टता की अपेक्षाकृत कमी है और उनका दृष्टिकोण परम्परा-विरोधी रहा है।
4. ‘‘वैसे तो जैनेन्द्र के विचार-दर्शन पर गाँधीजी का प्रभाव है, किन्तु उन्हें अकर्मण्य गाँधीवादी कहना अधिक उपयुक्त है।"-इस कथन की युक्तियुक्त समीक्षा कीजिए।
5. पं0 नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार, ‘जैनेन्द्र का दर्शन’ दर्शन-हीन है। आप उनके इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं? तर्कपूर्ण उत्तर दीजिए।

इकाई 20 त्यागपत्रः पाठ एवं व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

20.1 प्रस्तावना
20.2 उद्देश्य
20.3 मूलपाठ
20.4 व्याख्या
20.5 सारांश
20.6 शब्दावली
20.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
20.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
20.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
20.10 निबंधात्मक प्रश्न

20.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने जैनेन्द्र कुमार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन किया। उस इकाई में आपने जाना कि जैनेन्द्र कुमार का साहित्य एक नई तरह की प्रवृत्ति लेकर हिंदी साहित्य में आया। उस समय प्रेमचंद की सामाजिक समस्याओं को लेकर चलने वाला साहित्य प्रचलन में था। जैनेन्द्र जी ने उस परम्परा से भी व्यक्ति मन को, व्यक्ति स्वातंत्र्य को साहित्य के केन्द्र में खड़ा किया। इस इकाई में हम जैनेन्द्र कुमार के प्रसिद्ध उपन्यास एवं कालजयी उपन्यास 'त्यागपत्र' के मूलपाठ का अध्ययन करेंगे। यह उपन्यास हिंदी साहित्य में विशिष्ट स्थान रखता है। जैनेन्द्र जी की साहित्य साधना 'त्यागपत्र' में स्पष्टतः परिलक्षित होती है। इस इकाई में हम 'त्यागपत्र' के महत्वपूर्ण अंशों का पाठ करेंगे। उसके पश्चात् उन अंशों की व्याख्या करने का भी प्रयत्न करेंगे जिससे जैनेद्र के मूल साहित्य से आपका परिचय हो सके।

20.2 उद्देश्य

बी0ए0एच0एल0-101 की यह 20वीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

- जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास 'त्यागपत्र' के मुख्य अंश से परिचित हो सकेंगे।
- 'त्यागपत्र' की व्याख्या कर सकेंगे।
- 'त्यागपत्र' में आये पारिभाषिक शब्दावलियों से परिचित हो सकेंगे।

20.3 मूलपाठ

(1)

...नहीं भाई, पाप पुण्य की समीक्षा मुझसे न होगी। जज हूँ, कानून की मर्यादा जानता हूँ। पर उस तराजू की को भी जानता हूँ। इसलिए कहता हूँ कि जिनके ऊपर राई को नाप-जोखकर पापी को पापी कहकर व्यवस्था देने का दायित्व है, वे अपनी जाने। मेरे बस का वह काम नहीं है। मेरी बुआ पापिष्ठा नहीं थीं, यह भी कहने वाला मैं कौन हूँ। पर आज मेरा जी अकेले में उन्हीं के लिए चार आंसू बहाता है। मैंने अपने चारों ओर तरह तरह की प्रतिष्ठा की बाड़ खड़ी करके खूब मजबूत जमा ली है। कोई अपवाद उसको पार कर मुझ तक नहीं आ सकता, पर उन बुआ की याद जैसे मेरे सब कुछ को खट्टा बना देती है। क्या वह याद मुझे अब चैन लेने देगी! उनके मरने की खबर अभी पाकर बैठा हूँ। वह सुखपूर्वक नहीं मरीं, पर इतना तो मैं उनकी मौत के दसियों वर्ष पहले से जानता था। फिर भी जानना चाहता हूँ कि अन्त समय क्या उन्होंने अपने इस भतीजे को भी याद किया था ? याद किया होगा, यह अनुमान करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

हम लोगों का असली घर पछाँह की ओर था। पिता प्रतिष्ठा वाले थे और माता अत्यन्त कुशल गृहणी थीं। जैसी कुशल थीं, वैसी कोमल भी होतीं तो? पर नहीं, उस 'तो'-? के मुँह में नहीं बढ़ना होगा। बढ़े कि गये। फिर तो सारी कहानी उस मुँह में निगलकर समा जाएगी और उसमें से निकलना भी नसीब न होगा। इतना ही हम समझें कि माँ जितनी कुशल थीं, उतनी कोमल नहीं थीं। बुआ पिताजी से काफी छोटी थीं। मुझसे कोई चार-पाँच वर्ष बड़ी होंगी। मेरी माता के संरक्षण में मेरी ही भाँति बुआ भी रहती थीं। वह संरक्षण ढीला न था और आज भी मेरे मन में उस अनुशासन की कड़ाई के लाभालाभ पर विचार चला करता है।

पिताजी दो भाई और तीन बहनें। भाई पहले तो ओवरसियरी में युक्त प्रान्त के इन-उन जिलों में रहे। फिर एकाएक, उनकी इच्छा के अनुकूल उन्हें बर्मा भेज दिया गया। वह तबसे वहीं बस गये और धीमे-धीमे आना-जाना एक राह रस्म की बात रह गयी। इधर वह सिलसिला भी लगभग सूख चला था। दो बड़ी बहनें विवाहित होने के बाद प्रसव-संकट में चल बसीं थीं। अकेली यह छोटी बुआ रह गयी थीं। पिताजी उनको बड़ा स्नेह करते थे। उनकी सभी इच्छाएँ वह पूरी करते। पिता का स्नेह बिगाड़ न दे, इस बात का मेरी माता को खास ख्याल रहता था। वह अपने अनुशासन में सावधान थीं। मेरी माँ बुआ से प्रेम करती थीं, यह तो किसी हालत में नहीं कहा जा सकता; पर आर्य गृहणी का जो उनके मन में आदर्श था, मेरी बुआ को वे ठीक उसी के अनुरूप ढालना चाहती थीं।

ऐसे ही ब्याह के दिन आते गये और ब्याह हो गया। विवाह होने से पहले बुआ कई घण्टे अपनी छाती से मुझे चिपकाये बहुत-बहुत आँसू रोती रहीं।.....बुआ के जाते समय फूट-फूट कर

रोया। मैंने किसी की शर्म नहीं की। मैंने चलकर घूँघट वाली बुआ का आँचल पकड़ लिया। कह दिया मैं बिना बुआ के अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगा, नहीं करूंगा।

पास ही माँ खड़ी थीं। उनको देखकर जी हो आया कि मैं क्यों उनके गले नहीं लग जाऊँ और कहूँ, 'माँ! माँ!' उनकी ठोड़ी हाथ में लेकर कहूँ 'मेरी माँ! मेरी माँ!' इतने में बुआ ने मेरे हाथ में रेशम का रूमाल थमाया और एक झपट में वहाँ से चली गयीं। मैं सँभल भी न पाया था कि द्वार के आगे से मोटर जा चुकी थी।

(2)

चौथे रोज बुआ आ गयीं। ब्याह के वक्त मैंने अपने फूफा को देखा था। बड़ी-बड़ी मूँछें थीं और उम्र ज्यादा मालूम होती थी। डील-डौल में खासे थे। मुझे यह पीछे मालूम हुआ कि उनका यह दूसरा विवाह था। हमारी बुआ फूल-सी थीं। जब वह ससुराल से आयीं, मेरे लिए कई तरह की चीजें लायी थीं। उन्होंने मुझे एकान्त में ले जाकर कहा, ''प्रमोद, देखेगा, मैं तेरे लिए क्या-क्या लायी हूँ?''

अगले रोज एक कागज देकर मुझे शीला के यहाँ भेजा गया। मैं शीला को जानता था। उसके कोई बड़े भाई हैं, यह मैं नहीं जानता था। कागज उन्हीं के हाथों में देने को कहा गया था। शीला के बड़े भाई मुझे अच्छे लगे। मैंने जब यह कागज उन्हें दिया, तब उसे लेकर वह मेरी उपस्थिति को इतना भूल गये कि मुझे अपना अपमान मालूम हुआ। लेकिन फिर उन्होंने मुझे बहुत ही प्रेम किया, चूमा, गोद में लिया, कन्धे पर बिठाया और तरह-तरह की खानें की चजें दीं। शीला भी मुझको अच्छी लगीं। मेरा जी हुआ कि कोई बहाना हाथ लगे, तो मैं यहाँ रोज आया करूँ। शीला के भाई ने भी एक चिट्ठी लिखकर मेरी जेब में रख दी।

इसके बाद किसी विशेष बात होने की मुझे याद नहीं। अगले रोज फूफा आये। मेरा मन उनकी तरफ खुला नहीं। फूफा ने सफर की सब सुविधा का प्रबंध कर दिया। बुआ को तनिक कष्ट न होगा। यहाँ से जगह तीन सौ मील ही तो है। मोटर में जाएँगे, न हुआ तो रास्ते में दो-एक जगह पड़ाव कर लेंगे। डाक-बंगले जगह-जगह हैं ही। पिताजी निश्चिंत रहे कि फूफा हमारी बुआ को जरा भी किसी तरह की तकलीफ न होने देंगे।

(3)

ब्याह के कोई आठ-दस महीने बाद की बात होगी। देखते क्या हैं कि बिना कुछ खबर दिये बुआ एक नौकर को साथ लेकर घर चली आयी हैं। पिता इस बात से अप्रसन्न हुए। पर क्या वह प्रसन्न नहीं हुए? माँ ने कोई नाराजगी प्रकट नहीं की, बल्कि उन्होंने तो परोक्ष में फूफा को काफी सर्द-गर्म तक कह डाला।

मैंने पूछा, 'तुम सच बताओ, वहाँ जाना चाहती हो या नहीं?''

बुआ ने कहा, ''सच बताऊँ?''

बोलीं, ''अच्छा सच बताती हूँ। मैं तेरे साथ रहना चाहती हूँ। रखेगा?''

यह कहकर उन्होंने ऐसे देखा कि मैं झेंप गया और उन्होंने मुझे खींचकर अपनी गोदी में ले लिया। फिर एकाएक मुझे अपने से चिपटाकर बोलीं, ''एक बात बता। तुझे बेंत खाना अच्छा लगता है?''

मैंने कहा, ''बेंत?''

बोलीं, ''सच-सच कहती हूँ, प्रमोद। किसी और से नहीं कहा, तुझे कहती हूँ। बेंत खाना मुझे अच्छा नहीं लगता है। न यहाँ अच्छा लगता है, न वहाँ अच्छा लगता है।''

मैं आश्चर्य में रह गया। बोला, ''क्या कहती हो बुआ? वह मारते हैं।''

'हाँ मारते हैं।''

.....

''क्यों मारते हैं?''

'मैं खराब हूँ, इसलिए मारते हैं।''

(4)

एक दिन ऐसा हुआ कि मैंने माँ से पूछा, ''माँ, बुआ का कोई हाल आया है? अबकी छुट्टियों में मैं उनके पास जाऊँगा।'' सुनकर माँ फटी आँखों मुझे देखती रह गयीं, बोली नहीं।

बहुत दिनों बाद जो बात मैंने जानी, वह यह थी कि पति ने बुआ को त्याग दिया है। बुआ दुश्चरित्र हैं और फूफा को मालूम है कि वह सदा से ऐसी हैं। 'छोड़ दिया', इसका मतलब एकाएक समझ में नहीं आया। छोड़ कहाँ दिया है? क्या वह खुद चली गयी हैं, या किसी अलग स्थान पर उनको रख दिया है, या उसी घर में ही हैं और संबंध-विच्छेद हो गया है? पता चला कि उसी शहर में एक छोटे से घर में रख दिया है, कोठरी है।

इसके थोड़े दिनों बाद पिताजी का देहान्त हो गया। अब हम जरा संकुचित भाव से रहने लगे, क्योंकि माँ बहुत सोच-विचार वाली थीं। झूठी शान से बचती थीं और मेरे बारे में ऊँची आशाएँ रखती थीं। इस बीच मैं एफ.ए. कर ही चुका था। थर्ड ईयर में पढ़ता था। यूनिवर्सिटी जा रहा था कि उस नगर के स्टेशन का बोर्ड देखकर एकाएक मन में संकल्प सा उठने लगा। मैं बुआ को ढूंढ़ निकालूँगा और कहूँगा-''बुआ तुम! यह तुम्हारा क्या हाल है? चलो। यहाँ से चलो।''

यूनिवर्सिटी से छुट्टी होते ही घर पहुँचने के लिए माँ ने लिख भेजा था। बात यह है कि मेरे ब्याह की बातचीत के सूत को उठाकर इस बार माँ उसमें पक्की गाँठ दे देना चाहती थीं। लेकिन लौटते हुए रास्ते के उस स्टेशन पर उतरे बिना मुझसे नहीं रहा गया और मैंने बुआ को खोज निकाला।

(5)

शहर के उस मुहल्ले में जाते हुए मेरा मन दबा आता था। कहाँ बुआ, कहाँ यह जगह, यह जिन्दगी! वहाँ नीचे दर्जे के लोग रहते थे। भीतर गली में गहरे जाकर बुआ की कोठरी थी। बनिया बाहर एक दुकान लेकर वहाँ दिन में कोयले का व्यवसाय करता था। मैं कोठरी के द्वार पर पहले तो ठिठका, फिर हिम्मत बाँध दरवाजा ठेलता हुआ अंदर चला गया।

मैं बुआ को देखता रह गया। मेरे भीतर जाने कैसी उथल-पुथल मची थी। मैं नहीं जानता था कि मैं क्या चाहता हूँ-इस सामने बैठी प्रगल्भ नारी को घृणा करना चाहता हूँ, या उसके प्रति कृतज्ञ होना चाहता हूँ। वह नारी अति निर्मम स्नेहभाव से मुझे देखती रही, कहती रही-''लेकिन यह स्वप्न में भी न सोचा था कि खोजते हुए तुम्हीं मुझे पा लोगे। सोचा यह था कि जब चित्त न मानेगा, तब अपने प्रयत्नों से दूर से ही तुम्हें देखकर जी-भर लिया करूँगी। प्रमोद, तुम मुझे घृणा कर सकते हो। लेकिन फिर भी ता मैं तुम्हारी बुआ हूँ।''

मैं उस काल अत्यन्त अवश हो आया था। जी हुआ कि यहाँ से भाग सकूँ, तो भाग जाऊँ; लेकिन जकड़ बैठा रह गया। मन पर बहुत बोझ पड़ रहा था। न क्रोध में चिल्लाया जाता था, न स्नेह के आवेग में रोया जाता था।

''प्रमोद, मेरी अवस्था देखते हो। तुमसे छिपाऊँगी क्या? यह गर्भ इसी आदमी का है।''

इसके बाद बहुत देर तक कोई कुछ नीं बोला। चुप, सुन्न, मानों सब कुछ ठहर गया। मानों समय जमकर खड़ी शिला हो गया। नीरवता ऐसी हो आयी कि हमारे संसार ही हमें हाय-हाय शोर करते हुए जान पड़ने लगे। ऐसे कितना समय बीता। त्रास दुर्वह हो गया। तब उस बर्फीली चट्टान-सी जमी हुई चुप्पी को तोड़कर बुआ ने कहा-'प्रमोद, तुम सोये तो अवश्य नहीं हो, और मैं जाने क्या-क्या बकती रही! कहनी-अन-कहनी जाने क्या-क्या कह गयी। दुहनया में मेरे तुम एक हो जिससे दुराव मुझसे नहीं सखा जाएगा। अच्छा अब तुतम आराम करो। मैं जरा पड़ोस के पास के एक बालक को देख आऊँ।'

मैं पड़ा ही रहा, बोला नहीं; और बुआ चली गयीं।

(6)

मैं वहाँ सो नहीं सका। मेरा मन बहुत घबराने लगा। जो कहानी सुनी है, उसे कैसे लूँ? कैसे झेलूँ? मुझसे वह सँभाली नहीं जाती थी। इलाज यही था कि मैं उसके तले से बचकर चला जाऊँ। चला जाऊँ उसी अपनी दुनिया में जहाँ रास्ता बना बनाया है और खुद अवज्ञा का द्योतक है।

मैं खड़ा हो गया था। कोट बाँहों में डाल लिया था, हैट हाथ में था। इस भाँति चलने को उद्यत, मैं उनके साने खड़ा हुआ अपने को भयंकर असमंजस में अनुभव कर रहा था। झुककर उनके पैर छू लूँ! हाँ, जरूर छूने चाहिए, पर मुझसे कुछ बन नहीं पड़ रहा था। उस समय मैंने, मानों देर हो रही हो भाव से, कलाई में बँधी घड़ी को सामने करके देखा और जरा माथा झुकाकर कहा- ''अच्छा बुआ प्रणाम।''

बुआ ने कहा, ''सुखी रहो भैया।'' लेकिन उस आर्शीवाद का स्नेह और कंपन कानों की राह प्राप्त करके मेरी गति और तीव्र हो गयी। मानों रुका नहीं कि जाने कौन मुझे पकड़ लेगा। तेज कदम बढ़ाता हुआ बाहर आया और सीधे स्टेशन की राह पकड़ ली। बाहर वह कोयले की दुकान दिखी, जहाँ वह व्यक्ति तराजू की डण्डी पर हाथ रखे हुए ग्राहकों को कोयला तोल रहा था। इस भय से कि वह मुझे देख न ले, झटपट नीचे आँख डालकर और तेज चाल से मैं बढ़ता चला गया, बढ़ता ही चला गया।

(7)

घर पर माँ ने पूछा, ''कहाँ गये थे? सतीश कहता था कि तुम एक रोज उससे पहले कालिज से चल दिये थे।''

मैंने कहा, ''बुआ को खोजता रह गया था। वे उस नगर में रहती हैं।''

जैसे किसी ने उन्हें डंक मारा हो, माँ ने कहा, ''कौन?''

''बुआ? मै उनसे मिलकर आया हूँ।''

माँ ने जोर देकर कहा-

''सुन प्रमोद, तेरी बुआ अब कोई नहीं है। मेरे सामने उसका नाम न लेना।''

''लेकिन सुनती हो अम्मा, मैंने कहा,'' ''मैं उनको भूल नहीं सकता हूँ।''

माँ ने कहा, ''तू जो चाहे कर, पर खबरदार जो मुझसे उसकी बात कही। कुल- बोरन कहीं की!''

मन में एक गांठ सी पड़ती जाती थी। वह न खुलती थी, न घुलती थी। बल्कि कुछ करो, वह और उलझती और कसी ही जाती थी। जी होता था, कुछ होना चाहिए था, कुछ करना चाहिए, कहीं कुछ गड़बड़ है। कहीं क्यों, सब गड़बड़- ही- गड़बड़ है। सृष्टि गलत है, समाज गलत है, जीवन ही हमारा गलत है। सारा चक्कर यह ऊटपटांग है। इसमें तर्क नहीं है, संगति नहीं है, कुछ नहीं है। इससे जरूर कुछ होना होगा, कुछ करना होगा। पर क्या- आ? वह क्या है, जो भवितव्य है और जो कर्तव्य है?

मेरे विवाह - संबंध की फिर बात चल पड़ी थी। इस बार का रिश्ता माँ बहुत ही अच्छा समझती थीं। कुल, शील, संपदा, की दृष्टि से तो अच्छा था ही, लड़की भी सुंदर, सुशील और शिक्षिता थी। देर यह थी कि मैं एक बार उनके यहाँ पहुँचकर कन्या को देख लूँ और कन्या मुझे देख ले। मैं इसको दिनों से टालता आया था। मुझे जाने क्यों अपने बारे में बहुत संकोच होता था। अपने में मैं शंकित ही बना रहता था, किसी तरह की अपनी बड़ाई भीतर से उबकर आती न थी। प्रशंसक मेरे भी थे। लेकिन अपनी प्रशंसा का कारण मुझे अपने में नहीं मिलता था। इसके विपरीत, अपन में जो मुझे मिलता था, उससे मैं कुछ और निराश हो आया था।

लेकिन इस बार वहाँ जाना ही पड़ा, और संयोग की बात कि उन्हीं डॉक्टर साहब के घर पर बुआ से भेंट हुई।

देखता हूँ कि डॉक्टर के घर पर छोटे बच्चे- बच्चियों को पढ़ा रही हैं, वे और कोई नहीं बुआ ही हैं। उस समय तो मैं कुछ नहीं बोला और उन्होंने मुझे देखकर न देख सकने का सा भाव दिखाया, लेकिन उस कारण मैं वहाँ कुछ काल प्रकृतस्थ नहीं रह सका।

लड़की ने मुझे नापसंद नहीं किया। (जहाँ तक मैं यह बात मान सकता हूँ) मेरे उन्हें नापसंद करने का सवाल नहीं था। देखकर मैं उनके रूप, गुण की समीक्षा में जा ही सका, किन्नर लोक की परी क्या होती हैं! राजनन्दिनी (यही नाम था) को पहली निगाह देखकर मेरा निश्चय बन चुका था। मैं झेंपकर रह गया था, बोल कुछ भी नहीं सका था; लेकिन दुर्भाग्यवश उस समय मेरा वाक्चातुर्य मेरा साथ छोड़ जाने कहीं चला गया था। इस अकृतार्थता पर अपने से उस समय मैं रुष्ट भी हो आया हूँगा, ऐसा प्रतीत होता है। वह रोष हठात प्रकट भी हो गया था, क्योंकि मुझे ज्ञात हुआ कि समझा गया है कि लड़की मुझे पूरी तरह पसंद नहीं है। निश्चय है कि इस भ्रम को यथाशीघ्र पूर्ण सफलता के साथ मैंने छिन्न- भिन्न ही कर दिया था।

तब मेरा चित्त भीतर कहीं संदिग्ध था, पूरी तरह वह खिलकर नहीं आ रहा था। कभी भीतर इस बात पर मैं दब आता था कि सच्चाई मैं खोल नहीं रहा हूँ। वह दबाव इतना हो गया कि जब चलने का समय आया, तब मैंने डॉक्टर साहब से मानों चुनौती के साथ कहा कि मास्टरनी मेरी बुआ हैं।

पर विधि- लीला! स्थिति में तनाव आया और मेरे झुकने पर भी वह न सँभली। रिश्ता टूट गया। सास, राजनंदिनी की माता, दृढ़ता से उसके प्रतिकूल थीं और बिरादरी को भी उसमें आपत्ति थी। डॉक्टर साहब को उसके टूटने की बहुत ग्लानि थी। उनसे मेरे अन्त तक संबंध बने रहे। और वे मुझे पत्रों में सदा अपना पुत्र ही लिखते रहे। नन्दिनी के दूसरे विवाह पर उन्होंने बहुत असंतोष भी प्रकट किया और कदाचित् कुछ उसका दुष्परिणाम भी सुनने में आया था। यह पता अवश्य लगा कि बुआ वह जगह छोड़ गयी हैं। छोड़कर कहाँ गयी हैं? राम जाने। इस दुनिया में क्या जगह उनकी है कि जहाँ जाएँ? कोई ऐसी जगह नहीं है। इसलिए आज तो सब जगह उनकी अपनी है। सब एक समान है।

(8)

बहुत हो गया?। अब समाप्त करूँ। जिन्दगी कहानी है और बुआ की कहानी में भी अब सार नहीं बचा है।

घटनाएँ होती हैं, होकर चली जाती हैं। हम जीते हैं, और जीते- जीते एक रोज मर जाते हैं। जीना किस उछाह से आरंभ करते हैं, पर उस जीवन के किनारे आते- आते कैसे ऊब, कैसी उकताहट जी में भर जाती है। मैं इस लीला पर, प्रहेलिका पर सोचता रह जाता हूँ। कुछ पार नहीं मिलता,कुछ भेद नहीं पाता।

मेरी माँ का देहान्त हो चुका था। इसकी खबर उन्हें देर से लगी, पर लगाते ही उन्होंने पत्र मुझे लिखा था। उस पत्र को कितनी बार मैंने नहीं पढ़र है। पढ़ता हूँ और पढ़कर रह जाता हूँ। सोचता हूँ, पर नहीं, कुछ नहीं सोचता। वह सब जाने दो।

बात को क्यों बढ़ाऊँ। उसमें मेरी ही कापुरुषता बढ़ी हुई दीखेगी। सार यही कि मैं उनको नहीं ला सका। पथ्य आदि की भी कोई विशेष व्यवस्था कर सका, यह भी नहीं कह सकता। एक स्थानीय परिचित वकील मित्र को सौ - दो सौ जाने कितने रुपये दे आया था और कह आया था कि ध्यान रखना। उन्होंने ध्यान तो रखा ही होगा, पैसा भी खर्चा वाजिब ही वाजिब किया गया होगा, यह भी निश्चित है।

इसलिए आज जो असली तराजू है उसमें हलका तुल रहा हूँ। आज इस सारी वकालत के पैसे और बुद्धिमत्ता की प्रतिष्ठा के ऊपर बैठकर सोचता हूँ कि क्यों मुझसे तनिक सरल सामान्य नहीं बना गया? इस सबका अब मैं क्या करूँ जब कि समय रहते प्रतिदिन के प्रेम से मैं चूक गया। यह सब मैल है जो मैंने बटोरा है। मैल कि मेरी आत्मा की ज्योति को ढाँक रहा है। मैं यह नहीं चाहता हूँ....।

उस बात को सत्रह से कुछ ऊपर ही वर्ष हो गये हैं। आज महाश्चर्य और महासंताप का विषय यह है कि किस अमानुषिकता के साथ सत्रह वर्ष मैं बुआ को बिना देखे काट गया? वह

बुआ, जिन्होंने बिना लिये दिया। जिन्होंने कुछ किया, मुझे प्रेम ही किया। जिनकी याद मेरे भीतर अब अंगार सी जलती है। जिनका जीवन कुछ हो, ऊपर उठती लौ की भाँति जलता रहा। धुआँ उठा तो उठा, पर लौ प्रकाशित रही। उन्हीं बुआ को एक तरफ डालकर, किस भाँति अपनी प्रताणना करता रह गया।

आज दिन है कि खबर आती है कि वह मर गयीं। कैसे मर गयीं- जानने की कोई जरूरत नहीं है। जो जाने बैठा हूँ, वही कम नहीं है। उसी को पचा सकूँ, तो कुछ- का - कुछ हो जाऊँ।

बुआ तुम गयीं। तुम्हारे जीते जी मैं राह पर न आया। अब सुनो, मैं यह जजी छोड़ता हूँ। जगत् का आरंभ - समारंभ ही छोड़ दूंगा। औरों के लिए रहना तो शायद नये सिरे से मुझसे सीखा जाए, आदतें पक गयी हैं; पर अपने लिए तो उतनी ही स्वल्पता से रहूँगा, जितना अनिवार्य होगा। यह वचन देता हूँ।

पुनष्च- इसी के साथ सही करता हूँ कि जजी से अपना त्याग- पत्र मैंने दाखिल कर दिया है।

20.4 व्याख्या

इस उपन्यास में सामाजिक मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति को जैनेन्द्र उद्धाटित करते हैं। प्रमोद और मृणाल के माध्यम से सामान्य मनुष्य की दुविधा को विवेचित करने में उपन्यासकार सफल रहा है। जब प्रमोद के विवाह की बात चलती है प्रमोद अपनी बुआ मृणाल की अवस्था को याद करने लगता है। प्रमोद अपनी बुआ से ससुराल जाने के मौके पर कहता भी है- ''इसमें दुविधा की क्या बात है? वह जगह पसंद नहीं है तो वहाँ न जाएँ।'' बस- यह बात ऐसी सरल नहीं है। इस तथ्य को अच्छी तरह समझा जा सकता है। पति-पत्नी की इच्छा-अनिच्छा को ही सब कुछ न समझने का कारण स्पष्ट करते हुए प्रमोद के माध्यम से जैनेन्द्र आगे कहते हैं कि अब मेरी समझ में यह तथ्य आ-गया है कि विवाह सूत्र में मात्र एक पुरुष और नारी ही परस्पर दाम्पत्य-सूत्र में नहीं बंधा करते अपितु यह दाम्पत्य सूत्र समाज को जोड़ता भी जोड़ता है। उसके माध्यम से समाज के दो समुदाय भी परस्पर एक होते हैं। चूंकि विवाह मात्र दो नर-नारियों का ही समझौता या आपसी ग्रंथि बंधन नहीं है और उसके द्वारा समाज भी जुड़ता है। अतः विवाह बंधन में नर-नारियों की इच्छा-अनिच्छा के कारण ही इस संबंध को नहीं तोड़ जा सकता है। विवाह का संबंध भावुकता से न होकर सामाजिक व्यवस्था से है, अतः दाम्पत्य सूत्र में बंधे नर-नारी भावुकता के वशीभूत होकर इस सूत्र को विच्छिन्न नहीं कर सकते हैं। विवाह संबंध की ग्रंथि तो ऐसी ग्रंथि है जो एक बार लग जाये तो किसी भी परिस्थिति में खुल नहीं सकती। प्रमोद का मानना है, साथ ही साथ समाज का भी मानना है कि विवाह जैसे दैवीय गठबंधन को तोड़ना किसी भी स्थिति में लाभकारी नहीं हो सकता। इस जगत में घटित होने वाली सुख-दुःखमयी घटनाओं के संबंध में विचार करते हुए प्रमोद सोचता है कि इस विश्व में जो बहुत सी घटनाएं हो

रहीं हैं, वे उसी रूप में क्यों घटती हैं- उनमें कुछ अंतर क्यों पड़ता? - अर्थात् क्या ये घटनाएं किसी दूसरे रूप में नहीं घट सकती थीं, उनका निश्चित रूप में घटना ही अनिवार्य था? इस प्रकार के प्रश्नों कोई उत्तर नहीं मिल पाता। वह आगे सोचता है कि चाहे इस प्रश्न मिले अथवा नहीं मिले, किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि जो घटित होना होता है आगे हो जाता है। भवितव्य को घटित होते देखकर तो ऐसा आभास होता है कि भाग्य के देवता अथवा विधि द्वारा नर-नारियों के भाग्य के बारे में जो कुछ भी लिख दिया जाता है, उसका एक अक्षर भी इधर-उधर नहीं होता है अर्थात् विधि का लिखा हुआ अक्षरश: घटित होता ही है। न तो नियति बदलती है और न भाग्य का लिखा ही बदलता है। प्रमोद प्रश्न करता है कि इस जगत में वे बहुत सी ऐसी घटनाएं घटित होती हैं जो सर्वथा अनहोनी और कारण रहित प्रतीत होती हैं। उनके मूल में किसी प्रकार का तर्क, संगति या कारण नहीं होता- जैसे सदाचारी का दुःख झेलना, युवा और स्वस्थ व्यक्ति की मृत्यु हो जाना, किन्तु वृद्ध और रुग्ण व्यक्ति के चाहने पर भी उसकी मृत्यु न होना आदि। प्रमोद पुनः यह सोचता है कि क्या विधाता के इन पहेली जैसे अनबूझ कार्यों को समझने-जानने की इच्छा की जा सकती है अथवा नहीं अर्थात् क्या व्यक्ति को इतनी भी स्वतंत्रता नहीं है कि वह विधि के कारनामों के समक्ष प्रश्न चिन्ह लगा सके?

विद्वानों की शिक्षाओं के सम्मुख प्रश्न चिन्ह लगाते हुए प्रमोद कहता है कि वे इस तथ्य पर बल दिया करते हैं कि इस जगत में परमकल्याणकारी ईश्वर की ऐसी लीलाएँ विद्यमान रहती हैं जो कल्याणकारी होनी चाहिए। प्रमोद कहता है कि ज्ञानियों के इस कथन को मैं विवश भाव से स्वीकार कर लेता हूँ- क्योंकि यदि इस सिद्धांत को स्वीकार को स्वीकार न करूँ तो फिर जिउगा कैसे? अर्थात जीवन इतने अधिक दुःख दर्दों से भरा हुआ है। उसमें इतनी अधिक अकल्याणकारी घटनाए घटती हैं कि यह विश्वास करके जीवित रहा जा सकता है कि कल्याणमय प्रभु अंततः भला ही करेंगे। हाँ ज्ञानियों की मान्यता का विरोध करते हुए प्रमोद कहता है कि मेरे हृदय में यह विचार बार- बार आता है कि मैं उस ईश्वर को पुकार कर कहूँ कि हे ईश्वर! बताया तो तुझे कल्याणमय जाता है किन्तु मुझे तो इस जगत में परिव्याप्त दुःख और चीत्कार को देख सुनकर रंचमात्र भी ऐसा आभास नहीं होता कि तेरी इस जगत के वासियों का कल्याण करने के प्रति रंचमात्र भी अभिरूचि है। इस विश्व में परिव्याप्त दुःखों की ओर इंगित करते हुए प्रश्न करता है कि हे जगतपिता यह तेरी संतानें करुण क्रंदन और चीत्कार करती रहती है। यह भी विचित्र स्थिति है कि तू लीला या खिलवाड़ करता है और उसके फलस्वरूप हम जगतवासियों को जन्म लेना या मरना पड़ता है? हम जो प्रयत्न करते हैं, वे निरर्थक और असफल क्यों रह जाते हैं, तथा विधि का विधान क्यों घटित होकर रहता है?

अंतिम अध्याय में मृणाल अपने भतीजे को पत्र लिखती है कि अगर उसका (प्रमोद) का प्रेम अपनी बुआ के प्रति समाप्त हो जाएगा तो उसकी जीवन शक्ति समाप्त हो जायेगी। उसके मन में प्रमोद के परिवेश जो श्रद्धा है वह टिक नहीं पाएगी। ऐसी स्थिति में पाप उस पर (मृणाल) हावी हो जायेगा और उसकी जिन्दगी उस पाप की छाया में लीन हो जाएगी। प्रमोद का प्रेम

खोकर मणाल के पास और कोई सहारा नहीं रहेगा। उस स्थिति में उसका जीवन उसके हाथ से निकल जाएगा। मृणाल अंत में लिखती है कि इस विषाक्त वातावरण में रहते हुए भी वह अपने मन को उस परिवेश से ऊपर उठा लेती है और उसके प्रेम- अवलंब को पाकर वह ऐसे वातावारण में भी फेफड़ों में शुद्ध हवा भर लेती है। उसे डर है कि जब वह उसको इस परिवेश में देखेगा तो वह उससे घृणा करने लगेगा और तब सहज भाव से उसके लिए जीना कठिन हो जाएगा। जबकि मृत्यु का भय है, लेकिन अगर मृत्यु श्रद्धा के साथ हो तो वह वह मृत्यु सार्थक है। श्रद्धा -विहीन तो जीवन भी निरर्थक है।

अभ्यास प्रश्न

(1) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए –

1. नायिका कथा लेखक की ....थी।
2. कथा लेखक पेशे से .... है।
3. लेखक का नाम ....है।
4. ‘भाई पाप-पुण्य की समीक्षा मुझसे न होगी’ का वक्ता ....है।
5. बुआ.................स्त्री थी।
6. कथा लेखक उपन्यास के अन्त में..............देता है।

20.5 सारांश

‘त्यागपत्र’ के मूल पाठ का आपने अध्ययन किया। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपने जाना कि -

- उपन्यास-कला की दृष्टि से ‘त्यागपत्र’ अपने जीवन-दर्शन के कारण हिन्दी साहित्य में नवीन कीर्तिमान स्थापित करने में समर्थ रहा है।
- ‘त्यागपत्र’ में जैनेन्द्र जी की उपन्यास-कला चरम उत्कर्ष पर परिलक्षित होती है। अपनी सहज-सरल भाषा के माध्यम से उन्होंने सांकेतिक शैली में जीवन-दर्शन को उपन्यास में सफलतापूर्वक चित्रित किया है।
- ‘त्यागपत्र’ अपने कथ्य की नवीनता एवं प्रस्तुतीकरण में जैनेन्द्र के सभी उपन्यासों में श्रेष्ठ है। इसमें शब्दों के अर्थगर्भत्व को बड़े ही सूक्ष्म ढ़ंग से रूपायित किया गया है।

20.6 शब्दावली

1. भवितव्य - जो कुछ घटित होना हो।

2. आर्तनाद - दुःख।
3. नीरवता - चुप्पी
4. त्रास - पीड़ा

20.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) 1. बुआ
2. जज
3. प्रमोद
4. कथा लेखक
5. पतिपरित्यक्ता
6. त्यागपत्र

20.8 संदर्भ ग्रंथ

1. त्यागपत्रः जैनेन्द्र कुमार, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

20.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भटनागर, रामरतन – जैनेन्द्र : साहित्य और समीक्षा।

2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप – हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोक भारती प्रकाशन।

20.10 निबंधात्मक प्रश्न

ऐसे ही ब्याह के दिन आते गये और ब्याह हो गया। विवाह होने से पहले बुआ कई घण्टे अपनी छाती से मुझे चिपकाये बहुत-बहुत आँसू रोती रहीं।.....बुआ के जाते समय फूट-फूट कर रोया। मैंने किसी की शर्म नहीं की। मैंने चलकर घूँघट वाली बुआ का आँचल पकड़ लिया। कह दिया मैं बिना बुआ के अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगा, नहीं करूंगा।

1. उक्त गद्यांश की संदर्भ सहित व्याख्या करें।

हाँ ज्ञानियों की मान्यता का विरोध करते हुए प्रमोद कहता है कि मेरे हृदय में यह विचार बार-बार आता है कि मैं उस ईश्वर को पुकार कर कहूँ कि हे ईश्वर! बताया तो तुझे कल्याणमय

जाता है किन्तु मुझे तो इस जगत में परिव्याप्त दुःख और चीत्कार को देख सुनकर रंचमात्र भी ऐसा आभास नहीं होता कि तेरी इस जगत के वासियों का कल्याण करने के प्रति रंचमात्र भी अभिरूचि है। इस विश्व में परिव्याप्त दुःखों की ओर इंगित करते हुए प्रश्न करता है कि हे जगतपिता यह तेरी संतानें करुण क्रंदन और चीत्कार करती रहती है। यह भी विचित्र स्थिति है कि तू लीला या खिलवाड़ करता है और उसके फलस्वरूप हम जगतवासियों को जन्म लेना या मरना पड़ता है? हम जो प्रयत्न करते हैं, वे निरर्थक और असफल क्यों रह जाते हैं, तथा विधि का विधान क्यों घटित होकर रहता है?

2. उपरोक्त गद्यांश के उद्देश्य को उद्घाटित करें।

3. उक्त गद्यांश का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करें।

इकाई 21- त्यागपत्र: संरचना व शिल्प

इकाई की रूपरेखा

21.1 प्रस्तावना
21.2 उद्देश्य
21.3 त्यागपत्र : आलोचनात्मक संदर्भ
21.4 सारांश
21.5 शब्दावली
21.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
21.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
21.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
21.9 निबंधात्मक प्रश्न

21.1 प्रस्तावना

‘‘जैनेन्द्र कृत त्यागपत्र हिन्दी के मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों की कोटि में एक प्रकाश-स्तंभ है। सन् 1937 में प्रकाशित हुए इस उपन्यास ने उस काल में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त मुंशी प्रेमचन्द के सामाजिक उपन्यासों के प्रवाह को नूतन मोड़ दिया था। जैनेन्द्र की उपन्यास-कला का श्रीगणेश यद्यपि प्रेमचन्द-काल के ही उत्तरवर्ती भाग में हुआ था, तथापि उपन्यास-क्षेत्र में जैनेन्द्र ने एक नवीन औपन्यासिक कला के साथ पदार्पण किया।" जैनेन्द्र के उपन्यास एक विशेष थीम को लेकर चलते हैं। यह थीम विवाहेत्तर संबंध, वैवाहिक समस्याएँ एवं स्त्री स्वातंत्र्य के संदर्भ से विकसित हुई है। जैनेन्द्र से ही मानव मन की गहराईयों में जाकर विश्लेषण करने की पद्धति हिंदी साहित्य में शुरू हुई। इस तरह से आप साहित्य में मनोविज्ञान का प्रवेश कराने वाले पहले कथाकार हैं। इस इकाई में ‘त्यागपत्र’ उपन्यास की समीक्षा उपन्यास के तत्वों के आधार पर करेंगे।

21.2 उद्देश्य

बी0ए0एच0एल0-101 की यह 21वीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

- उपन्यास के संरचना विधान का अध्ययन करेंगे।
- ‘त्यागपत्र’ के औपन्यासिक शिल्प का विवेचन कर सकेंगे।

- उपन्यास के मूल तत्वों से परिचित हो सकेंगे।
- 'त्यागपत्र' उपन्यास पर विविध विद्वानों के वक्तत्वों से परिचित हो सकेंगे।

21.3 त्यागपत्र : आलोनात्मक संदर्भ

मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यासों का वर्ण्य-विषय समाज में परिव्याप्त नाना प्रकार की समस्याएँ रही हैं, जबकि जैनेन्द्र ने समाज के स्थान पर व्यक्ति को या कहिए समष्टि के स्थान पर व्यष्टि को महत्व प्रदान किया। इस व्यष्टि या व्यक्ति में से भी जैनेन्द्र का झुकाव नारियों की ओर ज्यादा रहा है और उनके प्रायः सभी उपन्यास नारी-प्रधान ही हैं। इन नारियों को भी उन्होंने जटिल पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया है, उनके जीवन में ऐसे उतार-चढ़ाव चित्रित किए हैं कि इन नारियों के चरित्र एक अबूझ पहेली जैसे बन गए हैं। सुप्रसिद्ध बंगला उपन्यासकार शरतचन्द्र की उपन्यास-कला पर यह आक्षेप किया जाता है कि उन्होंने पतित नारियों का महिमान्वित अंकन करके एक प्रकार से सामाजिक रीति-नीति और परम्पराओं-मर्यादाओं के विरूद्ध कार्य किया है। हिन्दी साहित्य में यही आक्षेप जैनेन्द्र के प्रति किया जा सकता है, क्योंकि उन्होंने त्यागपत्र में मृणाल का चरित्रांकन जिस रूप में किया है वह अविश्वसनीय तो है ही, मृणाल का आचरण भी अनेक अवसरों पर अबूझ पहेली-सा प्रतीत होता है। यह सत्य है कि फ्रायडवाद की मान्याताओं के कारण नर-नारियों के आचरण प्रच्छन्न-प्रकट काम-भावना से अनुप्रेरित रहते हैं, किन्तु मृणाल के चरित्र की व्याख्या फ्रायडीय मान्यताओं के परिपार्श्व में भी भली प्रकार नहीं हो पाती है। आगे हम औपन्यासिक कला की दृष्टि से त्यागपत्र की सफलता-असफलता पर विचार करेंगे।

विद्वानों ने उपन्यास के छह तत्व स्वीकार किए हैं- कथावस्तु, पात्र और उनका चरित्र-चित्रण, देशकाल और वातावरण-योजना, कथोपकथन, भाषा-शैली और उद्देश्य अथवा संदेश। आगे हम एक-एक करके इन तत्त्वों की कसौटी पर त्यागपत्र की सफलता-असफलता की परख करेंगे।

कथावस्तु- त्यागपत्र की कथावस्तु संक्षिप्त ही है और उसका विकास पूर्वदीप्ति (फ्लैश बैक) शैली के माध्यम से किया गया है। उपन्यास का प्रमुख पात्र प्रमोद या जज एम0 दयाल अपने पद से इस्तीफा देते हुए उन कारणों का पुनरावलोकन करता है जिसके कारण उसे अपनी बुआ के नारकीय जीवन पर पश्चाताप होता है और वह तदर्थ स्वयं को भी अपराधी-सा मानते हुए अपने पद से त्यागपत्र दे देता है। वह याद करता है कि उसकी बुआ मृणाल के माता-पिता का उसके बाल्यकाल में ही निधन हो गया था और उसका भरण-पोषण प्रमोद के माता-पिता की देख-रेख में हुआ था। यद्यपि प्रमोद और मृणाल की आयु में काफी अंतर था, किन्तु शनैः शनैः मृणाल प्रमोद से ऐसी बातें और कुछ शारीरिक क्रियाएँ करने लगी थी, जिसके मूल में निश्चय ही कामासक्ति का हाथ स्वीकार किया जा सकता है। इसी क्रम में मृणाल अपनी सहेली शीला के भाई के प्रति आकर्षित हो उठी थी और किसी-न-किसी बहाने से शीला के घर जाती रहती थी।

शीघ्र ही उसके इस आकर्षण का रहस्योद्घाटन हो गया तो उसको प्रमोद की माता ने बेंतों से खूब पीटा था और उसकी पढ़ाई स्थगित करवा दी थी। तदनन्तर उसका शीघ्र ही विवाह कर देने की चेष्टा की गई और इस क्रम में उसका विवाह अधेड़ उम्र के एक दुहाजू व्यक्ति के साथ कर दिया गया। मृणाल ने अपने पति को किसी सच्ची पतिव्रता स्त्री की तरह यह बात बता दी कि उसका शीला के भाई के प्रति अनुराग था, जिसे सुनकर उसके पति ने उसका परित्याग कर दिया। मायके में माता-पिता न होने तथा भाई-भावज द्वारा दुत्कारे जाने की आशंका से मृणाल लौटकर अपने मायके नहीं आई और एक कोयला बेचने वाले व्यक्ति के आश्रय में रहने लगी। वह कोयले वाला उसके रूप पर आसक्त था और विवाहित व्यक्ति था, अतः वह गर्भवती मृणाल को शीघ्र ही उसके हाल पर छोड़ गया। मृणाल ने कुछ दिनों तक एक डॉक्टर के बच्चों को पढ़ाकर भी जीविकार्जन किया किन्तु जब उसे यह ज्ञात हुआ कि उस डॉक्टर की लड़की से प्रमोद का विवाह होने वाला है, तो इस विवाह-सम्बन्ध पर अपनी अमंगलकारी छाया न पड़ने देने के विचार से वहाँ से भी चली गई। प्रमोद ने उससे मिलकर यह आग्रह किया था कि वह घर लौट चले किन्तु प्रमोद के इस आग्रह को वह स्वीकार न कर सकी। इसके अनन्तर उसके जीवन में जो उतार-चढ़ाव आए, उनका अंतिम परिणाम यह निकलता दिखाया गया है कि वह चोरों, जेबकतरों और वेश्याओं की गंदी बस्ती में रहने लगती है। प्रमोद उससे वहाँ जाकर भी मिलता है, किन्तु उस स्थान को वह (मृणाल) सच्ची मनुष्यता का सूचक बताकर जहाँ व्यक्ति बाहर-भीतर से एक जैसा होता है, नहीं छोड़ती। वह प्रमोद से यह आग्रह अवश्य करती है कि यदि वह उसको धन देना चाहता है, तो इतनी अधिक मात्रा में धन दे कि वह उन समस्त पतित नारियों का उद्धार कर सके। इसके पश्चात मृणाल की मृत्यु हो जाने तथा प्रमोद द्वारा अपने जज के पद से त्यागपत्र देने की घटना के साथ उपन्यास समाप्त हो जाता है।

उपन्यास का कथानक संक्षिप्त, प्रवाहमय, रोचक और विश्वसनीय होना चाहिए। कहना न होगा कि आलोच्य उपन्यास का कथानक संक्षिप्त है और उसमें रोचकता तथा प्रवाह का भी अभाव नहीं है, हाँ जहाँ तक विश्वसनीयता का संबंध है, उपन्यास की अनेक घटनाएँ विश्वसनीय प्रतीत नहीं होती है। इन घटनाओं में से भी विशेषतः मृणाल के आचरण से सम्बन्धित प्रसंग पाठकों की सहानुभूति नहीं अर्जित कर पाते है, क्योंकि उन्हें उसका आचरण अटपटा-सा प्रतीत होता है। जैसा कि कहा जा चुका है आलोच्य उपन्यास में पूर्वदीप्ति शैली (फ्लैश बैक टेकनीक) का सफलतापूर्वक आश्रय लिया गया है और कथा का विकास प्रमोद द्वारा अपने जीवन की घटनाओं के पुनरावलोकन के माध्यम से कराया गया है। चूँकि प्रमोद और मृणाल का बाल्यकाल परस्पर सम्बन्धित रहा था तथा बाद में वह जब-तब मृणाल से मिलता रहता था, अतः मृणाल के जीवन पर भी इन मुलाकातों में ज्ञात हुई बातों के द्वारा प्रकाश डाला गया है।

पात्र-योजना एवं चरित्रांकन-कला- पात्र योजना एवं पात्रों की चरित्रांकन-कला की दृष्टि से आलोच्य उपन्यास पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि इसमें मात्र दो ही मुख्य पात्र हैं-मृणाल और प्रमोद। अन्य पात्रों में मृणाल की सहेली शीला, शीला का भाई, मृणाल का दुहाजू पति तथा

कोयले वाला उल्लेखनीय हैं, किन्तु इन गौण-पात्रों की योजना मुख्यतः कथानक को गति प्रदान करने की दृष्टि से ही की गई है। उपन्यासकार ने उनका चित्रांकन करने की ओर रूचि प्रदर्शित नहीं की है। मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास में सामान्यतः पात्रों की संख्या कम ही होनी चाहिए, क्योंकि तभी उपन्यासकार उनका चरित्र-चित्रण करने का अधिक अवसर प्राप्त कर पाता है। इस दृष्टि से जैनेन्द्र ने त्यागपत्र में मात्र दो ही पात्रों को प्रमुखता देकर उचित ही कदम उठाया है। इन दोनों पात्रों में से भी उपन्यासकार ने प्रमोद का विस्तृत चित्रांकन नहीं किया है- वह भी मूलतः मृणाल के चरित्र के विभिन्न पक्षों के उद्घाटन का माध्यम मात्र है। अतः कहा जा सकता है कि आलोच्य उपन्यास नायिका प्रधान है और उसमें मात्र एक ही प्रधान पात्र के चरित्रांकन का प्रयास किया गया है। हाँ मृणाल का चरित्रांकन उपन्यासकार ने इस रूप में किया है कि सहज रूप में पाठकों के गले नहीं उतर पाता है। उदाहरण के लिए सामान्य नारी कदाचित् यह कदम नहीं उठाती कि वह अपने पति को अपने विगत काल के प्रेम-सम्बन्ध के बारे में बताए। उसके इस आचरण को तो उसके भोलेपन और सत्य-प्रेम का प्रतीक स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु मृणाल द्वारा कोयले वाले के साथ रहना और यह जानते हुए भी कि यह व्यक्ति मुझको छोड़कर चला जाएगा, उसको सर्वस्व समर्पित कर देना, समुचित प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार उसका वेश्याओं, चोरों, जेबकतरों आदि की बस्ती में रहना और इस तथ्य पर बन देना कि सच्ची मनुष्यता यहाँ ही है- यहाँ सभ्य जगत् जैसा मिथ्याडंबर नहीं है-आत्यंतिक रूप में ठीक होते हुए भी कोई अनुकरणीय प्रेरणा प्रदान नहीं कर पाता। स्वर्गीय पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का यह मत उचित ही है- ''जैनेन्द्र की मृणाल पहेली बन गई है, क्योंकि उन्होंने उसके अंतर्गत के भाव-सौंदर्य को परिस्फुट नहीं किया। प्रेम की वह क्या गरिमा थी, जिससे उसने कलंक, निन्दा और दुःख-तीनों को चुपचाप सहन कर लिया है।"

देशकाल और वातावरण-योजना- उपन्यास में वर्णित तथ्यों के अनुरूप देशकाल और वातावरण की योजना करने के फलस्वरूप उसकी वर्ण्यवस्तु की विश्वसनीयता में अभिवृद्धि हुआ करती है। आलोच्य उपन्यास क्योंकि मनोविश्लेषणात्मक श्रेणी का उपन्यास है अतः इसके अंतर्गत उपन्यासकार ने बाह्य वातावरण की अपेक्षा आन्तरिक वातावरण की नियोजना पर अधिक बल दिया है। डा0 सुरेशचन्द्र निर्मल ने इस सम्बन्ध में उचित ही लिखा है- ''आंतरिक वातावरण आज के देशकाल के अनुसार या युगानुरूप है। आज व्यक्तिवादी समाज है, आज समाज की इकाई का महत्व ही सर्वोपरि है। अतः व्यक्ति की अपनी विचार-परिधि की आज के संदर्भ में इतनी विवृत्त श्रृंखला है कि नाना विकार अनजाने ही झाँक उठते हैं। सुविचारक उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास के आंतरिक वातावरण (मनोद्वन्द्व) को प्रस्तुत करते हुए उसे तर्क की कसौटी पर कसा है, दर्शन का पुट दिया है-

''मन में एक गाँठ-सी पड़ती जाती थी। वह न खुलती थी, न घुलती थी। बल्कि कुछ करो तो वह उलझती और कसती हो जाती थी जो कुछ होता था, जो कुछ होना चाहिए था, कुछ करना चाहिए, कहीं कुड गड़बड़ है। कहीं क्यों, सब गड़बड़-ही-गड़बड़ है। सृष्टि गलत है, समाज

गलत है, जीवन ही हमारा गलत है। सारा चक्कर यह ऊंटपटांग है। इसमें तर्क नहीं, संगति नहीं, कुछ नहीं है।"

''सैक्स, प्रेम और साहचर्य आधुनिक वातावरण में खूब पनप रहा है। स्वातंन्योत्तर काल के उपन्यासकारों ने इसका स्पर्श न किया होता, भला कैसे? जैनेन्द्र जी ने इसकी बड़ी अनूठी व्याख्या की है कि नर-नारी द्वैत कैसे निर्मित हुआ? वे कहते हैं कि समग्र में अंह चेतनाओं के पृथक् होते ही उनमें पर के सान्निध्य की चाह उत्पन्न हुई। इस चाह के दो रूप हो गये। एक ने चाहा, 'वह मुझमें हो।' वह अहं स्त्रीत्व प्रधान हो गया है। दूसरे ने चाहा, 'मैं उसमें हूँ।' यह अहं पुरूष-युक्त हुआ। इस प्रकार एक ही अंह के दो रूप या उर्द्धनारीश्वर की पौराणिक कल्पना लेकर वे चले हैं। परम्परावादी पारिवारिक बन्धनों को तोड़कर उलकी लेखनी ने गति प्रवाहित की है। यथा, प्रमोद अपनी बुआ में अनुरक्त है और वह बुआ भी प्रच्छत्र वासनाओं से ढकी है। समाज में जाने कितने प्रमोद और मृणाल इस अनुक्त पिपासा के शिकार हो जाते हैं। यही जैनेन्द्र का मनोविश्लेषण बाह्यजगत् की ओर झाँकने की चेष्टा कर रहा है।" संक्षेप में कहा जा सकता है कि देशकाल और वातावरण-योजना की दृष्टि से आलोच्य उपन्यास सफल है।

कथोपकथन या संवाद-योजना- नाटकीय शिल्प-विधान में तो कथोपकथन नाट्य-रचना के प्राण-तत्त्व होते ही हैं, उपन्यास-कला में भी उनका कम महत्व नहीं होता। कारण यह है कि कथोपकथनों के माध्यम से उपन्यासकार पात्रों का चारित्रिक उद्घाटन, कथा का विकास, कथानक की विलुप्त कड़ियों को जोड़ना आदि अनेक प्रयोजनों की सिद्धि करता है। इन कथोपकथनों की प्रथम विशेषता यह स्वीकार की जाती है कि वे सामान्य बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले कथनों की तरह संक्षिप्त होने चाहिएँ। आलोच्य उपन्यास के कथोपकथनों में यह गुण विद्यमान है, जैसे-

मैंने कहा- ''मैं वहाँ गया था-

धीमे से बोलीं- ''मैं जानती थी, तुम जाओगे।"

''अस्पताल में भी गया था-तुमने मुझे नहीं लिखा?"

''क्या लिखती?"

''अच्छा मुन्नी कहाँ है?"

''मर गई।"

''मर गई ! कब मर गई?"

''दस महीने की होकर मर गई। रोग से मरी, कुछ भूख से मरी।"

‘‘मिशनवाले उसे माँगते थे। दे क्यों नहीं दिया?"

वे चुप रहीं। अनन्तर मैं ही बोला-

‘‘यहाँ कैसे आयीं?"

‘‘भटकते-भटकते ही आई।"

उपर्युक्त कथोपकथन की योजना मृणाल और प्रमोद के मध्य नियोजित की गई है। कहना न होगा कि दोनों के ही प्रश्न और उत्तर बड़े संक्षिप्त हैं।

कथोपकथनों के माध्यम से उपन्यासकार कथानक के छूटे हुए या विलुप्त अंशों की सूचना पाठकों को दे दिया करते हैं। इस दृष्टि से उपर्युक्त कथोपकथन को ही उदाहरण-स्वरूप ग्रहण किया जा सकता है, जिसके माध्यम से उपन्यासकार ने पाठक-वर्ग को इस तथ्य की सूचना दे दी है कि मृणाल को एक कन्या उत्पन्न हुई थी, जो मर चुकी है। इस कथोपकथन से इस तथ्य का भी पता चलता है कि प्रमोद अपनी बुआ को खोजते-खोजते वहाँ के अस्पताल में भी गया था।

कथोपकथनों का स्वाभाविक तथा वक्ता पात्रों की मनःस्थिति के अनुरूप होना भी आवश्यक स्वीकार किया जाता है, जिनका आलोच्य उपन्यास के कथोपकथनों में पूर्णतः निर्वाह हुआ है। एक उदाहरण अवलोकनीय है-

‘‘तुम बड़े अच्छे लड़के हो। कौन-सी क्लास में पढ़ते हो?"

‘‘सेविन्थ क्लास।"

‘‘सेविन्थ क्लास?" खूब! प्रमोद, जाकर कहना मैं अभी एक महीना यहीं हूँ। समझे?"

मैं खूब समझ गया था।

‘‘क्या समझे?"

‘‘-मैं एक महीना यहीं हूँ।"

शीला के भाई इस पर खूब हँसे।

‘‘तुम नहीं भाई-मैं, मैं, मैं।"

उपर्युक्त कथोपकथन पूर्णतः स्वाभाविक है। बच्चे से जैसा कहा जाता है, वह उसको प्रायः उसी प्रकार दुहरा दिए करता है, चाहे ऐसा करने से अर्थ में परिवर्तन हो जाता हो। यही कारण है कि शीला का भाई प्रमोद को समझाने का प्रयास करता है कि वह एक महीने तक यहीं

रूकेगा, किन्तु प्रमोद से इस बारे में पूछे जाने पर वह जो उत्तर देता है उसका अर्थ यह निकलता है कि प्रमोद एक महीने तक यहीं रूकेगा। पात्रों की मनःस्थिति की अनुकूलता की दृष्टि से निम्नांकित उदाहरण द्रष्टव्य है-

थोड़ी देर के बाद कहतीं, ''तुझे पतंग अच्छी लगती है?"

मैं कहता- ''हाँ।"

''तू पतंग उड़ाएगा?"

मैं कहता- ''बाबूजी मना करते हैं।"

इस पर वह एकाएक मुझे अंक में भरकर उत्साह के साथ कहतीं- ''हम तुम दोनों संग-संग पतंग उड़ाएँगे कि खूब दूर ! सबसे ऊँची ! उड़ाएगा?"

मैं कहता, ''पैसे दो, मैं लाऊँ।"

वह थेड़ी देर मुझे देखती, वह दृष्टि अनबूझ होती थी, मानों मैं उन्हें दीख ही न रहा होऊँ। मुझसे आर-पार होकर जाने वह क्या देख रही हैं! एकाएक शिथिल पड़कर कुछ लजाकर कहती-

''चल रे पतंग से बालक गिर जाते हैं।"

उपर्युक्त कथोपकथन में विशेषतः मृणाल द्वारा कहे गये उद्गार उसकी मनोभावना के पूर्णतःअनुकूल हैं। वह प्रमोद के प्रति आकर्षित है और असके साथ-साथ पतंग उड़ाने की कामना के मूल में उसका यह आकर्षण ही क्रियाशील है। हाँ, अंततः वह अपने विचार पर स्वयं ही संकुचित हो उठती है और इसीलिए लजाकर पतंग उड़ाने से इंकार कर देती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि आलोच्य उपन्यास में कथोपकथनों की योजना सफल रीति से की गई है।

भाषा शैली- भाषा-शैली की दृष्टि से त्यागपत्र में जैनेन्द्र ने अपने अन्य उपन्यासों की भाँति ही कहीं अतीव सरल तथा कहीं अत्यधिक सांकेतिक और गूढ़ भाषा-शैली का प्रयोग किया है। शब्दावली की दृष्टि से उन्होंने भावभिव्यक्ति में सहायक तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी- सभी प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया है। उनके प्रायः सभी उपन्यासों और कहानियों में एक ऐसी विशिष्ट प्रकार की भाषा-शैली का प्रयोग किया गया है कि उसे पढ़कर तुरंत इस बात का ज्ञान हो जाता है कि यह जैनेन्द्र की रचना है। उन्होंने देशज शब्दावली का भी पर्याप्त मात्रा में सार्थक प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण अवलोकनीय हैं-

(क) तू अब उसे कभी याद मत करियो।

(ख) हम लोगों का असली घर पछाँह की ओर था।

(ग) वहाँ अपनी गिरस्ती अच्छी तरह संभालना।

(घ) गुड़ीमुड़ी करके मेरी ओर फेंक दिया।

(ड़) नाहक किसी को क्यों तकलीफ दोगी?

विदेशी शब्दों में उन्होंने माई डियर, पोजीशन आदि शब्दों का तो प्रयोग किया ही है, कहीं-कहीं आवश्यकतानुसार अंगेजी के वाक्यों का भी प्रयोग किया गया है।

त्यागपत्र मनोविश्लेषणत्मक उपन्यास है, अतः उसमें इस श्रेणी के उपन्यासों की तरह पात्रों के मनोभावों के सूचक उद्गारों एवं स्वगत-कथनों की बहुलता है-

बुआ ने कहा- बता, मैं आज तेरी क्या हूँ? कभी यह सच था कि मैं तेरी बुआ थी, पर उस बात को मैंने अपने हाथों से तोड़-ताड़कर धूल मे पटक दिया है। धूल में से उठाकर उसी के निर्जीव छूछे पिंजर को तू हठपूर्वक सामने लाकर सत्य कहना चाहता है, यही झूठ है। मैं कहती हूँ, प्रमोद, मुझे मेरे भाग्य पर छोड़। जा, जा, अब यहाँ मत ठहर। देर तक यहाँ रहेगा, तो ठीक न होगा।"

(क) फिर उसी बेबस भाव से मुझे देखते रहकर मानो यंत्र की भाँति उस खत को फाड़कर नन्हें-नन्हें टुकड़ों में भर दिया। (उत्प्रेक्षा)

(ख) शीला ऐसी हो गयी, जैसे ऊद-बिलाव के आगे मूसी। (उपमा)

(ग) मैं यों तो काफी बड़ा हो चला था, निरा बच्चा अब नहीं था, तो भी मैं उस समय बुआ के अंक में चुपचाप बालक-सा पड़ा रहता था। (उपमा)

(घ) गर्म तवे पर जैसे जल की बूंदें चटक कर छिटक रही हैं वैसे ही मेरी ओर से कोई ठंडा बोध तब विस्फोट ही पैदा करता। (दृष्टांत)

उनकी भाषा-शैली के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि ''जैनेन्द्र जी की भाषा-शैली आत्मीयता एवं विश्वसनीयता के विशेष तत्त्वों से समन्वित है। भावों का समाहार, संक्षिप्तता और अपनत्व की प्रभविष्णुता वहाँ विशेष रूप से विद्यमान है। भाषा दार्शनिकता के कारण सजीव होते हुए भी लाक्षणिक व्यंजना से कुछ बोझिल अवश्य है। अतः सामान्य पाठक के लिए लाक्षणिक व्यंजना एक गोरखधंधा भी बन जाती है, किन्तु प्रबुद्ध पाठक के लिए, थोड़ा-सा बौद्धिक झुकाव रखने वाले पाठक के लिए वह दुर्भेद्य तो नहीं ही कही जा सकती।''

संक्षेप में जैनेन्द्र की भाषा-शैली सरल-सजीव होते हुए भी यत्र-तत्र दुरूहता लिए हुए है।

त्यागपत्र जैनेन्द्र के उत्कृष्ट मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों में से एक है। प्रस्तुत उपन्यास में उन्होंने मृणाल के माध्यम से एक नारी के अंतर्मन की ग्रन्थियों को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है।

मृणाल द्वारा पतिव्रत धर्म की जो मनमानी परिभाषा स्वीकार की जाती है, जिसके अनुसार वह सामाजिक नियमों की अपेक्षा अपने विवेक को अधिक महत्व प्रदान करती है, यही तथ्य उसके जीवन के विकास का निमित्त बन जाता है। इस उपन्यास की प्रमुख विशेषता इसका कथानक-शिल्प है। जैनेन्द्र ने इसमें कुछ अभिनव प्रयोग भी किए हैं, जो इस प्रकार हैं-

पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग- त्यागपत्र के उपन्यासकार जैनेन्द्र द्वारा कथा-शिल्प की नूतन विधा का आश्रय लिया गया है और वह है पूर्वदीप्ति प्रणाली। इसमें घटनाओं का वर्णन उस रूप में नहीं किया गया है जिस प्रकार परम्परागत उपन्यासों में घटनाओं का विकास हुआ करता है। कथानक का आरंभ उपन्यास की नायिका की मृत्यु की घटना के साथ किया गया है जो सामान्य कथा-शिल्प के उपन्यासों के अन्तर्गत नहीं हुआ करता है। प्रमोद किसी अन्तर्द्वन्द्व में ग्रस्त चित्रित किया गया है-

‘‘....नहीं भाई, पाप-पुण्य की समीक्षा मुझसे न होगी। जज हूँ कानून की तराजू की मर्यादा जानता हूँ। पर उस तराजू की जरूरत को भी जानता हूँ। इसलिए कहता हूँ कि जिनके ऊपर राई-रत्ती नाप-जोख्कर पापी को पापी कहकर व्यवस्था देने का दायित्व है, वे अपनी जानें। मेरे बस का वह काम नहीं है। मेरी बुआ पापिष्ठा नहीं थीं, यह भी कहने वाला मैं कौन हूँ। पर आज मेरा जी अकेले में उन्हीं के लिए चार आंसू बहाता है। मैंने अपने चारों ओर तरह-तरह की प्रतिष्ठा की बाड़ खड़ी करके खूब मजबूत जमा ली है। कोई अपवाद उसको पारकर मुझ तक नहीं आ सकता, पर उन बुआ की याद जैसे मेरे सब-कुछ को खट्टा बना देती है। क्या वह याद मुझे अब चैन लेने देगी? उनके मरने की खबर अभी पाकर बैठा हूँ। वह सुखपूर्वक नहीं मरी, पर इतना तो मैं उनकी मौत के दसियों वर्ष पहले से जानता था। फिर भी यह जानना चाहता हूँ कि अन्त समय क्या उन्होंने अपने इस भतीजे को भी याद किया था? याद किया होगा, वह अनुमान करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।" प्रमोद के उपर्युक्त अंतर्लाप द्वारा कथावस्तु का उद्घाटन अथवा आरंभ किया गया है, जिससे हमें यह ज्ञात हो जाता है कि प्रमोद की बुआ की मृत्यु हो चुकी है। वह पापिष्ठा थी अथवा नहीं, यह प्रश्न भी यहाँ उभर कर पाठकों के सामने आ जाता है-क्योंकि इस विषय में स्वयं प्रमोद भी आश्वस्त नहीं है।

कथा के इस प्रकार उपस्थापन के पश्चात् प्रमोद भावनाओं और विचारों में खोकर अपने विगत जीवन पर दृष्टिपात करता है और उसके इस विगत जीवन के साथ ही उपन्यास की नायिका मृणाल का जीवन भी जुड़ा हुआ है। अपनी वंश-परम्परा का परिचय देते हुए प्रमोद स्पष्ट करता है कि उसकी बुआ उससे चार-पाँच वर्ष बड़ी थीं और माता-पिता की मृत्यु हो जाने के कारण वह प्रमोद के माता-पिता के संरक्षण में पाली-पोसी गई थी।

पूर्वदीप्ति शैली के माध्यम से ही प्रमोद ने मृणाल के अप्रतिम सौंदर्य पर इन शब्दों में प्रकाश डाला है-

''बुआ का तब का रूप सोचता हूँ, तो दंग रह जाता हूँ। ऐसा रूप कब किसको विधाता देता है। जब देता है, तब कदाचित् उसकी कीमत भी वसूल कर लेने की मन-ही-मन नीयत उसकी रहती है। पिताजी तो बुआ की मोहिनी मूरत पर रीझ-रीझ जाते थे।"

इस अवतरण द्वारा एक ओर तो उपन्यासकार ने मृणाल की सुन्दरता पर प्रकाश डाला है। जबकि दूसरी ओर विधाता द्वारा सौंदर्य देकर उसकी कीमत वसूलने की बात कहकर पाठकों के अन्तर्मन में यह जिज्ञासा जाग्रत कर दी है कि मृणाल के जीवन में भी अवश्य ही कुछ अनहोनी घटित होनी चाहिए तभी प्रमोद ने इस प्रकार की भावना व्यक्त की है।

इसके अनन्तर उपन्यासकार ने पूर्वदीप्ति शैली के माध्यम से ही उन घटनाओं का चित्रण किया है जिनसे प्रमोद और मृणाल की घनिष्ठता पर प्रकाश पड़ता है। इसके साथ ही इन घटनाओं का उद्घाटन होता गया है कि किस प्रकार मृणाल शीला के भाई के सम्पर्क में आती है और उससे मिलने-जुलने में होने वाली देर के कारण घर पर भावज से पिटती ही नहीं है अपितु उसकी पढ़ाई छुड़वाकर उसका विवाह कर दिया जाता है। आगे की घटनाओं पर प्रकाश भी प्रमोद के आत्मालाप या चिन्तन के माध्यम से ही डाला गया है और उसके स्व-पति से विच्छेद, एक पुरूष के साथ भागकर दूसरे नगर में आ रहने, उसको भी छोड़ देने पर ट्यूशन पढ़ाकर गुजारा करने वहाँ से भी उखड़कर गन्दे लोगों की बस्ती में रहने की घटनाएँ भी इसी प्रकार विकसित हुई हैं। अतः कथानक-शिल्प की दृष्टि से आलोच्य उपन्यास की प्रथम विशेषता तो यही है कि उस युग में जब मुंशी प्रेमचन्द कथा-जगत् पर छाए हुए थे और उन्हें उपन्यास सम्राट् कहकर गौरवान्वित किया जा रहा था, जैनेन्द्र ने उनकी लीक से हटकर एक दूसरे प्रकार का कथानक अपनाया और कथा-योजना में भी एक नूतन प्रकार के कथाशिल्प का प्रयोग किया।

कथानक में विश्वसनीयता का समावेश- वैसे त्यागपत्र की कहानी एक सर्वथा काल्पनिक कहानी ही प्रतीत होती है किन्तु उपन्यासकार ने ऐसे कौशल से काम लिया है कि यह हमको किसी सच्ची घटना पर आश्रित कहानी प्रतीत होती है। इस उद्देश्य के लिए उपन्यासकार ने कृति के आरंभ में ही निम्नांकित टिप्पणी देकर पाठकों के मन में यह भ्राँति उत्पन्न करने की चेष्टा की है कि यह एक सच्ची घटना पर आधारित उपन्यास है-

''सर एम दयाल जो इस प्रांत के चीफ जज थे और जजी त्यागकर इधर कई वर्षो से हरिद्वार में विरक्त जीवन बिता रहे थे। उनके स्वर्गवास का समाचार दो महीने हुए पत्रों में छपा था। पीछे कागजों में उनके हस्ताक्षरी के साथ एक पांडुलिपि पायी गयी, जिसका संक्षिप्त सार इतस्ततः पत्रों में छप चुका है। उससे एक कहानी ही कहिए, मूल लेख अंग्रेजी में है। उसी का हिन्दी उल्था यहाँ दिया जाता है।"

उपर्युक्त उदाहरण से ऐसा प्रतीत होता है कि सर एम0 दयाल ने अपनी कोई निजी डायरी अंग्रेजी में लिखी थी। चूँकि डायरी में व्यक्ति के जीवन की सच्ची घटनाएँ ही अंकित हुआ करती

है, अतः इसमें भी उनके जीवन का सत्य वृतांत ही रहा होगा। हमारे उपन्यासकार ने और कुछ न करके मात्र यह किया है कि अंग्रेजी में लिखी गई डायरी का हिन्दी में अनुवाद कर दिया है। अतः इसकी धारणाएँ सत्य ही होनी चाहिए।

हाँ, यह मात्र मतिभ्रम उत्पन्न करने का ही प्रयास है, क्योकि इसका ज्ञान थोड़ा-सा विचार करने पर ही हो जाता है। जिस व्यक्ति के कागज-पत्रों का उल्लेख किया गया है, उसका नाम एम0 दयाल है। उपन्यास के अंत में भी यह व्यक्ति जिसका मूल नाम प्रमोद मिलता है, न जाने कैसे एम0 दयाल के नाम से हस्ताक्षर करते दिखाया गया है-

''बुआ, तुम गई। तुम्हारे जीते जी मैं राह पर न आया। अब सुनो, मैं यह जजी छोड़ता हूँ। जगत का आरम्भ-समारंभ ही छोड़ दूँगा। औरों के लिए रहना तो शायद नए सिरे से मुझसे सीखा न जाए, आदतें पक गई हैं, पर अपने लिए तो उतनी ही स्वल्पता से रहूँगा, जितना अनिवार्य होगा। यह वचन देता हूँ।

भगवान तुम मेरी बात सुनते हो। वैसे चाहे न भी दो, पर वचन तोड़ूँ तो मुझे नरक अवश्य ही देना।"

ह. एम0 दयाल

ता0 3-4

''इसी के साथ सही करता हूँ कि जजी ने अपना त्याग-पत्र मैंने दाखिल कर दिया।"

ह. एम0 डी0

ता0 4-4

हम इस संदर्भ में इस तथ्य की ओर संकेत करना चाहते हैं कि प्रमोद ने पहले हस्ताक्षर एम0 दयाल के रूप में कैसे किए हैं? एम0 से क्या मजिस्ट्रेट शब्द संकेतित है? यदि यह बात हो तो भी हस्ताक्षर करते हुए व्यक्ति अपने पद को अपने नाम के अंश-रूप में प्रयुत्त नहीं करता। हस्ताक्षरों में दूसरा शब्द 'दयाल' है उपन्यास के प्रारंभिक अंश में लेखक ने 'सर एम0 दयाल' का उल्लेख किया है। हो सकता है कि दयाल प्रमोद का सरनेम रहा हो किन्तु इसमें प्रमोद का कहीं भी उल्लेख नहीं है। जब उपन्यास में सर्वत्र प्रमोद नाम का उल्लेख मिलता है, किन्तु वह व्यक्ति अपने हस्ताक्षर एम0 दयाल के नाम से करता हो, तो यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि ये दोनों व्यक्ति एक ही हैं? वैसे इसके साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि यदि प्रारंभिक अंश में और उपन्यास के अंत में पी0 कुमार के नाम से भी हस्ताक्षर किए जाते तो भी यह तथ्य इस बात का प्रमाण नहीं हो सकता था कि इस उपन्यास की सभी घटनाएँ वास्तविक और सच्ची हैं।

मनोवैज्ञानिक चित्रण की प्रधानता- आलोच्य उपन्यास के कथानक-शिल्प की एक अन्य विशेषता इसमें स्थल-स्थल पर मनोवैज्ञानिक चित्रण को स्थान देना है। एक आलोचक ने उचित ही लिखा है कि ''त्यागपत्र उपन्यास की सर्वप्रथम विशेषता यह है कि इसमें सर्वत्र मनोविज्ञान का आश्रय लिया गया है।यों तो प्रत्येक उपन्यासकार अपने उपन्यास में स्वाभाविकता के रक्षार्थ मानव-मन का आश्रय लेता है किन्तु जैनेन्द्र जी की विशेषता यह है कि उन्होंने मानव-मन की गुत्थियों को पकड़ा है और अनका विश्लेषण किया है। मानव की कुंठाए क्या है, उनके कारण क्या है और उनमें अनुरूप कार्य क्या हैं? सम्पूर्ण उपन्यास इसी पर आधारित है और साथ ही यह भी दूसरा मुख्य कार्य-विषय है कि नारी चाहे कितनी ही पतन की ओर क्यों न चली जाए, उसका सहज-स्वाभाविक अहं कभी नहीं मरता। मृणाल के माध्यम से जैनेन्द्र जी ने इस अहं भावना का अत्यंत सशक्त चित्रण किया है।"

यौन कुंठाओं के चित्रण में जैनेन्द्र जी फ्रायड के यौन-सिद्धान्त से विशेष रूप से प्रभावित हैं। 'फ्रायड' का मत है कि मूल रूप में वासना प्रत्येक नर-नारी के मन में विद्यमान है कुछ उसे परिष्कृत रूप में व्यक्त करते हैं और कुछ उसी मूल रूप में। यहाँ तक कि बच्चों तक में भी यह वासना-भावना प्रधान होती है। पुरूष का नारी के प्रति और नारी का पुरुष के प्रति अवस्था-विशेष से आकर्षित होना तो स्वाभाविक है ही, इसके अतिरिक्त भी अवचेतन में यही काम-भावना प्रत्येक अवस्था में विद्यमान रहती है। मृणाल शीला के भाई के प्रति और शीला का भाई मृणाल के प्रति आकर्षित होता है, यह तो अवस्था-जन्म काम-भावना है। जैनेन्द्र जी ने फ्रायड के सिद्धान्त से प्रभावित होकर अन्य अवस्थाओं में भी काम-भावना की उपस्थिति मानते है। मृणाल तथा प्रमोद में बुआ-भतीजे का सम्बन्ध है, अवस्था में भी अन्तर है। किन्तु फिर भी लिंग-वैपर्यय होने के कारण दोनों में परस्पर एक-दूसरे के प्रति आकर्षण है। प्रमोद मृणाल का प्रत्येक कार्य करने को तत्पर है, उसकी प्रिय वस्तु उसे भी अच्छी लगती है-शीला का भाई उसे भी अच्छा लगना इसका एक उदाहरण है, और वह प्रत्येक उचिततानुचित कर्म मृणाल की प्रसन्नता के लिए करता जाता है, महज एक आकर्षण के वशीभूत होकर ही।

अभ्यास प्रश्न

(1) सत्य/असत्य का चुनाव कीजिए।

1. त्यागपत्र उपन्यास पूर्वदीप्ति शैली में लिखा गया है।
2. त्यागपत्र उपन्यास का प्रकाशन वर्ष 1937 ई0 है।
3. त्यागपत्र नायिका प्रधान उपन्यास है।
4. त्यागपत्र मनोविश्लेषणात्मक परम्परा का उपन्यास है।

(2) टिप्पणी कीजिए –

1. मृणाल

....

....
....
....

2. कथानक

....
....
....
....

(3) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1. उपन्यास में..............मुख्य तत्व होते हैं।
2. पात्र योजना में...............पर दिया गया है।
3. संवाद को...............भी कहते है।
4. उपन्यास का...............मुख्य घटनाक्रम से जुड़ा हुआ होना चाहिए।
5. त्यागपत्र में मुख्य पात्र................है।

21.4 सारांश

आलोच्य उपन्यास की वर्ण्य-वस्तु और उसकी परिणति कुछ ऐसी उलझनमयी है कि स्पष्ट रूप में यह नहीं कहा जा सकता कि रचनाकार का उद्देश्य या संदेश क्या है? फिर भी जैनेन्द्र ने मृणाल का जिस रूप में चरित्रांकन किया है और उसको अनेकानेक प्रकार के दुःख-दर्द सहन करते चित्रित किया है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि उनका ध्यान उन समस्याओं को उभारने की ओर केन्द्रित रहा है; जिनके कारण मृणाल को अंततः वेश्यावृत्ति के लिए विवश होना पड़ता है। इस उपन्यास का रचनाकाल सन् 1937 ई0 है। यद्यपि नारियों की सामाजिक स्थिति में सन् 2012 ई0 तक भी अर्थात् रचना के पच्चहत्तर वर्ष पश्चात् भी विशेष परिवर्तन नहीं आया है, किन्तु उन दिनों तो नारियों की स्थिति और भी अधिक बदतर थी। उन्हें पैतृक सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त नहीं था, यही कारण है कि मृणाल के माता-पिता का देहान्त हो जाने के कारण उसे अपने भाई और भावज का मोहताज होना पड़ता है। उन दिनों प्रेम-विवाह होना अत्यधिक दुष्कर था, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि इस दृष्टि से आजकल की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन आ गया है। विशेष परिवर्तन न आने पर भी चलचित्रों के प्रभाव तथा सरकार द्वारा अंतर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन दिए जाने के कारण आजकल का व्यक्ति प्रेम-विवाह को चतुर्थ-दशक की अपेक्षा अधिक मात्रा में सहन कर सकता है। हाँ, उन दिनों जैसा कि स्वाभाविक था, मृणाल की पढ़ाई ही बंद नहीं कर दी जाती, अपितु उसका शीघ्र विवाह किए जाने की जल्दी में तथा सम्यक् दहेज न जुटा पाने के कारण मृणाल का विवाह अधेड़े उम्र के एक दुहाजू व्यक्ति के साथ कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त 'त्यागपत्र' में जैनेन्द्र नियतिवादी भी परिलक्षित होते

हैं। यही कारण है कि वे भाग्य में विश्वास करते हैं- इसका क्या उत्तर है? उत्तर हो अथवा न हो, पर जान पड़ता है भवितव्य ही होता है। नियति का लेख बंधा है। एक भी अक्षर उसका यहाँसे वहाँ न हो सकेगा। वह बदलता नहीं, बदलेगा नहीं। पर विधि का वह अतर्क्य तर्क किस विधाता ने बनाया है, उसका उसमें क्या प्रयोजन है- यह भी कभी पूछकर जानने की इच्छा की जा सकती है या नहीं?"

21.5 शब्दावली

- नियति - प्रारब्ध, पहले से तय
- दुहाजू - शादी शुदा व्यक्ति
- भावज - भाभी
- पुनरावलोकन - पुन: समीक्षा करना

21.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) 1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य

(3) 1. छ:
2. चरित्र चित्रण
3. कथोपकथन
4. शीर्षक
5. 2

21.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, माया एवं शर्मा, कृष्णदेव - त्यागपत्रः एक विवेचन।
2. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास।

21.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तिवारी, रामचन्द्र – हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन।

21.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. औपन्यासिक शिल्प अथवा उपन्यास-कला की दृष्टि से त्यागपत्र की सफलता-असफलता का विवेचन कीजिए।
2. जैनेन्द्र कृत उपन्यास 'त्यागपत्र' की शिल्पगत विशेषताओं का उद्घाटन कीजिए।
3. 'त्यागपत्र' उपन्यास के शिल्प का सोदाहरण विवेचन-विश्लेषण कीजिये।
4. ''त्यागपत्र में घटनाएँ बहुत हैं लेकिन उसकी कथा-संरचना में उनकी भूमिका क्षीण है।" -'त्यागपत्र' उपन्यास के शिल्प का विश्लेषण करते हुए उपर्युक्त कथन की समीक्षा कीजिए।
5. क्या आप जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' को एक सफल उपन्यास मानते हैं? 'त्यागपत्र' की तात्विक समीक्षा करते हुए उत्तर दीजिए।